ी शैली पर सम्पादित

क की अन्य पुस्तकें

रत्नावली-नाटिका

भोज-प्रबन्ध

नैषधीय-चरित सर्ग 1

के बाद श्लोकों की वर्णानुक्रम सूची (पृष्ठ २६२), वेणीसंहार के सूक्तियों का संग्रह (पृष्ठ २६६) तथा नाटक में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण स्थान-निर्देश सहित (पृष्ठ २६८) दिये गये हैं।

इस संस्करण को तैयार करने में सम्पादक ने वेणीसंहार के अंग्रेजी और हिन्दी के सभी उपलब्ध संस्करणों से सहायता ली है, इसलिए वह उन सब संस्करणों के विद्वान् सम्पादकों के प्रति कृतज्ञ है।

यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी मुद्रण में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। इसके लिये हमें खेद है। पाठकों से नम्र प्रार्थना है कि पढ़ना प्रारम्भ करने से पूर्व अन्त में दिये गये शुद्धि-पत्र से देखकर पाठ शुद्ध कर लेने की कृपा करें।

यदि यह संस्करण अपने पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सका तो संपादक अपने प्रयत्न को सार्थक समझेगा। सम्पादक को विद्वान् अध्यापकों तथा छात्रों से अग्रिम संस्करण में अभीष्ट सुधारों के लिए सुझाव पाकर अत्यधिक प्रसन्नता होगी।

१८ सितम्बर १९६०
३०१, उर्मिला शास्त्री रोड, मेरठ। } शिवराज शास्त्री

तरलिका — भानुमती की दासी।
गान्धारी — दुर्योधन की माता।
माता— जयद्रथ की माता।
दुःशला — जयद्रथ की पत्नी, दुर्योधन आदि की बहिन।
भानुमती— महारानी, दुर्योधन की पत्नी।
विहङ्गिका — कौरव पक्ष की दासी।

कुछ अन्य संकेतित पात्र

भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, वृषसेन, धृष्टद्युम्न, दुःशासन, जयद्रथ, विदु
शल्य आदि।

विषय-सूची

संस्कृत कवियों के विषय में विश्वसनीय जानकारी का अभाव—संस्कृत कवियों के सम्बन्ध में बहुधा जैसा होता है, वेणीसंहार नाटक के रचयिता भट्टनारायण के विषय में भी वही बात है। भट्टनारायण के जीवन, समय तथा अन्य व्यक्तिगत परिस्थितियों के सम्बन्ध में कोई निश्चित तथा विश्वस्त जानकारी उपलब्ध नहीं है। संस्कृत के प्राचीन कवियों ने अपने विषय में प्रायः मौन रखा है।

भट्टनारायण के विषय में वेणीसंहार की प्रस्तावना से प्राप्त जानकारी—संस्कृत नाटककारों की प्रायः यह पद्धति रही है कि इन्होंने अपने नाटक की प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कवियों और अपने कुल तथा विद्या आदि का वर्णन किया है। परन्तु भट्टनारायण ने अपने नाटक की प्रस्तावना में भी अपना कोई विशिष्ट परिचय नहीं दिया है। वेणीसंहार की प्रस्तावना से लेखक के विषय में केवल यही सूचना मिलती है कि यह नाटक किसी 'मृगराजलक्ष्मा' कवि भट्टनारायण की कृति है। यह भट्टनारायण कौन था, कहाँ का रहने वाला था, उसने किस युग में जन्म लिया था आदि प्रश्नों का हमें उसकी रचना में कोई उत्तर नहीं मिलता।

भट्टनारायण के सम्बन्ध में वंशानुवर्णनों (chronicles) में उपलब्ध जानकारी—परन्तु यह कुछ सौभाग्य की बात है कि बंगाल के राजाओं के सम्बन्ध में संस्कृत भाषा में निबद्ध कतिपय ऐतिहासिक लेख (chronicles) मिलते हैं, जिनसे किसी भट्टनारायण के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है। यद्यपि यह वंशानुवर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं है, और न ही उनके आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि उनमें जिस भट्टनारायण का उल्लेख हुआ है, वह वेणीसंहार का रचयिता भट्टनारायण

ही है, फिर भी भट्टनारायण के समय के विषय में अन्य प्रमाणों ?
परिणाम पर पहुँचे हैं उनका इन ग्रन्थों से समर्थन होता है। इसलि
विश्वास किया जा सकता है कि इन लेखों का भट्टनारायण वेणीसंह
रचयिता हो सकता है। यह स्मरणीय है कि इन ऐतिहासिक लेखों मे
नारायण को कहीं भी कवि अथवा किसी नाटक का रचयिता नहीं
गया है।

'क्षितीशवंशावलीचरितम्' के अनुसार भट्टनारायण मूल रूप में
कुब्ज का निवासी शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न वारेन्द्र ब्राह्मण था। यह बा
सेन-वंश के प्रवर्तक 'आदिशूर' के निमन्त्रण पर अन्य चार ब्राह्मणों के
कन्नौज से जाकर बंगाल में बस गया था, जहाँ आदिशूर ने उसे कोई
अनुष्ठान कराने के लिये दक्षिणा में पाँच गाँव दिये थे। धीरे-धीरे यह ग
इतनी बड़ी हो गई थी कि भट्टनारायण को एक राजवंश का प्रवर्तक
जाने लगा था।

परम्परा के अनुसार भट्टनारायण कलकत्ता के वर्तमान 'टैगोर' वं
आदि पुरुष माना जाता है, परन्तु इसके लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं

'क्षितीशवंशावलीचरित', 'वंगराजघटक', 'राजावली' तथा 'दक्षिणरा
घटककारिका, आदि वंशानुवर्णन करने वाले ग्रन्थ इस बात में तो एक
कि भट्टनारायण अन्य चार ब्राह्मणों के साथ कान्यकुब्ज से गौडदेश (ब
आया था। लेकिन भट्टनारायण के कान्यकुब्ज से गौड आने के कारण
विषय में उनकी अपनी अपनी अलग कथा है।

क्षितीशवंशावलीचरित के अनुसार आदिशूर शूद्र राजा था, इस
वंगवासी वैदिक विद्वानों द्वारा उसके लिये यज्ञ करने से निषेध कर दें
आदिशूर ने कान्यकुब्ज के राजा से योग्य वैदिक ब्राह्मण भेजने की प्रा
की थी। दूसरी कथा के अनुसार कभी बंगदेश में अनावृष्टि हुई
यज्ञ द्वारा वर्षा प्राप्त करने के लिये कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण निमन्त्रित
गये थे। 'वङ्गराजघटक' के अनुसार 'आदिशूर' ऐसा यज्ञ करना चाहत
जिससे भगवान प्रसन्न हो जाये। उसके राज्य में रहने वाले ब्राह्मण

न बता सकें तो

के अनुसार बंगदेश पर आने वाली विपत्तियों के लक्षण देखकर सूर' ने उनके निवारण के लिये कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण भेजे। एक कथ के अनुसार इन ब्राह्मणों ने धार्मिक उत्पीडन के कारण कान्यकुब्ज याग किया था।

भट्टनारायण की जाति—कुछ विद्वानों ने भट्टनारायण की जाति के मे सन्देह किया है। कुछ लोगों ने वेणीसंहार की प्रस्तावना में रायण द्वारा अपने लिये प्रयुक्त 'मृगराजलक्ष्मण' शब्द से निर्दिष्ट राज' उपाधि में 'सिंह' का संकेत देखकर उसे क्षत्रिय माना है। दूसरे उसके नाम के 'भट्ट' अंश से उसे ब्राह्मण बतलाते हैं। कुछ विद्वानों ने संहारगत आन्तरिक प्रमाणों—जैसे, विदूषक पात्र का अभाव, कर्ण तथा थामा के कलह में अश्वत्थामा के प्रति कवि की सहानुभूति और तृतीय में राक्षस-राक्षसी के संवाद में 'ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद्। गल हृदयविदारि' इस सदर्भ द्वारा ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता के प्रति कवि की व, आदि—से वेणीसंहार के कवि को ब्राह्मण सिद्ध किया है।

परन्तु तथ्य यह है कि न तो 'मृगराज' उपाधि से भट्टनारायण को य सिद्ध किया जा सकता है और न ही अन्य दिये गये प्रमाणों से उसे ण सिद्ध किया जा सकता है। 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणः' इत्यादि प्रसङ्ग से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि स्वयं को 'कविसिंह' (कवियों में सिंह के न) बतलाना चाहता है। दूसरे यदि हम भट्टनारायण के समय में अथवा के पूर्व काल में क्षत्रियों के प्रचलित नामों पर दृष्टि डालें तो पता चलेग उस काल में क्षत्रियों के नाम के अन्त में 'सिंह' प्रायः नहीं आता था नारायण के ब्राह्मण होने के पक्ष में वेणीसंहार से दिये गये आन्तरिक णों में भी कोई बल नहीं है, क्योंकि उस काल में ब्राह्मण की श्रेष्ठत र अश्वत्थामा आदि के प्रति ब्राह्मण-धर्मावलम्बी प्रत्येक मनुष्य का, चाहे वह सी भी जाति या वर्ण का था, समान विश्वास था।

किसी विशेष प्रमाण के अभाव में भी, केवल 'शिलीयवशावलीचरित

वेणीसंहार और रत्नावली में ही दिये हैं। भट्टनारायण वैदिक
से भली भांति परिचित था। प्रचलित परम्परा के अनुसार वह चार
ाणों के साथ यज्ञ कराने के लिये गौड देश गया था। इसकी पुष्टि इस
ी होती है कि उसने युद्ध को यज्ञ का रूपक दिया है।[1] छठे अङ्क में
द्वारा गुप्तचरों को दिये गये निर्देशों से कवि का अर्थशास्त्र तथा राज-
बन्धः ज्ञान परिलक्षित होता है। भट्टनारायण का कदाचित् भाषा पर
कार नहीं स्वीकार किया जा सकता है। उसकी भाषा अनेक स्थलों
नीय व्याकरण से असम्मत है। स्वयं काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति के रचयिता
वेणीसंहार के तीन स्थलों पर भट्टनारायण के प्रयोगों को व्याकरण-
द्ध करने का प्रयत्न किया है।[2] यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता
ीसंहार में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ भट्टनारायण के असामर्थ्य के
ई हैं अथवा प्रचलित प्रयोग-पद्धति (Colloquialism) अपनाने के
थवा महाभारत के प्रभाव से।

(२) भट्टनारायण का समय

ारायण का समय निश्चित करने में आन्तरिक साक्ष्य का अभाव— जब
क अपने समय के विषय में कोई साक्षात् उल्लेख नहीं करता है तो
मय निश्चित करने के लिये दो उपाय अपनाये जाते हैं— प्रथम यह
ा है कि क्या लेखक ने किसी पूर्ववर्ती लेखक अथवा घटना का
या है जिससे उसके काल की पूर्व-सीमा निर्धारित की जा सके।
भट्टनारायण ने वेणीसंहार में कोई ऐसा संकेत नहीं दिया है जिससे
प से यह जाना जा सके कि उसके समय की पूर्व सीमा क्या हो
।

संहार १।२५
ु किं सभ्रमेण' २.१६ (इस संस्करण में 'भीरु किं संभ्रमेण' पाठ
ाया गया है); 'सयमयिनुमारब्धः' (इस संस्करण में 'सयन्तुमारब्धः'
३४); 'पतित वेत्स्यसि क्षितौ' (इस संस्करण में 'पतितं द्रक्ष्यसि
ौ' ३।४१)।

भट्टनारायण का समय निश्चित करने में बाह्य साक्ष्य— दूसरा उपाय यह कि यह देखा जाय कि उस लेखक या उसकी कृति का किन परवर्ती लेखकों उल्लेख किया है अथवा उसकी कृति में वर्णित किसी घटना विशेष का वर्ण किया है अथवा उसके किसी अंश को उद्धृत किया है। इस प्रकार किसी लेख या कृति का समय निर्धारित करने के उपाय को बाह्य साक्ष्य कहते हैं। इ प्रकार के साक्ष्य से किसी लेखक अथवा कृति के समय की उत्तर सी निर्धारित हो जाती है। सौभाग्य से भट्टनारायण के समय की उत्तर सीम निर्धारित करने के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिक वामन ने अपने ग्रन्थ में कितने ही उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं अ वेणीसंहार के कुछ प्रयोगों को व्याकरणसम्मत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन, दशरूपक के टीकाकार धनिक, काव्यप्रकाश रचयिता मम्मट, सरस्वती-कण्ठाभरण के लेखक भोजदेव तथा दूसरे अलङ्का शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में गुण दोष, अलङ्कार तथा सन्ध्यङ्ग आदि के अने उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं। जिन लेखकों ने वेणीसंहार को उद्धृत किय है, उनमें सबसे प्राचीन काव्यसूत्रालङ्कारवृत्ति का रचयिता वामन है। वाम का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का मध्य भाग कहा जाता है। काश्मी पण्डितों में प्रचलित परम्परा के अनुसार यह वामन काश्मीर के राजा जयापी (७७९–८१३ ई०) का मन्त्री था। वामन ने अपने ग्रन्थ में भवभूति को को भी उद्धृत किया है। भवभूति कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा का आश्रि था, जिसे ७४० ई० के लगभग काश्मीर नरेश मुक्तापीड ललितादित्य ने पराभ किया था। इसलिये काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति का लेखक वामन आठवीं शताब्द के प्रथम भाग के पश्चात् ही रहा होगा। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति और काशिका वृत्ति के लेखक वामन एक नहीं हो सकते, क्योंकि काशिका का समय ६५० ई० से बाद नहीं हो सकता है।[१] इसलिये भट्टनारायण का समय ईसा की आठवं शताब्दी के मध्य भाग से पूर्व होगा। लेकिन वह वामन से कितने पहले हुआ है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

पिल महोदय ने भट्टनारायण का समय ईसा की छठी या सातवीं शताब्दी

१ देखिये, मैकडानल : हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ४३ और ४३२

माना है। कुछ लोग प्राचीन परम्परा पर विश्वास करके भट्टनारायण को सेनवंश के प्रवर्तक आदिसूर का समकालीन मानते है और आदिसूर का समय ईसा से पूर्व ३०० वर्ष मानते हैं। प्रो० विल्सन ने वेणीसंहार का समय ईसा की ८वीं या ९वीं शताब्दी माना है। उनके मत का आधार यह है कि अबुलफजल के अनुसार आदिसूर ईसा की १३वीं शताब्दी मे वर्तमान राजा बलालसेन से पूर्व २३वां राजा था, यदि मध्यवर्ती राजाओं के राज्यकाल की अवधि १०० वर्ष मान ली जाय तो आदिसूर का समय ८वीं या ९वीं शताब्दी मानना उचित ही होगा। कनिंघम महोदय ने सेनवंश का शासन-काल ९५०-११०८ ईस्वी माना है। एक अन्य स्रोत के अनुसार भी आदिसूर का समय, यदि आदिसूर और शूरसेन एक ही व्यक्ति हो तो, ६५० ई० के आसपास सिद्ध होता है। ह्वानसांग के वर्णन के अनुसार शूरसेन नेपाल के राजा अंशुवर्मन (६४४-६५२ ई०) की बहिन भोगवती का पति था। इसलिये आदिसूर और, परिणामस्वरूप, भट्टनारायण का समय ७वीं शताब्दी का उत्तर भाग माना जा सकता है। भट्टनारायण सम्भवत भवभूति का समकालीन रहा हो।

भट्टनारायण बाण का परवर्ती प्रतीत होता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित की प्रस्तावना मे पूर्ववर्ती कवियों के उल्लेख मे भट्टनारायण और भवभूति का कथन नहीं किया है। इसलिये सम्भव है कि भट्टनारायण बाण के पश्चात् हुआ हो। दूसरे, भट्टनारायण की भाषा और शैली से भी यही प्रतीत होता है कि वह बाण का परवर्ती था।

इस प्रकार भट्टनारायण का समय कहीं ६५० ई० और ७५० ई० के मध्य मानना बिल्कुल उचित और सम्भव प्रतीत होता है।

(३) भट्टनारायण की रचनायें

भट्टनारायण की इस समय केवल एक कृति वेणीसंहार उपलब्ध है। परन्तु सुभाषित-संग्रहों मे भट्टनारायण के नाम से उद्धृत कुछ ऐसे श्लोक मिलते है, जो वेणीसंहार मे नहीं पाये जाते। इसलिये यह सम्भव है कि भट्टनारायण की कोई अन्य रचनायें भी रही हो। प्रो० गजेन्द्रगडकर ने किसी हरिशर्मा द्वारा प्रतिलिपि की गई दशकुमारचरित की एक पाण्डुलिपि के आधार पर

(८) संस्कृत साहित्य में भट्टनारायण का स्थान

भट्टनारायण प्राचीन आलोचकों की दृष्टि में—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्राचीन अलङ्कार शास्त्रियों ने गुण, दोष, अलङ्कार तथा नाट्य के सिद्धान्तों के उदाहरण के लिए प्रायः भट्टनारायण के वेणीसंहार का आश्रय लिया है। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन आलोचक उनकी कृति से अत्यधिक प्रभावित थे। साथ ही यह भी सत्य है कि प्राचीन आलोचकों ने जैसे कालिदास आदि प्राचीन कवियों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, उस प्रकार भट्टनारायण की प्रशंसा में किसी का मुख नहीं खुला है, प्रत्युत मम्मट आदि काव्यालोचकों ने उनकी कृति में दोष प्रदर्शित करके उसकी निन्दा की है।

भट्टनारायण अपनी दृष्टि में—भट्टनारायण ने अपने विषय में कोई विशिष्ट सूचना नहीं दी है।[1] लेकिन वेणीसंहार की भूमिका में जो सूचना मिलती है, उससे प्रतीत होता है कि उसे अपने काव्य पर गर्व था। उसने स्वयं को 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणः' कहा है। यदि वेणीसंहार के कुछ संस्करणों में छठे अङ्क के अन्त में पाया जाने वाला श्लोक, जिसमें कवि ने कालचक्र को उपालम्भ दिया

१ ए. बी. गजेन्द्रगडकर, दी वेणीसंहार : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २१, २२।

२ वही, पृ० २३।

है, भट्टनारायण की ही रचना हो तो प्रकट है कि उसे विपरीत परिस्थितियों में भी अपने इस 'महान् प्रबन्ध' की अमरता की भावना थी।[1]

भट्टनारायण कवि के रूप में—भट्टनारायण ने अपने नाटक वेणीसंहार में किसी एक रीति का अनुसरण न करके भाव और परिस्थिति के अनुसार गौडी और वैदर्भी दोनों रीतियों का उपयोग किया है। यद्यपि अनेक आलोचकों ने कथावस्तु की शिथिलता और संवादों की नीरसता तथा उसकी भाषा की क्लिष्टता के कारण वेणीसंहार की कटु आलोचना की है, परन्तु उसके कवि-पक्ष की श्लाघ्यता के विषय में सभी एक मत हैं। भट्टनारायण के काव्य में ओज, शक्ति, गति तथा प्रभावोत्पादकता है। उसकी भाषा में बाँकापन है जिससे वह भाव और रस के अनुरूप ढल जाती है। भट्टनारायण वीर, बीभत्स, करुण और शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सफल रहा है। वीररस में उसकी पदयोजना समासबहुल और ओजपूर्ण है।

भट्टनारायण की एक अन्य विशेषता यह है कि वह ध्वनि और अर्थ की योजना की कला में निपुण था। उसकी अक्षरयोजना भाव के अनुरूप होती है। 'चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात ' इत्यादि श्लोक में संयुक्त अक्षरों की योजना भीम के क्रोध और उत्साह को प्रकट करने में सर्वथा सफल रही है। इसी प्रकार 'मन्थायस्तार्णवाम्भः··· ' इत्यादि श्लोक में अक्षरों की योजना ऐसी है कि पाठक को दुन्दुभि के बजने की अनुभूति होने लगती है।

भट्टनारायण ने छन्दों का भी समुचित प्रयोग किया है। 'कुरु घनोरु पदानि शनैः शनैः' २।२० में द्रुतविलम्बित, 'अर्वावां रणमुपगतौ··· इत्यादि ४।१५ में मन्दाक्रान्ता तथा 'मम हि वयसा दूरेणाऽऽलः' इत्यादि ६।२४ में हरिणी छन्द का प्रयोग परिस्थिति और भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति में अत्यधिक सहायक हुआ है।

---

१ काव्यालापसुभाषितव्यसनिनस्ते राजहंसा गता-
स्ता गोष्ठ्यः क्षयमागता गुणलवश्लाघ्यास्तु वाचः सताम्।
सालंकाररसप्रसन्नमधुराकाराः कवीनां गिरः
प्राप्ता नाशमयं तु भूमिवलये जीयात्प्रबन्धो महान्॥

भट्टनारायण ने अनेकविध अलङ्कारों का भी समुचित प्रयोग किया है। साभिप्राय पदों और काकु के प्रयोग के लिये भट्टनारायण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भट्टनारायण ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का भी अच्छा प्रयोग किया है। उसके कुछ अर्थान्तरन्यास तो कालिदास के अर्थान्तरन्यासों के समान संग्रहणीय हैं। उसने संस्कृत साहित्य को अनेक सूक्तियाँ भी दी हैं, जो अवसर पर उद्धृत किये जाने पर वक्ता के वचन को गौरव प्रदान कर सकती हैं। (देखिये, पृ० २६६)

भट्टनारायण नाटककार के रूप में—नाटककार के रूप में भट्टनारायण को सफल नहीं कहा जा सकता है। भट्टनारायण का सब से बड़ा दोष यह है कि उसने अपने नाटक की कथावस्तु का आधार महाभारत की विस्तृत तथा प्रसिद्ध कथा को बनाया। महाभारत की कथा को नाटक के कलेवर में सीमित करने के लिये उसे वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेना पड़ा। जिससे उसमें गतिहीनता तथा शिथिलता आ गई। दूसरे अपने युग के प्रभाव के कारण उसने दीर्घ-समासयुक्त शैली का आश्रय लिया, विशेषकर गद्यमय सवादात्मक भाग में, जिसके कारण उसकी भाषा नाटक के उपयुक्त नहीं रही। भट्टनारायण का एक अन्य दोष वर्णनों तथा पात्रों के चित्रण में अनुपात का अभाव है, जिससे नाटकीय प्रभाव नष्ट हो गया है।

इन दोषों के रहते हुए भी वेणीसंहार को एकदम असफल कृति नहीं कहा जा सकता है। भट्टनारायण चरित्र-चित्रण करने में, जो नाटक का एक आवश्यक गुण माना जाता है, पूर्ण सफल रहा है। उसके पात्र महाभारत की जनप्रिय कथा के लोक-विख्यात व्यक्ति हैं। इसलिये भट्टनारायण की यह सीमायें थीं कि वह अपने पात्रों को अपने नाटक की कथावस्तु के अनुरूप यथेच्छ चित्रित नहीं कर सकता था। फिर भी, उसके चरित्र-चित्रण में विशदता तथा सजीवता है।

वेणीसंहार के तीसरे अङ्क में भट्टनारायण को नाटकीय व्यापार की दृष्टि से सर्वाधिक सफलता मिली है। अश्वत्थामा और कर्ण का वाक्कलह नाटकीय व्यापार के लिये पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। (आगे 'वेणीसंहार की ...' देखिये)

भट्टनारायण पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव— भट्टनारायण अवश्य ही
ने पूर्ववर्ती कवियो के काव्यो से परिचित रहा होगा और उनका भट्ट
रायण पर प्रभाव पड़ा होगा। लेकिन भट्टनारायण की रचना पर पूर्ववर्ती
ों का कोई स्पष्ट प्रभाव लक्षित नही होता।

भट्टनारायण की अन्य कवियों से तुलना—यह स्पष्ट है कि भट्टनारायण मे
दास जैसी स्वाभाविकता तथा सरसता, बाण जैसा परिष्कार और भवभूति
उदात्तता नही है। भट्टनारायण कला की दृष्टि से हर्षवर्धन का समकक्ष
नही कहा जा सकता। भट्टनारायण को द्वितीय श्रेणी का ही कवि तथा
कार कहा जा सकता है। भट्टनारायण की तुलना मुद्राराक्षस के रचयिता
ाखदत्त से की जा सकती है। इन दोनो की भाषा मे ओज तथा गति है।
 की दृष्टि से भट्टनारायण भवभूति के समीप है। शैली की कृत्रिमता के
ार मे भी भट्टनारायण और भवभूति मे समानता है, लेकिन काव्य-कला
दृष्टि से भट्टनारायण की भवभूति से कोई तुलना नही हो सकती। प्रकृति
भवरता और मानव-हृदय के चित्रण मे भट्टनारायण मे भवभूति जैसी
ढहृदयता नही पाई जाती।

भाग २—वेणीसंहार

(१) वेणीसंहार की कथावस्तु

पूर्व कथा—कौरव और पाण्डव हस्तिनापुर के राजवंश के राजकुमार थे। पाण्डु की अकाल मृत्यु के पश्चात् उनका भाई धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आसीन हुआ था। इसलिये उत्तराधिकार विवादास्पद होने के कारण उभयपक्षी राजकुमारों में बचपन से ही और ईर्ष्या उत्पन्न हो गई थी। कौरवों में ज्येष्ठ दुर्योधन हर-सम्भव किसी प्रकार पाण्डव राजकुमारों को राज्यच्युत करना चाहता था। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ में अपना नया राज्य स्थापित कर लिया था। लेकिन दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि की सहायता से पाण्डवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीडा में पराजित करके अन्य पाण्डवों को और उनकी पत्नी द्रौपदी को अपना दास बना लिया। भरी राजसभा में द्रौपदी के वस्त्र तथा केश खींचकर अपमानित किया गया और पाण्डवों को १३ वर्ष तक वन में तथा अज्ञात में रहने के लिये विवश किया गया।

वनवास को जाते समय पाण्डवों ने कौरव राजकुमारों से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की। पाण्डव राजकुमारों में बलिष्ठ पवन-पुत्र भीम ने प्रतिज्ञा की कि वह दुःशासन के वक्षःस्थल से रुधिर का पान करेगा और दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ कर उनके रुधिर से द्रौपदी की खुली वेणी को बाँधेगा। नाटक, जैसा कि इसके शीर्षक 'वेणीसंहार' से स्पष्ट है, द्रौपदी की खुली वेणी के संहार (बाँधने) की घटना से सम्बद्ध है।

वनवास की शर्तें पूरी कर लेने के बाद युधिष्ठिर कृष्ण को दूत बनाकर सन्धि के लिये दुर्योधन के पास भेजता है। इस समाचार को सुनकर भीम और द्रौपदी दोनों ही रुष्ट होते हैं, क्योंकि वे दोनों कौरवों को पराजित करके अपने अपमान का बदला लेना चाहते हैं। यहीं से नाटक का आरम्भ होता है।

प्रथम अङ्क—मङ्गलाचरण के पश्चात् सूत्रधार श्लिष्ट पद्य द्वारा इस [illegible] कौरवों से सन्धि कराने के लिये भगवान् कृ

दूत बनकर गये हैं। सूत्रधार के इस वचन को लेकर ही क्रुद्ध भीमसेन का कराया गया है, जो पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाने वाले, विष देने तथा द्रौपदी के वस्त्र एवं केशों को खींचने वाले कौरवों के साथ सन्धि करना चाहता। भला उसके जीवित रहते अपकारी कौरव स्वस्थ कैसे रहते हैं ?

प्रस्तावना के बाद नेपथ्य से इस उक्ति को दोहराता हुआ भीम सहदेव के क्रोध की मुद्रा में मञ्च पर प्रविष्ट होता है। सहदेव सूत्रधार के वचन का के अनुकूल अर्थ बतला कर उसे शान्त करना चाहते हैं, परन्तु भीम को बात पर विश्वास नहीं होता कि धर्मराज और उसके भाई कौरवों का न चाहेंगे। उसे अपने बड़े भाई की सहनशीलता और निस्तेजस्विता पर होता है और वह बड़े भाई की आज्ञा के उल्लङ्घन का पाप स्वीकार करके कौरवों का विनाश करने के लिये एक दिन के लिये उन सब से पृथक् हो ा चाहता है। वह आयुध धारण करने के लिये शस्त्रागार की ओर जाना ता है, परन्तु क्रोध के आवेश में द्रौपदी की चतुःशाला में पहुंच जाता है।

द्रौपदी को उसी दिन दुर्योधन की पत्नी भानुमती के हाथों नये अपमान घूंट पीना पड़ा था। द्रौपदी, सुभद्रा आदि सपत्नियों के साथ माता गान्धारी पाद वन्दना करने के लिये गई थी। वहाँ भानुमती ने हँसकर द्रौपदी से ा था कि 'उसने सुना है पाण्डव लोग पाँच गाँव लेकर सन्धि कर रहे हैं लिये द्रौपदी को अपने केश बाँध लेने चाहियें।' द्रौपदी की सखी के मुख से पदी के इस नये अपमान को जानकर भीमसेन का क्रोध और भी भड़क ता है। भीम और द्रौपदी दोनों ही सन्धि के प्रस्ताव से रुष्ट हैं। भीम ादी को सान्त्वना देता है कि वह अवश्य ही अपनी फड़कती हुई भुजाओं से माई गई भारी गदा के आघात से दुर्योधन की जाघों को चूर्ण करके उसके ढ़े और चिकने रुधिर से लाल हुए हाथों से उसके केशों को संवारेगा।

इसी बीच नेपथ्य में नगाड़े की ध्वनि होती है और घबराया हुआ कञ्चुकी भीमसेन को सूचित करता है कि दुरात्मा दुर्योधन ने भगवान् वासुदेव को बाँधने का प्रयत्न किया, परन्तु भगवान् अपने विश्वरूप से उसे संमोहन करके और सन्धि के प्रयत्न में असफल होकर शिविर में वापिस लौट आये हैं।

इस घटना से असन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने कौरवों के विरुद्ध युद्ध की घो
कर दी है रणदुन्दुभि का शब्द सुनकर भीम प्रसन्न होता है। भीम
सहदेव युद्धभूमि जाने के लिये द्रौपदी से विदा लेते है। द्रौपदी उनके
की कामना करती है और प्रार्थना करती है कि वह युद्धभूमि से लौटकर
पुनः सान्त्वना दें और क्रोधावेश के कारण युद्धभूमि मे अपने शरीर की उ
न करे। इस पर भीमसेन पाण्डवों की युद्ध-निपुणता से द्रौपदी को आ
करता है।

द्वितीय अङ्क—युद्ध आरम्भ हो चुका है। भीष्म तथा अभिमन्यु
कुछ प्रमुख योद्धा मारे जा चुके हैं। भानुमती अपने पति की विजय-म
कामना से व्रत करना चाहती है। उसने रात्रि मे दुःस्वप्न देखा है, जिससे
आशङ्कित है। सखी के आग्रह पर वह दुःस्वप्न को सुनाती है, जिससे दे
प्रशंसन आदि उपायो द्वारा उसका शमन किया जा सके। स्वप्न में उसने दे
कि नकुल ने सौ सर्पों को मार डाला है। इसके द्वारा नाटककार ने भा
घटना की सूचना दी है। राजा छिपकर भानुमती के स्वप्न के विषय में सुन
है। पहले तो वह भी शङ्कित होता है, पर बाद मे शङ्का हट जाती है। सूर्य
पूजा करती हुई भानुमती की दासी ज्यो ही किसी दूसरी परिचर्या मे व्यस्त
वह अर्घ्यपात्र लेकर रानी के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। सूर्य-पूजा के ब
ही कञ्चुकी आता है, और दुर्योधन तथा भानुमती राजमहल मे चले जा
हैं। वहाँ उनमें प्रेमालाप होता है। इसी बीच जयद्रथ की माता आकर य
खबर देती है कि अभिमन्यु के वध से दुःखी अर्जुन ने जयद्रथ का वध करने
प्रतिज्ञा की है। राजा को जयद्रथ की रक्षा का उपाय करना चाहिये। दुर्योध
उसके भय को दूर करने तथा युद्ध के लिये प्रस्थान करता है।

तृतीय अङ्क—इस अङ्क के प्रवेशक मे राक्षस-राक्षसी के द्वारा युद्धभूमि
की भीषणता और द्रोण के वध की सूचना दी जाती है। इसी अङ्क मे पितृवध
के शोक से सन्तप्त क्रुद्ध अश्वत्थामा का प्रवेश होता है। कृपाचार्य अश्वत्थामा को
सान्त्वना देते हैं। इधर कर्ण दुर्योधन को यह समझा देता है कि द्रोण ने स्वयं
... छोड़ दिया था, और इसी लिये वे मारे गये। द्रोण अश्वत्थामा को

समस्त पृथ्वी का राजा बनाना चाहते थे और अब अश्वत्थामा के मारे जाने से वृद्ध ब्राह्मण द्रोण का शस्त्रग्रहण करना अधर्म है यह सोचकर ही द्रोण ने दुःखी होकर शस्त्र-त्याग किया था। इसी बीच कृप और अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आते हैं और अश्वत्थामा दुर्योधन से उसे सेनापति बना देने को कहता है, जिससे वह पिता की मृत्यु का बदला ले सके। पर दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाने का वचन दिया है। अश्वत्थामा और अधिक क्रुद्ध होता है, कर्ण और अश्वत्थामा में वाग्युद्ध होता है। अश्वत्थामा तब तक के लिये शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा करता है जब तक कर्ण जीवित रहेगा। इसी बीच नेपथ्य से भीम की गर्वोक्ति सुनाई देती है कि दुःशासन उसके भुजदण्ड में आबद्ध हो गया है, और वह उसका खून पीने जा रहा है, यदि कोई कौरव रक्षा कर सके तो करे। दुःशासन की विपत्तिजनक अवस्था को सुनकर अश्वत्थामा शस्त्र ग्रहण करना चाहता है, पर आकाशवाणी के द्वारा अश्वत्थामा को यह चेतावनी दी जाती है कि उसे अपनी प्रतिज्ञा को खण्डित नहीं करना चाहिये। अश्वत्थामा को इस बात का दुःख है कि वह दुःशासन की रक्षा नहीं कर पाता और देवता भी पाण्डवों के पक्षपाती हैं।

चतुर्थ अङ्क—दुर्योधन का सारथि युद्ध में आहत और मूर्च्छित दुर्योधन को युद्धस्थल से दूर ले जाकर उसके रथ को एक वट-वृक्ष की छाया में खड़ा कर देता है। चेतना प्राप्त होने पर दुर्योधन को दुःशासन के वध का पता चलता है। कर्ण का सेवक सुन्दरक दुर्योधन को खोजता हुआ वहाँ पहुँचता है और उसे कर्ण के पुत्र वृषसेन के वध की सूचना देता है और युद्धस्थल की गतिविधि से अवगत कराता है। सुन्दरक उसे पुत्र-वध से निराश और क्रुद्ध होकर प्राणों का मोह त्याग कर युद्धभूमि को जाते हुये कर्ण का सन्देश देता है। दुर्योधन भी अपने मित्र अङ्गराज कर्ण की सहायता के लिये पुनः युद्धभूमि के लिये प्रस्थान करना चाहता है, किन्तु इसी बीच धृतराष्ट्र और गान्धारी वहाँ आ पहुँचते हैं।

पञ्चम अङ्क—पुत्रों के विनाश से व्याकुल हुए धृतराष्ट्र और गान्धारी दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि कर लेने के लिये समझाते हैं, परन्तु दुर्योधन इसके लिये तैयार नहीं होता। वह पाण्डवों से अपने भाई दुःशासन का प्रति-

छोड़ देना चाहता है। इस पर धृतराष्ट्र पुनः उपाय द्वारा पाण्डवों से स
का सुझाव देता है, परन्तु अभिमानी दुर्योधन इसे भी स्वीकार नहीं कर

इसी बीच शत्रु के शिविर की सूचना मिलती है और दुर्योधन म
जाने की तैयारी करता है। तभी भीम और अर्जुन रणभूमि में दुर्यो
न पाकर ढूंढते हुए यहां पहुंच जाते हैं। भीम धृतराष्ट्र और गान्धारी को
करते समय कटूक्तियों का प्रयोग करता है। दुर्योधन भीम को फटका
और दोनों में वाग्युद्ध होता है। दुर्योधन भीम को द्वन्द्वयुद्ध के लिये ललका
है, किन्तु अर्जुन भीम को रोकता है। इसी बीच नेपथ्य से भीम और अ
लिये युधिष्ठिर की आज्ञा सुनाई पड़ती है कि अब युद्ध-समाप्ति का ग
गया है, इसलिये सेनायें वापिस लौटा ली जायें। अतः युधिष्ठिर की आ
पालन करने के लिये वह वापिस लौट पड़ते हैं।

भीम और अर्जुन के वापिस लौटते २ उस स्थान पर अश्वत्थामा भी
जाता है। धृतराष्ट्र दुर्योधन को अश्वत्थामा का उठकर स्वागत करने का
देता है। अश्वत्थामा आते ही दुर्योधन के मित्र कर्ण की निन्दा करने
है, जिस पर दुर्योधन उससे रुष्ट होकर उपालम्भ करता है कि अश्वत्था
कर्ण के वध की ही प्रतीक्षा क्यों की; उसके वध की भी प्रतीक्षा कर लेवे,
कि दुर्योधन और कर्ण में कोई अन्तर नहीं है। इस पर अश्वत्थामा अप्रस
होकर चला जाता है, परन्तु धृतराष्ट्र उसके प्रति अपने और गान्धा
वात्सल्य की तथा उसके पिता के अपमान की याद दिलाकर भ्रातृशो
विक्षिप्त चित्त दुर्योधन की बात का बुरा न मानने का संजय द्वारा
भेजता है।

षष्ठ अङ्क—अङ्क के प्रारम्भ में युधिष्ठिर को चिन्तित अवस्था में दिख
गया है। भीम ने प्रतिज्ञा की है कि वह आज दुर्योधन का वध करके अ
प्रतिज्ञा पूर्ण करेगा अन्यथा स्वयं आत्मघात कर लेगा। यह समाचार आ
दुर्योधन चुपचाप एक जलाशय में जाकर छिप गया। बहुत खोजने पर भी उ
न लगने से युधिष्ठिर अत्यधिक चिन्तित है। इसी समय एक पुरुष आ
देता है कि दुरात्मा दुर्योधन का पता लग गया है, दुर्योधन और

का गदा युद्ध हो रहा है। इस युद्ध में भीम की विजय निश्चित है। इसलिये कृष्ण भगवान् ने सन्देश भेजा है कि युधिष्ठिर राज्याभिषेक की तैयारी करें और द्रौपदी अपने वेणी-संहार का उत्सव मनावें।

राज्याभिषेक की तैयारी के लिये पुरोहितों तथा अन्य कर्मचारियों को आज्ञा दे दी जाती है, परन्तु इसी समय घटनायें एक नया मोड़ ले लेती हैं। दुर्योधन का एक मित्र चार्वाक नाम का राक्षस मुनि का वेष धारण करके युधिष्ठिर के पास आता है। वह इस बात का ढोंग रचता है कि वह भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध देखकर समन्तपञ्चक से आ रहा है, उसे इस बात का दुःख है कि शरद् ऋतु की प्रचण्ड धूप के कारण वह अर्जुन और दुर्योधन के गदा युद्ध को पूरा नहीं देख सका है। युधिष्ठिर अर्जुन और दुर्योधन के गदा-युद्ध की बात सुनकर चौंकता है। अधिक पूछने पर पता चलता है कि कृष्ण के भाई बलराम द्वारा दुर्योधन को गुप्त संकेत कर देने पर गदायुद्ध में भीम मारा गया है। युधिष्ठिर और द्रौपदी शोकाभिभूत हो जाते हैं और मरने को तैयार होते हैं। चार्वाक चुपके से चिता तैयार करके उसे प्रज्वलित करने के लिये वहाँ से चला जाता है।

इसी बीच नेपथ्य में कोलाहल सुनाई पड़ता है। युधिष्ठिर इसे दुर्योधन का आगमन समझता है। द्रौपदी छिपने की चेष्टा करती है। रुधिर से लथपथ शरीर वाला भीम मञ्च पर आता है और द्रौपदी के केशों को बाँधने के लिये उसे पकड़ लेता है। युधिष्ठिर उसे दुर्योधन समझकर लड़ना चाहता है। अन्त में वास्तविकता का पता चलता है। द्रौपदी प्रसन्नता से वेणी बाँधती है। वासुदेव और अर्जुन मञ्च पर आते हैं। चार्वाक नकुल द्वारा पकड़ लिया जाता है। युधिष्ठिर भीम और अर्जुन का आलिङ्गन करके हर्षित होते हैं और भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

(२) कथावस्तु का स्रोत—महाभारत

रामायण और महाभारत ये दोनों वीरगाथा काव्य संस्कृत के अनेक काव्यों तथा नाटकों के उपजीव्य रहे हैं। भट्टनारायण के वेणीसंहार नाटक की

कथावस्तु भी महाभारत से ली गई है। भट्टनारायण ने अन्य कवियों की भाँति महाभारत के किसी आख्यान को न लेकर महाभारत की मुख्य कथा को अपने नाटक का आधार बनाया है।[1] वेणीसंहार का प्रारम्भ भगवान् श्रीकृष्ण के सन्धि-प्रयत्न से होता है, जो महाभारत के उद्योगपर्व में आता है। नाटक की समाप्ति युधिष्ठिर के राज्याभिषेक पर होती है, जो महाभारत के शान्तिपर्व में आया है। इस प्रकार वेणीसंहार में महाभारत के उद्योगपर्व से लेकर शान्तिपर्व तक की घटनाओं को नाटक की आवश्यकतानुसार भाग-त्याग-पूर्वक संक्षिप्त, परिवर्तित तथा संशोधित करके अपनाया गया है।

(३) वेणीसंहार की कथावस्तु पर स्रोत का प्रभाव—परिवर्तन और उनका नाटकीय प्रभाव

मूल स्रोत का प्रभाव— वेणीसंहार के प्रायः सभी प्रधान पात्र, केवल दुर्योधन की पत्नी भानुमती को छोड़कर, महाभारत से लिये गये हैं। मोटे तौर पर, घटनाओं के सूक्ष्म विस्तारों और छोटी घटनाओं को छोड़कर वेणीसंहार की सब घटनायें महाभारत से ली गई हैं।

महाभारत के मुख्य कथानक को चुनकर भट्टनारायण ने उसे अपनी कवि-प्रतिभा द्वारा रोचक नाटक का रूप दे दिया है। परन्तु महाभारत की प्रसिद्ध कथा को नाटक का विषय बनाने में कुछ असुविधायें भी थीं। महाभारत की कथा लोक-प्रसिद्ध थी, इसलिये भट्टनारायण इच्छानुसार नाटक की आवश्यकतानुसार कथा में आमूल परिवर्तन नहीं कर सकता था और न ही महाभारत के प्रसिद्ध पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकता

---

१ संस्कृत के महाकाव्य और नाटक, जिनकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है, निम्नलिखित हैं:—

२· —कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित।

. —मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग, बालचरित (भास के ७ नाटक); अभिज्ञानशाकुन्तल और राजशेखर का बालभारत।

था । इसलिये महाभारत की कथा चुनने से जहाँ 'उदात्तकथा' के कारण नाटक के लोकप्रिय होने की आशा की जा सकती थी[1], वहाँ दूसरी ओर यह हानि भी हुई है कि कवि को उपर्युक्त कारणों से परिवर्तन और परिवर्धन की पूरी छूट न होने से अनेक अनावश्यक कथांशों को भी स्थान देना पड़ा है, जिससे नाटक वस्तु-योजना में शिथिलता के दोष से ग्रस्त हो गया है।

आख्यान में किये गए परिवर्तन — वेणीसंहार के कथानक की महाभारत की कथा से तुलना करने पर भट्टनारायण द्वारा मूल कथा में किये गये परिवर्तनों तथा परिवर्धनों का आसानी से पता लग सकता है। महाभारत की कथा में किये गये कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं—

नाटक के प्रथम अङ्क में पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान् कृष्ण गये हैं। दुर्योधन भगवान् कृष्ण को पकड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु वह अपना विश्वरूप प्रकट करके उसे अभिभूत कर देते हैं। महाभारत की कथा में पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव प्रथम सञ्जय के माध्यम से किया गया है। उसके असफल होने पर स्वयं भगवान् कृष्ण सन्धि कराने का प्रयत्न करते हैं। दुर्योधन श्रीकृष्ण को पकड़ने का षड्यन्त्र रचता है, परन्तु पता लगने पर धृतराष्ट्र उसे डाँटते हैं। महाभारत में भगवान् ने अपने विश्वरूप का प्रदर्शन दुर्योधन पर अपनी शक्ति का प्रभाव जमाने के लिये किया है, न कि उसके उन्हें पकड़ने के प्रयत्न को विफल करने के लिये। सम्भवतः भट्टनारायण को यह परिवर्तन करने की प्रेरणा भास के दूतवाक्य से मिली है।

महाभारत में अश्वत्थामा और कर्ण का कलह, जो इस नाटक के तृतीय अङ्क में दिखाया गया है, कर्ण और कृप के मध्य प्रारम्भ होता है, परन्तु अश्वत्थामा उसे अपने ऊपर ले लेता है। महाभारत में कर्ण और अश्वत्थामा का कलह द्रोणाचार्य के वध से पूर्व होता है। नाटक में अश्वत्थामा और कर्ण के कलह का कारण कर्ण द्वारा द्रोणाचार्य की निन्दा है तथा यह घटना

1. तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये । वेणीसंहार, पृ० ८ ।

द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दिखलाई गई है। नाटक मे महाभारत के कथा क्रम में एक अन्य परिवर्तन यह किया गया है कि महाभारत मे चार्वाक रा[illegible] का युधिष्ठिर की सभा में प्रवेश उसके हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पश्[illegible] वर्णित किया गया है और वहाँ चार्वाक का उद्देश्य युधिष्ठिर की निन्दा क[illegible] है। परन्तु नाटक में मुनिवेषधारी चार्वाक के साथ युधिष्ठिर की भेंट प[illegible] दिखलाई गई है। नाटक मे चार्वाक की अवतारणा नाटक के घटना-क्रम [illegible] एक नया मोड़ देने के लिये की गई है।

महाभारत मे जलाशय मे छिपे हुये दुर्योधन का पता लग जाने पर युधि[illegible] आदि सब वहाँ पहुंच गये हैं और दुर्योधन को युद्ध के लिये युधिष्ठिर [illegible] ललकारा गया है तथा युधिष्ठिर द्वारा दुर्योधन को यह छूट दी गई है कि द्वन्द्वयुद्ध में कोई से भी पाण्डव से लड़ सकता है। नाटक मे दुर्योधन को के लिये ललकारना तथा कोई से भी पाण्डव से द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव भीम [illegible] किया गया है, जब कि युधिष्ठिर अन्य स्थल पर है।

कथावस्तु में नूतन उद्भावनायें—भट्टनारायण ने नाटक की आवश्यक[illegible] के अनुसार केवल आख्यान के घटना-क्रमों मे ही हेर फेर नही किया गय[illegible] अपितु कई सर्वथा नूतन उद्भावनायें भी की हैं। सर्व प्रथम द्रौपदी के [illegible] संहार की घटना, जिस पर नाटक का नाम पड़ा है, कवि की सर्वथा मौ[illegible] कल्पना है। महाभारत में भीम द्वारा दुर्योधन के उरुभङ्ग की प्रतिज्ञा क[illegible] वर्णन किया गया है, लेकिन उसके रुधिर से द्रौपदी के केश सवारने का न[illegible] प्रथम अङ्क मे भानुमती द्वारा द्रौपदी से केश सवारण सम्बन्धी प्रश्न की [illegible] भी परिकल्पित है। दुर्योधन की पत्नी भानुमती, पाञ्चालक, सुन्[illegible] रुधिरप्रिय राक्षस तथा उसकी पत्नी और वसुन्धरा, चेटी एव सभी आदि कोरे पात्र कवि की अपनी उद्भावनायें हैं।

नाटक का सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क, तृतीय अङ्क का प्रवेशक, सम्पूर्ण प[illegible] अङ्क, छठे अङ्क में भीम की प्रतिज्ञा, चार्वाक द्वारा युधिष्ठिर की वञ्चना दुर्योधन तथा द्रौपदी द्वारा [illegible] की [illegible] तथा विलाप कवि स्वयं की कल्पनायें हैं, जिनका [illegible]

सभी अङ्कों का नाटकीय प्रभाव — जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वेणीसंहार की कथा महाभारत की प्रसिद्ध कथा है। नाटककार की मौलिकता और निपुणता इस बात में है कि उसने महाभारत की विस्तृत कथा को नाटक के केवलमात्र ६ अङ्कों के कलेवर में चतुरता से सीमित करके उसे प्रभावपूर्ण और रोचक बना दिया है। महाभारत की कथा को रोचक नाटक में प्रस्तुत करने में भट्टनारायण ने जो प्रतिभा दिखलाई है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। उसने महाभारत की कथा में घटनाओं के क्रम और संयोग में जो परिवर्तन किये हैं तथा नाटक को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये जो नई उद्भावनायें की हैं, उनसे नाटकीय व्यापार को गति तथा पात्रों के चरित्र को अभिव्यक्ति का अवसर मिला है।

संजय और कृष्ण के शान्ति प्रयत्नों को एक में मिलाकर न केवल कवि ने मितव्ययिता की है, अपितु इससे व्युत्पत्ति[1] के लिये पृष्ठभूमि भी प्रदान की है तथा इससे युधिष्ठिर, भीम तथा दुर्योधन के चरित्रों की अभिव्यक्ति के लिये भी अवसर मिला है। भानुमती द्वारा द्रौपदी से उपालम्भपूर्वक प्रश्न किये जाने की घटना ने, जो कवि की अपनी कल्पना है, भीम के क्रोध को और भी भड़का दिया है, जो शत्रु-संहार द्वारा 'वेणी-संहार' रूप फल का बीज सिद्ध हुआ है।

द्वितीय अङ्क में भानुमती के स्वप्नदर्शन तथा वायु द्वारा रथ-ध्वज के भङ्ग से भावी घटनाओं की सूचना मिलती है। इस अङ्क में बालोद्यान का दृश्य पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती अङ्कों में निबद्ध उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों से भिन्न प्रकार की कोमल परिस्थिति का सर्जन करके दर्शकों के सामने सुखद परिवर्तन उपस्थित करता है। इस अङ्क से दुर्योधन के चरित्र के दूसरे पक्ष पर भी प्रकाश पड़ता है। इस अङ्क में कञ्चुकी की 'भग्नं भग्नम्' आदि उक्ति द्वारा 'पताकास्थानक' की योजना ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर दी है।

तृतीय अङ्क के प्रवेशक में रुधिरप्रिय और उसकी पत्नी की अवतारणा करके कवि ने द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा और घटोत्कच आदि वीरों के वध की सूचना दे दी है और साथ ही दुःशासन के रुधिर-पान के जघन्य कृत्य को

---

1. देखिये, वेणीसंहार पृ० २६।

अन्तःप्रविष्ट राक्षस द्वारा किया गया सूचित करके भीम के चरित्र की कर ली है।

द्रोणाचार्य के वध को जानकर पाठक को यह जिज्ञासा होती है अश्वत्थामा जैसे पराक्रमी वीर ने अपने पिता के अनुचित मरण का बदला न लिया? उसने भीम से दुःशासन की रक्षा क्यों नहीं की ? कवि ने अश्व और कर्ण के कलह और दुर्योधन द्वारा कर्ण के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कर्ण के जीवित रहते शस्त्र त्याग का चित्रण करके तथा आकाशसंचारिणी की योजना करके अश्वत्थामा के ब्रह्मतेज तथा स्वामिभक्ति की रक्षा की है

चतुर्थ अङ्क लम्बे वर्णनात्मक संवादों तथा भाषा की क्लिष्टता के यद्यपि नीरस हो गया है; तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सुन्दर अवतारणा करके कवि ने महाभारत की लम्बी कथा को एक छोटे से चतुरता से समेट दिया है। युद्धभूमि से भेजा गया कर्ण का सन्देश और पर दुर्योधन की प्रतिक्रिया दुर्योधन के चरित्र का उद्घाटन करती है। अन्त में धृतराष्ट्र और गान्धारी का मञ्च पर प्रवेश दुर्योधन को कर्ण की सह करने से रोक देता है, जिससे पाण्डवों के लिये कर्ण के वध का मार्ग प्र हो जाता है।

पाँचवाँ अङ्क, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कवि की अपनी उद्भा है। इस अङ्क से न तो कथा आगे बढ़ती है और न ही नाटकीय व्यापार गति मिलती है, प्रत्युत इससे नाटकीय व्यापार में गति-रोध उत्पन्न हो है। परन्तु इसे धृतराष्ट्र और गान्धारी की वात्सल्य-भावना, दुर्योधन के स्व मान तथा अपने दिवंगत मित्र कर्ण के प्रति अनुपम प्रेम एवं अश्वत्था आत्माभिमान की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

कवि ने षष्ठ अङ्क में दुर्योधन का तर्जन और द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव भी मुख से कराकर सर्वथा उचित किया है, क्योंकि नाटक में व्यापार का मुख्य रूप से भीम ही है। भीम की अनन्यदिनगामिनी दुर्योधन-वध की प्र ... चार्वाक की अवतारणा ने युधिष्ठिर के भ्रातृप्रेम की अभिव्यक्ति का अ ... किया है। चार्वाक के हृदय की यो...

नया मोड मिला है और कवि ने करुण रस की अभिव्यक्ति के लिये इसका अच्छा उपयोग किया है।

(४) वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान, समय तथा अवधि

वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान—वेणीसंहार नाटक की घटनाओं का स्थान प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र है, जिसे नाटक में समन्तपञ्चक कहा गया है। लेकिन प्रत्येक अङ्क के व्यापार का स्थल अलग अलग है। कभी कभी एक अङ्क में निबद्ध व्यापार के भी स्थलों में परिवर्तन हुआ है। प्रथम अङ्क का व्यापार पाण्डवों के शिविर के किसी एक भाग में प्रारम्भ होता है, जो द्रौपदी की चतुःशाला से बहुत दूर नहीं है। बाद में व्यापार का केन्द्र द्रौपदी की चतुःशाला हो जाती है। द्वितीय अङ्क के व्यापार का केन्द्र दुर्योधन के प्रासाद का अन्तःपुर उससे संलग्न बालोद्यान तथा दारुप्रासाद है। तृतीय अङ्क का व्यापार युद्धक्षेत्र के किसी भाग में प्रारम्भ हुआ है और बाद में एक वटवृक्ष के अधोभाग में स्थानान्तरित हो गया है। चतुर्थ अङ्क में वस्तुतः कोई नाट्य-व्यापार नहीं है, लेकिन प्रारम्भ में अङ्क का दृश्य स्थल युद्ध-क्षेत्र है और बाद में दृश्य-स्थल वहाँ से कुछ दूर स्थित कोई सघन छाया वाला वटवृक्ष हो गया है, जो सम्भवतः तृतीय अङ्क में उल्लिखित वटवृक्ष ही है। पञ्चम अङ्क के व्यापार का स्थान भी यही वटवृक्ष है। छठे अङ्क के व्यापार का केन्द्रस्थान युद्धभूमि से कुछ दूरी पर स्थित युधिष्ठिर का शिविर है। इस प्रकार नाटक के व्यापार का दृश्य-स्थल युद्धभूमि, दुर्योधन का राजमहल और उनके ही समीपवर्ती अन्य स्थान हैं। नाटक के व्यापार के दृश्य-स्थलों में ऐसी दूरी अथवा विषमता नहीं है जिसके कारण नाटकीय व्यापार में या उसके प्रभाव में व्याघात हो।

वेणीसंहार नाटक की घटनाओं का समय और अवधि—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नाटक की कथावस्तु में १८ दिन चलने वाले महाभारत-युद्ध की घटनाओं का समावेश हुआ है। नाटक के प्रारम्भ में कृष्ण द्वारा सन्धि कराने के प्रयत्न का उल्लेख हुआ है। सन्धि कराने के प्रयत्न की घटना वास्तविक युद्ध प्रारम्भ होने से एक या दो मास पूर्व हुई होगी। महाभारत के

अनुसार युद्ध अट्ठारह दिन चला था। इस प्रकार नाटक में उल्लिखित सब वर्णित घटनाओं का समय लगभग डेढ़ या दो मास है, लेकिन नाटककार इन घटनाओं को चार दिन की अवधि में सीमित कर दिया है।

प्रथम अङ्क पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि कराने के लिये दूत बनकर गए हुए कृष्ण के समाचार तथा दुर्योधन द्वारा किये गये अनेक अपमानों के स्मरण से क्रोधाविष्ट भीमसेन के रङ्गमञ्च पर प्रवेश से प्रारम्भ होता है तथा युधिष्ठिर द्वारा की गई युद्ध-घोषणा पर समाप्त होता है। इस प्रकार प्रथम अङ्क महाभारत युद्ध के प्रथम दिन की घटनाओं का सन्निवेश है।

द्वितीय अङ्क का व्यापार भीष्म तथा अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् प्रारम्भ होता है। महाभारत के अनुसार भीष्म और अभिमन्यु का वध क्रमशः युद्ध के १०वें और १३वें दिन हुआ था। इस प्रकार द्वितीय अङ्क में महाभारत युद्ध के १४वें दिन की घटनाओं का समावेश हुआ है।

तृतीय अङ्क का व्यापार घटोत्कच की मृत्यु के पश्चात् उस दिन प्रारम्भ हुआ है जिस दिन द्रोण का वध हुआ था। महाभारत के अनुसार यह घटना युद्ध के १५वें दिन हुई थी। इस प्रकार द्वितीय और तृतीय अङ्क की घटनायें लगातार दिनों की घटनायें हैं। चतुर्थ और पञ्चम अङ्क में भी उसी दिन की घटनायें हैं।

षष्ठ अङ्क में उल्लिखित शल्य, शकुनि और दुर्योधन के वध की घटना महाभारत युद्ध के १८वें दिन हुई थी। इसलिये पाँचवें और छठे अङ्क की घटनाओं में दो दिन का मध्यान्तर समझना चाहिये।

इस प्रकार नाटक में महाभारत युद्ध की पहले, चौदहवें, पन्द्रहवें और अट्ठारहवें दिन की घटनाओं का समावेश किया गया है। प्रथम अङ्क की घटना का समय युद्ध के प्रथम दिन का पूर्वाह्न है और व्यापार की अवधि लगभग प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक रही होगी। द्वितीय अङ्क की घटना का समय युद्ध के १४वें दिन का पूर्वाह्न है और अवधि लगभग प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक। तृतीय अङ्क की घटना का समय युद्ध के १५वें दिन का मध्याह्न है। ... अङ्क की घटना का समय उसी दिन का अपराह्न भाग है और पञ्चम

ङ्क का समय उसी दिन की सन्ध्या है। षष्ठ अङ्क की घटना का समय पु
१८वें दिन का उत्तरार्ध है।

कवि ने एक अङ्क में एक दिन से अधिक की घटनाओं का समावेश
के 'कालगत अन्विति' (Unity of time) का पूरा पूरा पालन किया है।

(५) वेणीसंहार का नाट्यशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण

संस्कृत नाट्यों के प्रकार—संस्कृत काव्यों का प्रयोग की दृष्टि से दृश्य औ
य दो श्रेणियों में विभाजन किया गया है।[1] दृश्य काव्यों को नाट्य, रू
रूपक भी कहा गया है।[2] दृश्य काव्यों के लिये आजकल हिन्दी भाषा
टक शब्द प्रचलित है, परन्तु संस्कृत के नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में नाट
द दृश्य काव्य के एक विशेष प्रकार के लिये प्रयुक्त हुआ है। दृश्य-काव्य
फिर रूपक और उपरूपक दो भेद किये गये हैं। संस्कृत के नाट्यों म
भय रस माना गया है और उनके वस्तु (कथानक), नेता (नायक) औ
र के आधार पर और आगे उप-भेद किये गये हैं। रूपक के १० और उ
रक के १८ प्रकार होते हैं।[3]

संस्कृत नाट्यों की रचना-विधान (Structure of Sanskrit
ramas)—संस्कृत नाटकों की बाह्य रचना लगभग एक ही प्रकार की है

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। साहित्य दर्पण, ६।१

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्॥ दशरूपक १।७

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥
नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च॥
· प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः।
सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्॥ साहित्य दर्पण ६।३-६

संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नान्दी (मङ्गलाचरण) से होता है। नाटक के रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत करने समय नटों को रङ्ग में पधारने वाले विघ्नों की शान्ति के लिये पूजा का विधान किया गया है। इसे पूर्वरङ्ग कहा जाता है।[1] न के पश्चात् सूत्रधार अथवा स्थापक कवि तथा कृति का परिचय दे और प्राय: नाटक के प्रयोग के समय की भी सूचना देता है।[2] वह नटी अ पारिपार्श्विक या नट या विदूषक के साथ वार्तालाप में वीथ्यङ्गों द्वारा अ वस्तु अथवा किसी प्रमुख पात्र की सूचना दे देता है।[3] सूत्रधार के इस व लाप को नाट्य-शास्त्र के ग्रन्थों में आमुख या प्रस्तावना कहते हैं।

वस्तुत: नाट्य-व्यापार प्रस्तावना के पश्चात् प्रारम्भ होता है। व्यापार से सम्बद्ध घटनाओं को दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। घटना सरस और मुख्य पात्र (नायक) से सम्बद्ध होती है और जिसका रङ्गमञ्च पर अभिनय किया जाता है, उसका समावेश अङ्क में किया जाता एक अङ्क मे प्राय: नायक से सम्बद्ध एक दिन की घटना रक्खी जाती है परन्तु जो घटना नीरस, अङ्क में अदर्शनीय तथा अधिक समय तक घटने व होती है अथवा जब दो अङ्कों मे निबद्ध की गई घटनाओं के मध्य अधिक स अवधि का अन्तर होता है तो उनकी केवलमात्र सूचना दे दी जाती है।[5] प्रकार घटनाओं की सूचना नाटक के जिस भाग मे दी जाती है, 'अर्थोपक्षेपक' कहते हैं।[6] यदि मूल से ही सरस कथा प्रारम्भ हो जाती है

---

१ साहित्य दर्पण ६।२२; दशरूपक ३।२

२ केवल भास के नाटक और दक्षिणी भारत मे प्राप्त कुछ अन्य नाटकों पाण्डुलिपिया इसके अपवाद हैं।

३ दशरूपक ३।३–८; साहित्य दर्पण ६।२७, २८, ३१,-३२

४ दशरूपक ३।३६, ३७

५ साहित्य दर्पण ६।५१, ५२

६ अर्थोपक्षेपक ५ प्रकार के होते हैं— विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलि अङ्कावतार और अङ्कमुख (अङ्कास्य)। अर्थोपक्षेपक के ये भेद पात्रों कोटि, नाट्यशाला मे स्थिति और अङ्क से सम्बन्ध के आधार पर कि गये हैं। देखिये, साहित्यदर्पण ६।५४–६०

स्तावना के तुरन्त बाद अङ्क रखा जाता है। लेकिन यदि अभिनेय घटना ी परिस्थितियों को सुबोध बनाने के लिये कुछ पूर्ववर्ती घटनाओं की सूचना ना अपेक्षित होता है तो प्रस्तावना और प्रथम अङ्क के मध्य में विष्कम्भक ी योजना की जाती है। प्रथम अङ्क के आदि में आवश्यकतानुसार केवल ष्कम्भक का ही प्रयोग किया जाता है। दो अङ्कों के मध्य में विष्कम्भक था अन्य अर्थोपक्षेपकों—अधिकतर प्रवेशक—का प्रयोग किया जाता है।

वेणीसंहार में प्रस्तावना के तुरन्त बाद प्रथम अङ्क प्रारम्भ हो जाता है। हाँ विष्कम्भक के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रथम और द्वितीय ङ्क के मध्य में विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है और द्वितीय तथा तृतीय ङ्क के बीच में प्रवेशक का। शेष अङ्कों के मध्य कोई अर्थोपक्षेपक नहीं रखा या है।

संस्कृत के कुछ नाटकों में अङ्क के मध्य में मुख्य पात्र के चरित से सम्बद्ध ई घटनाओं को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है (उदा०, उत्तरराम- रित सप्तम अङ्क, प्रियदर्शिका तृतीय अङ्क)। अङ्क में आये नाटक को र्भाङ्क' कहते हैं।

संस्कृत के प्रत्येक नाटक का अन्त भी, प्रारम्भ के समान, पद्यमय शीर्वचन से होता है, जिसमें लोक अथवा आश्रयदाता राजा या स्वयं कवि कल्याण की कामना प्रकट की जाती है। पारिभाषिक शब्दों में इस पद्य को रतवाक्य' कहते हैं।

संस्कृत नाटकों में भाषाओं की विविधता संस्कृत नाटकों की एक अन्य शेषता यह भी है कि उनमें संस्कृत के अतिरिक्त कई प्रकार की प्राकृतों का योग किया जाता है। नाट्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार राजा, देव, मन्त्री, ाह्मण आदि उत्तम पात्रों की भाषा संस्कृत होती है और अन्य पात्रों की भाषा कृत। उत्तम स्त्री पात्रों की भाषा प्रायः शौरसेनी होती है और नीच पात्रों । मागधी। पद्य में शौरसेनी-प्राकृत-भाषी पात्रों को महाराष्ट्री प्राकृत के प्रयोग विधान है। जो नीच पात्र जिस देश का हो, उसे उस देश की भाषा बोलने विधान किया गया है।[1]

---

[1] जानकारी के लिये साहित्यदर्पण, ६।१५८-१६९ देखिये।

श्राव्यता की दृष्टि से संवाद का विभाजन—रङ्गमञ्च की आव
विचार से पात्रों के संवाद को श्रव्यता के आधार पर तीन प्रकार से
किया जाता है। जो कथन मञ्च पर उपस्थित सब पात्रों तथा
सामाजिकों को सुनाने का होता है उसे सर्वश्राव्य या 'प्रकाश' क
संस्कृत नाटकों में ऐसे संवाद से पहले 'प्रकाशम्' यह रङ्गमञ्च नि
होता है। (उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २४)। जो कथन किसी को
का नहीं होता, उसे अश्राव्य या 'स्वगत' या आत्मगतम् कहते हैं।[2] ऐ
से पहले 'स्वगतम्'[3] या 'आत्मगतम्'[4] यह रङ्गमञ्च निर्देश दिया रहता
संवाद नियतश्राव्य होता है। नियतश्राव्य दो प्रकार का होता है—

(१) जनान्तिक और (२) अपवारित।

जब 'त्रिपताक' कर से अन्य पात्रों को हटाकर दो पात्र वहीं
परस्पर मन्त्रणा करते हैं, उसे 'जनान्तिक' कहा जाता है।[5] ऐसे
पहले 'जनान्ते' या 'जनान्तिकम्'[6] निर्देश दिया होता है। जब कोई
ओर को मुड़कर या दूसरे स्थान पर जाकर किसी दूसरे पात्र का र
करता है, उसे 'अपवारित' कहते हैं[7] और ऐसे कथन से पहले 'स
या 'अपवार्य' निर्देश दिया रहता है।[8]

कुछ संस्कृत नाटकों में ऐसा भी पाया जाता है कि कोई पात्र र

---

१ सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। साहित्यदर्पण ६।१३८
२ अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्। साहित्यदर्पण ६।१३७
३ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २१६ पर अश्वत्थामा की उक्ति।
४ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २२ पर सहदेव की उक्ति।
५ त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते जनान्तिकम्॥ साहित्यदर्पण ६।१
६ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० २४ पर द्रौपदी की उक्ति।
७ ··· ·· ··· तद्भवेदपवारितम्।
रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते॥ साहित्यदर्पण ६।१३८
८ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० ५२ पर।

ात्र के बिना ही आकाश की ओर मुख उठाकर प्रश्नोत्तर करता है। इ
के प्रश्नोत्तरात्मक संवाद को 'आकाशभाषित' कहते हैं और संवाद
'आकाशभाषितम्' या 'आकाशे' निर्देश लिखा रहता है।[1]

णीसंहार : नाटक, रूपक का एक भेद — वेणीसंहार रूपकों के एक भे
की कोटि में आता है। कवि ने स्वयं वेणीसंहार को नाटक कहा है।
ास्त्रियों के अनुसार नाटक का वृत्त ख्यात होता है। नायक धीरोदात
है और कोई एक रस अङ्गी होता है। यद्यपि कुछ नाट्यशास्त्रियों
ा का लक्षण करते हुये यह कहा है[2] कि नाटक में शृङ्गार अथवा वीर र
अन्यतर मुख्य होना चाहिये, लेकिन सब नाट्यशास्त्री इस मत से सहम
हैं, क्योंकि यदि इस सिद्धान्त को अक्षरशः सत्य मान लिया जाय त
रामचरित' आदि नाटकों की श्रेणी में नहीं आ सकेंगे। आनन्दवर्धन
स्वीकार किया है कि नाटक में किसी एक रस की प्रधानता होन
ये।[3] नाटक पाँचों सन्धियों से युक्त होता है। नाटक में कम से कम पां
अधिक से अधिक दस अङ्क होते हैं। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नाट
लक्षण इस प्रकार दिया है—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासद्धर्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः॥

किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम्॥ साहित्यदर्पण ६।१४०
उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० ४६ और २३६ पर कञ्चुकी की उक्ति मे
तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृति वेणीसंहारं नाम ना
प्रयोक्तुमुद्यता वयम्। वेणीसंहार पृ० ८
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा। साहित्यदर्पण ६।१०
प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धाना नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता॥ ध्वन्यालोक ३।२१

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥ ६।९–११

वेणीसंहार की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। [illegible] युधिष्ठिर धीरोदात्त नायक हैं[1], वीर प्रधान रस है।[2] यह रूपक पाँचों सन्धि से युक्त है और ६ अङ्कों में समाप्त हुआ है। वेणीसंहार में वीर रस के अतिरिक्त करुण, शृङ्गार और बीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार वेणीसंहार में नाटक के प्रायः सभी लक्षण घटते हैं।

वेणीसंहार में अर्थप्रकृति, अवस्था और सन्धि का विचार—पहले कहा जा चुका है कि संस्कृत रूपकों का आश्रय रस होता है। रस की अभिव्यक्ति के लिये किसी सरस कथा का सहारा लिया जाता है। रूपक की कथा और व्यापार में गति तथा सहृदय की उत्सुकता बनाये रखने के लिये नाटककार को कथावस्तु के क्रमिक विकास और सुश्लिष्टता की ओर भी ध्यान रखना होता है। रस और कथा (वृत्त) दोनों के सम्यक् विकास के प्रयोजन से नाटककारों के मार्गप्रदर्शन के लिये अर्थप्रकृति, कार्यावस्था और सन्धि तथा सन्ध्यङ्गों का विचार किया गया है, जिससे कवि उन्हें जानकर रसाभिव्यक्ति के लिये उनका यथायथ संनिवेश कर सकें।[3]

किसी नाटक की कथावस्तु की घटनायें दो प्रकार की होती हैं—(१) आधिकारिक, (२) प्रासङ्गिक। मुख्य घटनाओं को, जो अधिक

---

१ आगे 'वेणीसंहार का नायक' शीर्षक देखिये।

२ 'वेणीसंहार का मुख्य रस' शीर्षक देखिये।

३ रसव्यक्तिमपेक्ष्यैषामङ्गानां संनिवेशनम्।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसंपादनेच्छया ॥ साहित्यदर्पण ६।१२०

(फलप्राप्ति) अथवा अधिकारी से सम्बद्ध होती है, आधिकारिक कहते हैं।¹ आधिकारिक वृत्त के पुन. तीन भाग होते हैं— (१) बीज, (२) बिन्दु और (३) कार्य। प्रासङ्गिक वृत्त भी दो प्रकार का होता है— (१) पताका, जो नाटक में पर्याप्त दूर तक चलता है, (२) प्रकरी, जो वृत्त केवल एक भाग तक चलता है। कार्य (प्रयोजन) की अपेक्षा से बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँच को 'अर्थ-प्रकृति' कहा जाता है।² पताका और प्रकरी का प्रत्येक रूपक में होना अनिवार्य नहीं है।

कार्य का हेतुभूत जो वृत्त थोड़ा सा कह दिया जाता है, वह बीज के समान अनेक प्रकार से विस्तार वाला होता है, इसलिये 'बीज' कहलाता है।³ वेणीसंहार नाटक में द्रौपदी के केशसयमन रूप कार्य का हेतु प्रथम अङ्क में परिनिबद्ध भीमसेन के क्रोध से उपचित युधिष्ठिर का उत्साह जो अङ्क १ श्लोक २४ में अभिव्यक्त हुआ है, 'बीज' है।⁴ अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति पर विच्छिन्न होती हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को 'बिन्दु' कहते हैं।⁵ वेणीसंहार के द्वितीय अङ्क में दुर्योधन की शृङ्गार-चेष्टाओं से विच्छिन्न होता हुआ मुख्य-व्यापार दुःशला और जयद्रथ की माता के प्रवेश से पुनः जुड़ जाता है, क्योंकि

1. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्॥ दशरूपक १।१२
बीज, बिन्दु और कार्य को यद्यपि किसी नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से आधिकारिक वृत्त नहीं कहा गया है, परन्तु ये वृत्त के भाग ही प्रतीत होते हैं।

2. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः॥ दशरूपक १।१८

3. अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते॥ साहित्यदर्पण, ६।६५–६६

4. यथा च वेणीसंहारे द्रौपदीकेशसंयमनहेतुर्भीमक्रोधोपचितयुधिष्ठिरोत्साहो बीजम्। दशरूपक १।१७ पर धनिक की टीका।

5. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। दशरूपक, १।१७

चारोदात्त की घटना के कारण नाटक का ध्यान युद्ध की प्रगति से हट ग है परन्तु अश्वत्थामा को माता द्वारा अर्जुन की ... कर्ण की प्रशंसा का करने से नाटक का ध्यान पुनः युद्ध की घटनाओं की ओर खिंच जाता इसलिये द्वितीय अङ्क में दु.शला और जयद्रथ की माता के हाथ को समझना चाहिये।[1] साहित्यदर्पणकार के अनुसार वेणीसंहार में भीम का चरित पताका है।[2] तृतीय अङ्क में अश्वत्थामा का क्रोध तथा ि और उसका कर्ण के साथ कलह भी 'पताका' कहा जा सकता है, क्यों मुख्य व्यापार की प्रगति से यह प्रासङ्गिक वृत्त ही है। चतुर्थ अङ्क में सुन्द के युद्ध-वर्णन को भी 'पताका' में सम्मिलित किया जा सकता है। पञ्चम अ में धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को सन्धि के लिये समझाना और षष्ठ अङ्क चार्वाक का दृश्य 'प्रकरी' कहा जा सकता है। वेणीसंहार में दुर्योधन का व 'कार्य' है, जिसकी सूचना षष्ठ अङ्क के श्लोक ३७ में दी गई है।

फलार्थी द्वारा प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं—(१) आरम्भ (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति और (५) फलागम।[3] कार्य । पहली अवस्था 'आरम्भ' होती है, जिसमें फल-प्राप्ति की इच्छा प्रकट । जाती है।[4] वेणीसंहार में कार्य की 'आरम्भ' अवस्था भीमसेन की 'चञ्चद्भु भ्रमितचण्ड ' ' इत्यादि उक्तियों में परिलक्षित होती है। कार्य की दूस अवस्था 'यत्न' है। फल की प्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के लिये

१ मिलाइये, ए० बी० गजेन्द्रगडकर, दी वेणीसंहारः ए क्रिटिकल् स्टडी पृ० ११९। -

२ व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते।
यथा—रामचरिते सुग्रीवादेः, वेण्यां भीमादेः शाकुन्तले विदूषकस्य चरितम्
साहित्यदर्पण ६।६७ ab और वृत्ति।

३ अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमः॥ दशरूपक, १।१९

४ भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये। साहित्यदर्पण, ६।७१

व्यापार किया जाता है, उसे 'यत्न' या 'प्रयत्न' कहते हैं।[1] वेणीसंहार में द्वितीय अङ्क में जयद्रथ की माता द्वारा वर्णित पाण्डवों, विशेषतः अर्जुन, का पराक्रम कार्य की 'यत्न' अवस्था है। 'प्राप्त्याशा' या 'प्राप्तिसम्भव' कार्य की तृतीय अवस्था है, जिसमें फल-प्राप्ति के उपाय और उसमें आने वाले विघ्नों पर विचार करने पर फल की प्राप्ति सम्भव प्रतीत होने लगे।[2] वेणीसंहार में पृ० १३४ पर भीमसेन की 'मोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरव.' यह उक्ति, पृ० १३६ पर अश्वत्थामा की 'सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन' यह उक्ति और चतुर्थ अङ्क में श्लोक २, ३, ४ और ६ में दुर्योधन की मृत्यु की सम्भावना कार्य की 'प्राप्त्याशा' अवस्था है। जब अपाय के दूर हो जाने पर फल-प्राप्ति निश्चित हो जाती है, तो वह कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था है।[3] वेणीसंहार में जलाशय में छिपे हुए दुर्योधन का पता लग जाने पर पाञ्चालक द्वारा भेजा गया कृष्ण का सन्देश और युधिष्ठिर द्वारा समारम्भ की तैयारी का आदेश (पृ० २३४, २३६) कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था को सूचित करता है। जब समग्र फल-प्राप्ति हो जाये, कार्य की उस अवस्था को 'फलागम' या 'फलयोग' कहते हैं।[4] वेणीसंहार में द्रौपदी का केश-संयमन कार्य की 'फलागम' अवस्था है, जिसका पृ० २८२–८३ पर श्लोक संख्या ४२ में उल्लेख हुआ है।

पाँच अर्थ-प्रकृति और पाँच कार्यावस्थाओं को मिलाकर उनके आधार पर नाट्य-शरीर का एक तीसरे प्रकार से विभागीकरण किया गया है, जिसे सन्धि कहते हैं।[5] एक सन्धि में एक प्रयोजन से अन्वित कथांशों का एक अवान्तर

---

१ प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। साहित्यदर्पण, ६।७२

२ उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः। दशरूपक, १।२१

३ अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक १।२१

४ सावस्था फलयोगः स्याद् यः समग्रफलोदयः। साहित्यदर्पण ६।७३

५ अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।
यथासङ्ख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः॥
अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति। दशरूपक १।२२–२३

प्रयोजन से सम्बन्ध होता है।¹ ये सन्धियाँ भी पाँच होती हैं मुख, प्र
गर्भ, विमर्श और निर्वहण। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण
में क्रमशः कार्य की आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम अ
होती है।

वेणीसंहार के प्रथम अङ्क में मुख सन्धि तथा द्वितीय अङ्क में प्र
सन्धि है। तृतीय अङ्क और चतुर्थ अङ्क में गर्भ सन्धि है। पञ्चम अङ्क में
षष्ठ अङ्क में दुर्योधन के रुधिर से रंगे हुए हाथ वाले भीम के प्रवेश
विमर्श सन्धि है। इसके पश्चात् नाटक की समाप्तिपर्यन्त निर्वहण सन्धि है

नाट्य-शास्त्रियों ने पाँचों सन्धियों के भी सूक्ष्म विभाग किये हैं, जि
सन्ध्यङ्ग कहते हैं और जिनकी संख्या ६४(१२+१३+१२+१३+१
है। वेणीसंहार में इन सन्ध्यङ्गों को यहाँ दिखलाना सम्भव नहीं है। जि
पाठकों को इसके लिये दशरूपक या साहित्यदर्पण देखना चाहिये. अ
सन्ध्यङ्गों के उदाहरण अधिकतर रत्नावली और वेणीसंहार से लिये गये हैं

(६) वेणीसंहार की समीक्षा

वेणीसंहार की विशेषतायें—ऊपर (पृ० xiv—xvii) 'संस्कृत साहि
में भट्टनारायण का स्थान' शीर्षक के अन्तर्गत भट्टनारायण के कवि
नाटककार रूप का विवेचन करते हुए वेणीसंहार के काव्य-पक्ष तथा नाट्य
की ओर संकेत किया गया था। वेणीसंहार नाटक से नाट्य-शास्त्र त
अलङ्कार-शास्त्र के विद्वान् अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों
अनेक उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं। इसी से संस्कृत साहित्य में वेणीसंह
की सैद्धान्तिक महत्ता प्रकट है।

यद्यपि वेणीसंहार नाटक अपने समग्र रूप में सफल नाट्य कृति नहीं कह
जा सकती है, क्योंकि उसमें वस्तु-ग्रथन की शिथिलता का बड़ा दोष है, तथा
उसके अङ्कों का यदि पृथक् पृथक् मूल्याङ्कन किया जाय तो केवल चतु
अंक को छोड़कर उसका प्रत्येक अंक अपने आप में एक सुन्दर प्रभावपूर्ण

१ एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसम्बन्धः सन्धिः।
दशरूपक १।२३ पर धनिक की टीका।

...न्दित प्रतीत होगा। प्रथम अङ्क में भीम की आवेश एवं उत्साह से पूर्ण ...क्तियाँ और तदनुरूप पद-योजना पाठक को बलात् चमत्कृत कर देने वाली ...

भट्टनारायण ने विरोधी परिस्थितियों के सघर्ष की योजना से नाटक में ...र्व स्पृहणीयता ला दी है। प्रथम अङ्क में भीम की क्रोधपूर्ण कटूक्तियों और ...पान-जन्य कोलाहट के विरोध में युधिष्ठिर की स्थिरता और शान्ति-...ता पाठक को उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में शान्ति-दायक सिद्ध होती है। ...ऐसी परिस्थितियों का यह सघर्ष ही नाटक का प्राण है, जिससे पाठक ...रस-विभोर हो जाता है। द्वितीय अङ्क भी प्रथम अङ्क के विरोध में ही ...खा गया है। तृतीय अङ्क में वीभत्स, करुण और वीररस को एक दूसरे के ...रोध में रखा गया है। इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में करुण और वीर का ...श्रण हुआ है।

भट्टनारायण ने प्रथम और द्वितीय दोनों ही अङ्कों में बड़ी चतुरता से ...मञ्च पर दोहरे दृश्य की योजना की है। प्रथम अङ्क में द्रौपदी रङ्गमञ्च ...प्रविष्ट भीम और सहदेव के वार्तालाप को सुनती है और भीम के ...गाविष्ट होने पर प्रसन्न होती है। द्वितीय अङ्क में दुर्योधन भानुमती और ...की सखी के वार्तालाप को सुनकर नकुल के प्रसङ्ग को माद्री-पुत्र पाण्डव ...सम्बद्ध समझकर क्रोधावेश में आकर भानुमती को दण्ड देने का निश्चय ...ता है, परन्तु सौभाग्य से उसे वस्तुस्थिति का पता चल जाता है और एक ...री दुर्घटना होने से बाल-बाल बच जाती है। पाठक कदाचित् दुर्योधन के ...र स्वयं भी—

विष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो
दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम्।
मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत्॥

वेणीसंहार २।१२

इन शब्दों मे सन्तोष का अनुभव करेगा।

द्वितीय अङ्क स्वयं मे यद्यपि महान् नाटकीय सम्भावनाओं से भरपूर परन्तु मुख्य नाटकीय व्यापार को गति और प्रभाव देने की दृष्टि में इस कुछ भी महत्त्व नहीं है, प्रत्युत युद्ध-व्यापार की पृष्ठ-भूमि मे, जो कि ना के समग्र शरीर मे ओत-प्रोत है, दुर्योधन की काम चेष्टायें सर्वथा अनु हैं। प्राचीन नाट्य-शास्त्रियों ने भी वेणीसंहार के इस स्थल को 'अकाण्ड-प्र नामक रस-दोष के उदाहरण के रूप मे उद्धृत किया है।

रस की अभिव्यक्ति, संवादों की चुस्ती और चरित्र-चित्रण में उभार दृष्टि से यही बात वेणीसंहार के तृतीय तथा पञ्चम अङ्कों के विषय में जा सकती है। तृतीय और पञ्चम अङ्क स्वयं मे सुन्दर नाट्य कृति हैं, प मुख्य व्यापार की प्रगति के विचार से ये दोनों ही अङ्क निरर्थक हैं।

चतुर्थ अंक को किसी भी प्रकार श्लाघनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह अंक सुन्दरक के लम्बे २ नीरस संवादों के अतिरिक्त कुछ भी न है। यह अंक नाटकीयता की सम्भावनाओं से सर्वथा शून्य है।

षष्ठ अंक युधिष्ठिर के भ्रातृ-प्रेम और करुण-रस की अभिव्यक्ति दृष्टि से प्रशंसनीय है। यह अंक नाटकीय व्यापार से भी भरपूर है। फिर चार्वाक के दृश्य की अवतारणा से मुख्य व्यापार की परिणति में अनावश्य बाधा उपस्थित की गई है।

• वेणीसंहार में नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन—जैसा कि पहले कि जा चुका है कि वेणीसंहार नाटक नाट्य-शास्त्र तथा अलङ्कार-शास्त्र के लेख का अतिप्रिय ग्रन्थ रहा है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता कि वेणीसंहार में नाट्य शास्त्र के नियमों का कठोरता से पालन किया होगा। कतिपयों का विचार है कि वेणीसंहार नाटकीय सिद्धान्तों को ध्यान ...कर लिखा गया है। पर नाटकीय सिद्धान्तों को विशेष ध्यान मे रखने ... ही यह नाटक नाटकीय स्वाभाविकता से रहित हो गया है।

वेणीसंहार के संवाद—वेणीसंहार के संवादों के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया है। पर दूसरी ओर वेणीसंहार में दीर्घसमा[illegible] [illegible] शैली में दुर्बोधता [illegible] [illegible] [illegible] भी है जो [illegible] [illegible] लिये सर्वथा अनुपयुक्त है। वेणीसंहार के संवादों में एक बड़ा दोष य[illegible] है कि भट्टनारायण ने प्राकृत-भाषा-भाषी पात्रों के मुख से भी दीर्घसमा[illegible] भाषा का प्रयोग कराया है। चतुर्थ अंक में प्राकृत-भाषा-भाषी सुन्दर[illegible] संवाद इसी कोटि के हैं। छठे अंक में चार्वाक के संवाद भी नाट[illegible] अनुपयुक्त है।

वेणीसंहार की भाषा और शैली—वेणीसंहार संस्कृत में कृत्रिम शै[illegible] युग का नाटक है। इसलिये यह स्वाभाविक था कि भट्टनारायण अपने यु[illegible] प्रवृत्तियों के अनुरूप कृत्रिम शैली का अनुसरण करता। भट्टनारायण [illegible] शैली उसके समकालीन कवि भवभूति के समान है। भट्टनारायण ने ओ[illegible] गुण समास-बहुल गौड़ी, प्रसादगुणयुक्त समास-रहित वैदर्भी और अल्पसम[illegible] पाञ्चाली तीनों रीतियों का प्रयोग किया है। (ऊपर पृ० XV भी देखिये

वेणीसंहार में चरित्र-चित्रण—भट्टनारायण ने वेणीसंहार में चरित्र-चि[illegible] की कला में सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। यद्यपि उसके पात्र महा[illegible]

भीम के मुकाबले मे दुर्योधन भी कोई कम गर्वित और रोषपूर्ण नही है। ट्टनारायण ने दुर्योधन का चरित्र-चित्रण करने में और उसके अनेक रूपो का दर्शन करने मे अधिक प्रयत्न किया है। द्वितीय अङ्क मे जहाँ हमे दुर्योधन के ङ्गारी रूप का दर्शन होता है, वही उसके विपत्ति मे भी अत्रस्त और अपने ल के गर्वित वीर रूप का भी दर्शन होता है। स्वप्न-दर्शन एवं ध्वजभङ्ग के पशकुन से आशङ्कित भानुमती को आश्वस्त करते हुये वह कहता है— 'स्वं र्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव'।[1] दुर्योधन सचमुच ही वीर-सिंह है। ह अपने शत्रु का प्रत्यक्ष मे ही अहित करना चाहता है।[2] भीम द्वारा यह स्ताव करने पर कि वह शस्त्र धारण करके किसी भी पाण्डव से द्वन्द्व युद्ध कर कता है, वह प्रियसाहस भीमसेन से ही युद्ध की माँग करता है— 'कर्ण- :शासनवधात्तुल्यावेव युवां मम। अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः॥' वेणीसंहार ६।११)। दुर्योधन केवलमात्र गर्वित एवं अभिमानी नायक ही हीं है, उसके जीवन का एक अन्य कोमल रूप भी वेणीसंहार में प्रस्फुटित आ है। वह एक सच्चा और भावुक मित्र भी है। वह अङ्गराज कर्ण का भिन्न मित्र है और मित्र की विपत्ति उसे अपनी विपत्ति अनुभव होती है। ह कर्ण की मृत्यु होने पर अपने प्रिय अनुज दुःशासन के वध को भी भूलकर पने मित्र के घातक के कुल को नष्ट करने का निश्चय करता है।[3]

---

1. वेणीसंहार, २।१६
2. प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तु न योग्या रहः।
   किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकाशं रणे॥ वेणीसंहार ५.९
3. शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्स,
   दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम्।
   येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे,
   कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य॥ वेणीसंहार ४।१६

युधिष्ठिर का वेणीसंहार के प्रथम अङ्क में उल्लेख हुआ है और रङ्ग
पर केवल षष्ठ अङ्क में ही प्रवेश होता है । इस प्रकार भट्टनारायण ने युधि
के चरित्र चित्रण के लिये, जो नाटक का मुख्य नायक है, बहुत ही कम स्
दिया है । युधिष्ठिर शान्त स्वभाव और ज्ञाति-क्षय-भीरु है । वह अपने एक
के बिना भी जीवित रहना नहीं चाहता । षष्ठ अङ्क में भीम द्वारा अनर्थ
गामिनी प्रतिज्ञा कर लेने पर उसकी आशङ्का तथा चार्वाक दृश्य में भ्रातृप्रेम
कारण उसकी आतुरता से उसके चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ा है ।

कृष्ण को भट्टनारायण ने विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया
कृष्ण का उल्लेख प्रथम और षष्ठ अङ्क में हुआ है और मञ्च पर प्रवेश
षष्ठ अङ्क के अन्तिम भाग में हुआ है । परन्तु कवि ने, जैसा कि कृष्ण के
से कहलाई गई — 'ततश्चय महाराज, किमस्मात्परं समीहितं सम्पादयामि'
से प्रतीत होता है, कृष्ण को नाटक की घटनाओं के सञ्चालक के
रखा है ।

अश्वत्थामा नाटक के तृतीय और पञ्चम अङ्क में कुछ समय के लिये
है । भट्टनारायण ने अश्वत्थामा को पितृवत्सल और स्वाभिमानी वीर पुरु
रूप में चित्रित किया है । वह स्वामी का हित करने के लिये अनुच
करने के लिए भी तैयार हो जाता है, परन्तु दैव उसे वैसा करने से
देता है । उसे इस बात का पश्चात्ताप है कि वह कर्ण के प्रति क्रोध में की
प्रतिज्ञा के कारण अपने स्वामी का हित नहीं कर सका ।

कर्ण भी केवल तृतीय अङ्क में रङ्गमञ्च पर आता है और द्वितीय,
और षष्ठ अङ्क में उसका उल्लेख हुआ है । चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक ने
... का वर्णन किया है और दुर्योधन को उसका सन्देश दिया है ।
... वह केवल ... और ... ही नहीं है, प्रत्युत ... राजनीतिज्ञ

। वह द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन के मन को द्रोण और अश्वत्थामा के प्रति विषाक्त कर देता है।

धृतराष्ट्र एक पुत्र वत्सल पिता है। वह युद्ध में पराजय और पुत्र-विनाश को देखकर अपने एकमात्र अवशिष्ट पुत्र दुर्योधन को बचा लेने के लिये उसे युधिष्ठिर से सन्धि कर लेने की सलाह देता है। जब दुर्योधन सन्धि के प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है तो धृतराष्ट्र उसे शत्रु के प्रति कपट का अवलम्बन करने का सुझाव देने में भी संकोच नहीं करता।

द्रौपदी रोष और प्रतिशोध की भावना से भरी हुई क्षत्राणी है, जिसे युधिष्ठिर के सन्धि प्रस्ताव और भी उत्तेजित कर देते हैं। उसे अपमान के सागर को पार करने में एकमात्र भीम का सहारा प्रतीत होता है। वेणीसंहार में द्रौपदी का दूसरा रूप— पति की सुरक्षा के विषय में स्त्री-सुलभ सहज आशंका और पति-प्रेम भी प्रकट हुआ है।

भानुमती एक आदर्श हिन्दू स्त्री के रूप में चित्रित की गई है। वह केवल सुन्दरी ही नहीं है, अपितु सद्गृहिणी भी है। पति की विजय-मङ्गल की कामना के लिये वह व्रत और उपवास रखकर देवों का आराधन करना चाहती है। एक धर्मभीरु हिन्दू स्त्री के समान वह शकुनों और निमित्तों में विश्वास रखती है।

गान्धारी पुत्र-वत्सल माता है। उसे इसी में सन्तोष है कि उसका एक पुत्र तो बच जाय। पुत्र की रक्षा के सामने उसे राज्य या जय हेय है— 'त्वमपि तावदेवोऽस्याप्ययुगलस्य मार्गोपदेशकः। तचिर जीव। किं मे राज्येन जयेन वा।' (वेणीसंहार पृ० १८२)।

वेणीसंहार का नायक— वेणीसंहार में महाभारत के कई प्रमुख पात्र नायक हैं और भट्टनारायण उनमें से किसी एक के चरित्र को इतनी प्रमुखता से विकास नहीं कर सका है कि उसे असंदिग्ध रूप से नाटक का मुख्य नायक माना जा सके। इसलिये यह प्रश्न विवादास्पद एवं जटिल हो गया है कि

वेणीसंहार में मुख्य नायक कौन है। इसकी ओर पद वेणीसंहार में मुख्य नाय पद के दावेदार तीन व्यक्ति हो सकते हैं—दुर्योधन, भीम और युधिष्ठिर।

यदि दुर्योधन के चरित्र के चित्रण में विशेष मनोयोग प्रतीत होता है दुर्योधन का नाटक में प्रथम अङ्क में उल्लेख हुआ है। द्वितीय, तृतीय, चतु और पञ्चम अङ्क में वह रङ्गमञ्च पर उपस्थित रहता है और षष्ठ अङ्क में उसका बार बार उल्लेख किया गया है। वह कौरवों का मूर्धाभिषिक्त रा भी है। इस प्रकार नाटक में दुर्योधन को दिये स्थान को देखते हुए दुर्यो को मुख्य नायक का पद दिया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने, जो वेणीसंहा को करुण-रस प्रधान दुःखान्त नाटक (tragedy) मानते हैं, दुर्योधन को वेणीसंहार का मुख्य नायक माना है।[1] परन्तु दुर्योधन को मुख्य नायक मान मे भारतीय नाट्यशास्त्र के इस प्राचीन सिद्धान्त से विरोध पड़ता है कि क भी अधिकारी का वध नहीं दिखलाना चाहिये[2], क्योंकि छठे अङ्क में दुर्यो के वध की सूचना दी गई है।

भीमसेन भी नाटक के प्रथम, पञ्चम तथा षष्ठ अङ्क में रङ्गमञ्च प उपस्थित रहता है। तृतीय और चतुर्थ अङ्क में भी नेपथ्य से कहीं-कहीं उसकं गर्वोक्तियों तथा सुन्दरक द्वारा वर्णन किये गये उसके पराक्रम से निरन्त उसकी सत्ता का भान बना रहता है। द्वितीय अङ्क में कञ्चुकी के 'भग्न भग्न भीमेन' इस वचन से पाठक का ध्यान भीम की ओर आकृष्ट होता है। नाट

---

१ रामचन्द्र राव : ट्रेजेडीज् इन् संस्कृत, प्रोसीडिङ्ग्ज् आफ एट्थ ओरियण्टल कान्फ्रेंस, १९३५ पृ० २९९ और आगे, पाण्डेय तथा व्यास : संस्कृ साहित्य की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण १९४८, पृ० २१३–१४।

२ नाधिकारिवधं क्वापि। दशरूपक, ३।३६; अधिकृतनायकवधं प्रवेशकादिना प न सूचयेत्। वही, धनिक की टीका।

ुख्य प्रयोजन द्रौपदी का केश-संयमन भीम द्वारा ही सम्पन्न किया गया है। प्रकार भीम, दुर्योधन के अनन्तर दूसरा पात्र है, जो सारे नाटक में छाया ा है। इस कारण प्रो० ए. बी. गजेन्द्रगडकर ने भीम को वेणीसंहार का ा नायक माना है।[1] लेकिन भीम को नाटक का मुख्य नायक स्वीकार करने ी प्राचीन नाट्य शास्त्रीय परम्परा आड़े आती है। नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों अनुसार नाटक के नायक को धीरोदात्त—महासत्त्व, अतिगम्भीर, क्षमावान्, ात्थन, स्थिर, निगूढाहङ्कार और दृढव्रत होना चाहिये।[2] लेकिन भीम ोद्धत प्रकार का नायक है। सारा नाटक उसकी गर्वोक्तियों से गूँज रहा है। धृतराष्ट्र और गान्धारी के सम्मुख भी वह वाणी पर संयम रखने का प्रयत्न ीं करता है। अहङ्कार, रोष एवं उच्छृङ्खलता उसका स्वभाव है। इसलिये ीन परम्परा के अनुसार भीमसेन को नाटक का मुख्य नायक स्वीकार नहीं या जा सकता।

अब मुख्य नायक पद का अधिकारी केवल युधिष्ठिर रह जाता है। प्राचीन ट्यशास्त्र के सिद्धान्तों तथा प्राचीन अलङ्कारिकों के मत के अनुसार युधिष्ठिर ा वेणीसंहार का मुख्य नायक है। युधिष्ठिर धीर, प्रशान्त तथा अविकत्थन ायक है। कवि को भी कदाचित् युधिष्ठिर को ही मुख्य नायक मानना अभीष्ट ा। संस्कृत नाटकों की यह परम्परा है कि नाटक के उपसंहार में अभिमत ल की कामना 'जो प्रायः भरतवाक्य के रूप में होती है' मुख्य नायक के मुख ा कराई जाती है। वेणीसंहार में यह कामना युधिष्ठिर से कराई गई है। ुलभ, युद्ध की समाप्ति पर अनुबन्ध रूप कार्य का मुख्य-फल 'राज्य की प्राप्ति' ुधिष्ठिर को होती है। युधिष्ठिर के आदेश के बिना युद्ध ही प्रारम्भ नहीं हो

---

१ दी वेणीसंहार : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० ६२, ६३।

२ महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥ दशरूपक २।४, ५

सकता था। इसलिये नाटक का मुख्य व्यापार वस्तुत युधिष्ठिर की इ अधीन है। भीम और अर्जुन आदि पाण्डव युधिष्ठिर के आदेश में ही चर है। युधिष्ठिर को मुख्य नायक मानने मे केवल एक बाधा है, और वह यह कवि ने युधिष्ठिर को नाटक में बहुत ही अल्प स्थान दिया है और युधिष्ठिर चरित्र के विकास की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। युधिष्ठिर का उल्ले केवल प्रथम और पञ्चम अङ्क में हुआ है और रङ्गमञ्च पर प्रवेश तो के छठे अङ्क मे ही हुआ है। युधिष्ठिर के प्रति किये गये इस अन्याय के लिये क मे अनुपात-हीनता की भावना ही उत्तरदायी है।

वेणीसंहार का रस-जैसा कि पहले (पृष्ठ XV) में कहा गया है, वेणीसंहे म वीर, बीभत्स, करुण और शृङ्गार रस की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है लेकिन वेणीसंहार के मुख्य नायक के समान, उसके मुख्य रस का प्रश्न विवादास्पद बन गया है। प्रथम अङ्क मे वीर रस की प्रधानता है तो द्वित अङ्क मे शृङ्गार रस की। तृतीय अङ्क मे वीर और करुण रस समान रू पाया जाता है। तृतीय अङ्क के प्रवेशक मे बीभत्स रस की भी व्यञ्जना है। चतुर्थ अङ्क मे सुन्दरक के युद्ध-वर्णन मे यद्यपि वीरों के पराक्रम का क हुआ है, लेकिन वृषसेन की मृत्यु और उस पर कर्ण और दुर्योधन की प्रतिक्रि के वर्णन में करुण रस की प्रधानता है। पञ्चम अङ्क मे धृतराष्ट्र और गान्धा के पुत्र विलाप तथा दुर्योधन के कर्ण की मृत्यु पर किये शोक प्रकाशन करुण रस है, लेकिन अङ्क के अन्त मे दुर्योधन और भीम की उक्ति-प्रत्युक्ति मे वीर रस पाया जाता है। छठे अङ्क मे करुण रस की प्रधानता है। भीम दुर्योधन समाप्त कर युद्ध करने के लिये उद्यत युधिष्ठिर की उक्तियाँ वीररसपू है। इस प्रकार वेणीसंहार नाटक में वीर और करुण रस निरन्तर चलते हैं

रजेन्द्रपदकर ने वेणीसंहार को करुण-रस प्रधान नाटक माना है। परन्त

संहार को वीर-रस का नाटक माना जाता है। कुछ आधुनिक आलोच
वेणीसंहार का अङ्गी रस वीर मानते हैं।

वेणीसंहार में प्रकृति-वर्णन—वेणीसंहार में प्रकृति-वर्णन की ओर क
भ ध्यान नहीं दिया गया है। परन्तु फिर भी द्वितीय अङ्क में प्रभात
परागत सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। द्वितीय अंक में वात्या
र प्रकृति के कठोर रूप का सफल चित्र है। उपयुक्त पदों की योजना वि
ग को उभार देने में पूर्ण रूप से सफल रही है।

वेणीसंहार में सामाजिक अवस्था—वेणीसंहार की कथावस्तु महाभारत
ोन आख्यान पर आधारित है और वेणीसंहार मुख्य रूप से घटना-प्रध
क है, इसलिये वेणीसंहार में यह आशा नहीं की जा सकती कि उससे क
समय के समाज की अवस्थाओं पर अधिक प्रकाश पड़ेगा। परन्तु फिर क
पय भागों (द्वितीय और षष्ठ अङ्क) से कवि के समय की सामाजिक अवस
कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। भानुमती के स्वप्नदर्शन की घटना से प्रत
ा है कि उस समय भी समाज में, विशेषतः स्त्रियों में शकुन और निमि
विचार किया जाता था और लोगों का यह विश्वास था कि देवाराधन त
-पाठ आदि द्वारा उनके बुरे प्रभाव को दूर किया जा सकता था। अ
स्पन्दन से भी लोग भावी घटनाओं का अनुमान करते थे। ध्वज-भङ्ग
ा शकुन समझा जाता था। मृतकों को जल-तर्पण किया जाता था। उ
य मृताशौच की भी प्रथा प्रचलित थी। ब्राह्मण को अवध्य समझा जा
। कभी २ स्त्रियाँ पति की मृत्यु के पश्चात् सती भी हो जाती थी।

वेणीसंहार में प्रयुक्त छन्द— भट्टनारायण ने वेणीसंहार में १८ प्रकार
का उपयोग किया है जिनमे प्रमुख श्लोक, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडि
र स्रग्धरा है। (वेणीसंहार में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण पृ० २९८
)।

वेणीसंहार का उत्तरवर्ती नाटकों पर प्रभाव—भट्टनारायण के वेणीसंह ने केवल नाट्यशास्त्र तथा अलंकार-शास्त्र के विद्वानों को ही आकृष्ट नहीं कि है, प्रत्युत उनके परवर्ती कवि एवं अन्य व्याख्याकार भी उससे प्रभावित हैं। अमरकोष के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीर स्वामी ने वेणीसंहार से अनेक उद दिये हैं। ६वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि राजशेखर के नाटक बालरामायण वेणीसंहार का अनुकरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। राजशेखर रावण के मुख से कहलाई गई 'अराममसदमणं भुवनमद्य निर्वानरम्' इस (अंक ८, ५७) दर्पोक्ति में 'अकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम्' इस (वेणीसंहार ३, ३४) का स्पष्ट अनुकरण प्रतीत होता है। इसी प्रकार कर्ता हरचापदण्डदलने यश्चानुमन्ता ननु। द्रष्टा यश्च परीक्षिता च य इह य च वक्ता च यः' इत्यादि परशुराम की उक्ति में वेणीसंहार में अश्वत्थामा 'कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकम्' (अंक ३, २४) इस उक्ति की प्र ध्वनि प्रतीत होती है।

—डा० शिवराज शास्त्री

श्रीमद्भट्टनारायणप्रणीतम्

वेणीसंहारम्

जगद्धरकृतटिप्पण्या भाषान्तरेण च समेतम्



[illegible]

[illegible]

प्रथमोऽङ्कः

[illegible]

[illegible] इव गभिप्रमुकुलः ।

[illegible] मदनसुभगा [illegible]

[illegible] पुष्पाणां [illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ।

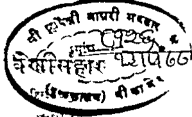
[illegible]

[illegible] ॥

कृष्णदेशमागत्य [illegible] निपुणा कृता ।

श्रीनगद्धरधीमता टिप्पणी [illegible] शुभा ॥

इह तावन्निर्विघ्न [illegible] । नान्दीमुखेनाह—निविडेति । अयं पुष्पाणामञ्जलिः वः [illegible] करोतु । कीदृशीम् । अस्य सदसः सभायाः मदनसुभगां [illegible] च सदस्यानामपि [illegible] विदधातीति भावः । कीदृशोऽञ्जलिः । हरि[illegible] कृष्णपादद्वये प्रकीर्णः विस्तीर्णः । इष्टदेवतापूजोपकरणीभूत इति भावः । [illegible] तद्द्वारा देवता प्रीता स्यात्तया च निर्विघ्नस्वेष्टलाभ इति [illegible] अत्राञ्जलिपदेन लक्षणयाऽञ्जलिस्थपुष्पाणि लक्ष्यन्ते । पुन कीदृशः । [illegible] संलितमकरन्दः पुरोवर्तिभ्रमरैः पीतरसः । कीदृशैः । निविडैरपि निवारितैः [illegible] करादिचालनेन निवारिता अपि [illegible] इति भावः । [illegible] निषिद्धैः धर्मशास्त्रनिषिद्धैः । [illegible] कीदृशानि कुसुमानि विवर्जयेत् ।



प्रथम अङ्कः

(बार-बार) हटाये गये भी इन भौंरों द्वारा पिये गये मधु वाली, चन्द्रमा की किरणों द्वारा मध्य भाग में, मानो, व्याप्त, (अतः) खिली हुई कलियों वाली, विष्णु के चरणों में बिखेरी गई, यह सुमनों की अञ्जलि हमें इस सभा के सेवों को अच्छी लगने वाली सफलता प्रदान करे ॥1॥

मनुवचनात् । पुन. कीदृश । संभिन्नमुकुल. प्रफुल्लकलिकाक । अत्रोत्प्रेक्षित कारणमाह— अन्तः अभ्यन्तरे इन्दोः करैः चन्द्रकिरणैः छुरित इव । तथा च सुधाकरकरस्पर्शादिव प्रफुल्लतेति भाव । मकरन्द. पुष्परस. इत्यमर । अत्र हिमकरकरस्पर्शान्मुकुलसंभेदेन निशाचरप्रकाश्यानि कुसुमानि योग्यतया विवक्षि-तानीति केचित् । सामान्यत पुष्पाणीह विवक्षितानि । प्रफुल्लताहेतुत्वोत्प्रेक्षितो-ऽन्तस्य इव । अन्यथा चोत्प्रेक्षाया अप्रसङ्ग । उत्प्रेक्षा च —अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा । अन्यथोत्प्रेक्ष्यते या तु तामुत्प्रेक्षां विदुर्बुधा ॥ इति लक्षिता । इवशब्दश्चोत्प्रेक्षाभिव्यञ्जक: । तथा च दण्डी । मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः । उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृश. ॥ इत्यपरे ॥ मधुव्रतो मधुकरो मधुलिड् इत्यमर: । भानुः करो मरीचि इति च । भिन्नो दारितसंगतो इति च । मद. समिति मयति इति शाश्वत. । [पाणिनिकुञ्ज: प्रसृति:] तौ युतावञ्जलि: पुमान् । इत्यमर. । इह नान्दी त्रिभि श्लोकैर्द्वादश-पदा । तदुक्त संगीतसर्वस्वे—प्रशस्तपदविन्यासा चन्द्रसङ्कीर्तनान्विता । आशीर्वा-दपरा नान्दी योज्येयं मङ्गलान्विता ॥ काचिद्द्वादशपदा नान्दी काचिदष्टपदा तथा । सूत्रधार पठेदेना मध्यम स्वरमाश्रित ॥ चन्द्रसङ्कीर्तनं यत्र तदधीनो रसो मतः । प्रीते चन्द्रमसि स्त्रीणां रसश्रीरिति भातुकि: ॥ इति । तत्रापि पद केचन विभक्त्यन्तमूचिरे । केचित्तु पद पद्यस्य चतुर्थभागमाहुः । तदिह द्वितीय-

अपि च

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ॥२॥

अपि च

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितैः
आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्दैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥३

पक्षाश्रयणेन त्रिभिः श्लोकैर्द्वादशपदा नान्दी। इह निषिद्धपदेन मित्रादि निषिद्धा अपि सुयोधनादयो निजदर्पादगणिततन्निषेधा युद्धायैव लग्ना इ ध्वनितम्। सभिन्नमुकुलपदेन च युधिष्ठिरादीनां वनवासादिदुःखानन्तरं सु प्रकाशो दर्शित इति केचित्। नान्द्यां वस्तुनिर्देशस्यानङ्गतया तत्सूचनमत्र किन्निरस्करम्। सूचनं तु रक्षतः—इत्यादिनाग्रे कर्तव्यमेव। तत्प्रतीकस्य तद इत्यादिरयन्ये ॥१॥

बहुविघ्नशङ्कया तन्नाशार्थं पुनर्मङ्गलमाचरन्नान्दीनिर्वाहार्थमाह—कालिन् इति। कंसद्विषः कृष्णस्य अनुनयो यो युष्मान् पुष्णातु पुष्टान्करोतु। कीदृश अश्रुभिः अन्वितः। अत्र हेतुमाह—प्रसन्नदयितादृष्टस्य। सप्रसादराधावलोकित इदं सर्वं। कीदृशस्य। केलिकुपिता कौतुक एव क्रोधवती राधिका कालिन्द्या यमुनायाः पुलिनेषु तोयोत्थितदेशेषु अनुगच्छतः अनुप्रयातस्य। कीदृशीम् रासे गोष्ठीक्रायां रसम् अनुरागम् उत्सृज्य त्यक्त्वा गच्छन्तीम् अत ए इदन्तीम्। तथा च रासानुरागिणी प्रणयकुपिता रुदती चेति राधाया सूचितम्। इत्थमालोक्य भगवतापि तदनुगमः कृत इत्याशयः। तत्पादप्रतिमासु तच्चरणपदचिह्नेषु निवेशितपदस्य दत्तपादस्य। तत उद्भूतरोमोद्गतेः जातरोमाञ्चस्य। अत एव प्रसादो

र थी—

यमुना के बालु-तट पर (किसी कारणवश) क्रीडा में कुपित हुई, रास-लीला आनन्द को छोड़कर जाती हुई और अश्रुओं से मलिन राधिका के पीछे-पीछे ते हुये, उसके (राधा के) पद-चिह्नों पर पैर रखते हुये, (इसलिये) रोमाञ्च पन्न हुये और प्रसन्न हुई प्रिया (राधा) द्वारा देखे गये कृष्ण (कंस के शत्रु) सहस अनुनय आप लोगों (सामाजिकों) की पुष्टि करे ॥२॥

र भी—

मयपुर के दाह के समय, देवी (पार्वती) द्वारा प्रेमपूर्वक देखा गया, असुर ओं द्वारा 'यह क्या है' इस प्रकार भय और उद्वेग से (देखा गया), दित्य र मन्दहास के साथ (देखा गया), वधुओं की घबराहट को शान्त कर देने से गर्वित दैत्यवीरों द्वारा अस्त्र खींचकर (देखा गया) और देवताओं द्वारा नन्दपूर्वक (देखा गया) शिव तुम्हारी रक्षा करे ॥३॥

यथापि कृतः । मत्सदृसंबन्धादेवायं भावाविर्भावाभितरां मत्संगमादिति मयि मयमनुरक्त इति सप्रसादं कुपितयापि कान्तया दृष्ट इति भावः । तोयोत्थित तु लिनम् इत्यमरः । अत्र प्रथमार्धेन द्रौपद्या. कोपरोदने सूचिते । उत्तरार्धेन च ीधनवधानन्तरं भीमकृततदीयानुनयस्याक्षुण्णता तस्याश्च प्रसादवत्त्व चेतम् ॥२॥

अत्र विवक्षितार्थस्यापर्यवसानादवशिष्टस्य कथने तत्र अपि च इति शब्दः युज्यते इति व्युत्पत्तिः । एवमन्यत्रापि ।

कवेर्हरिहरनिमग्नमानसत्वेन हरौ स्तुतिमुक्त्वा हरे तामाह— इष्ट इति । र्वैदिः शिवः युष्मान् पातु रक्षतु । कीदृशः । मयपुरदहने त्रिपुरदाहे रेम प्रीतिसहितं यथा स्यादेव देव्या भवान्या इष्टः । धन्याद्य यद्वलभे- यमतिबलो महासुरो निषूदित इति प्रीतिभरया भगवत्या दृष्ट इति वः । तदैव असुरीभिः असुरवधूभिः किमिदम् आपतितम् इति कृत्वा भयात् गात् संभ्रमाद् उद्वेगाच्च दृष्टः । आः कष्ट वयमीदृशाम्याप्यसुरराजस्याय ापरिपाक इति मत्सदृशामितामप्येवं कदाचित्स्यादिति भीतिरुद्वेगश्च ताभिः कृत त भावः । ऋषिभिः वसिष्ठादिभिः सकरुणं दयान्वितं यथा स्यादेवं दृष्टः । इह कथमयं वराको जगदीशेन हरेण समूलमुन्मूलित इति तेषां दया । अत्रोप- तमाह— शान्तेति । शान्तमुपशान्तबद्धदभ्यन्तर तेन तत्त्वमनारोपितरूपं सारो

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधार.—अलमतिविस्तरेण ।

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः ।
तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ॥४॥

वन दग्धं । नाम्नान्तं लिपुराखीति करणा गुहस पूरं । प्राप्यतया विष्णुना आराधितेन दृष्टः । तदुपरि दैवतोऽसुरहो द्रोण ... स्तम्भ दैत्यास्रोऽस्मात्पमय आर्तविमुग्धाद् एव हासंहेतु । सर्वः असुनितं दैत्यवीरेऽहं इ. । तत्र हेतुमाह— असमाकृत्य वीरश्वादिकमुदस्य ... यथुसश्रमः ... । आ. ५ इह महत्तपसा ... ... निरवधूतपुष्टिमनागेना कृपालीदिति भावः । दैवतामि ... सानन्द महर्षे दृष्टः । अथ प्रवमारालनघ पुरानन्देषु । पर्वत मयुर दृश्यन्तीयमे । असुरीरस्य पुमांगाराख्यायाम् इति ङीप् । मयो नाम दैत्यशिल्पी तेन रचितं पुरं मयपुरम् । भारतसमामोऽपि देम्या द्रौपद्या पूर्ववैरात्स्मरेण ... असुरीभिरवासुरीभिर्दुर्योधनादिवधूभिर्मयपाङ्गनाभ्यां दृष्टः । कालादिकैर्नारदादि ... सरय दृष्टः । कृष्णेन हृमना दृष्टः । दैत्यवीरैर्दण्डोऽन्नत्यादिभिः भगर्व ... सानन्दमिन्द्रादिभिश्च दृष्ट इत्यपि कश्चित् कटाक्षितामिति वदन्ति । अत्र पत्रावलीरूपा नान्दीयम् । तदुक्तं तत्रैव— वाक्यार्थवीजरचिता शर्करादि... न्विता । सयुता चन्द्रपधाख्या पत्रावल्यभिधीयते इति ॥३॥

नान्द्यन्ते इति । नन्विदमसङ्गतम् । नहि नान्दीपाठानन्तरं ... रङ्गभूमिं प्रविशति । किंतु प्रविश्य पठति । न चान्येनैव ... पठनीया । सूत्रधारपठनीयत्वेन तस्या उक्तत्वात् । सूत्रधारः पठेदेनां ... स्वरमाश्रितः । इति वचनात् । उच्यते— नान्दी तावद्रङ्गप्रवेशात् ... सूत्रधारेणैव पठनीया । नान्द्यन्ते सूत्रधार इति ... प्रयोगः । तदुक्तं तत्रैव— नान्दीं प्रयुज्य निष्क्रामेत्सूत्रधारः सहानुगः । स्थापकः प्रविशेत्तस्मात्सूत्रधारगुणाकृतिः । पूर्वरङ्गं विधायादौ सू... विनिर्गते । प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः । इति ॥ अत एव ... चित्तपुस्तके नान्द्यन्ते स्थापकः इत्येव पाठः । केचित्तु—नान्द्यं न ...

(नान्दी के पश्चात्)

सूत्रधार— बस, अधिक करने से (क्या प्रयोजन) ?

जिसने श्रोत्ररूपी अञ्जलि-पुट से पीने योग्य भारत (महाभारत) नाम के
न को बनाया है, मैं उन रागरहित और पाप-शून्य कृष्णद्वैपायन (भगवान्
स) को नमस्कार करता हूं ॥४॥

रीया। किन्तु मङ्गलार्थो येन केनचित्पठ्यते। सूत्रधारस्य रङ्गद्वारार्थं प्रविष्ट
स एव पठति। तदुक्तम्— नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सर्वं स्यात्सबीजकम्।
दैवतद्विजादिभिः सूत्रधार उदीरितः। इत्याहुः॥ तत्र। सूत्रधारः पठेन्नान्दी मध्यम
समाश्रितः। इति भरतविरोधात्॥ तत्र सूत्रधारस्यापि लक्षणत्वे प्रमाणा-
भावात्। अन्ये तु—नान्द्यवसाने सूत्रधारः प्रविशति वदति वा। तदन्ते सूत्रधार-
स्य प्रवेशस्यापि तेनैव पठनीया। प्रथम च सूत्रधार इति नोक्तम्। मङ्गलार्थं
नानमस्कारादेरेव विधानादित्यूचुः। ननु प्रस्तावनायाः पूर्वं बहूनि नाट्याङ्गानि
त तानि किमिति नोक्तानि। तदुक्तं तत्रैव— रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः
काव्यार्थसूचकैः। ऋतुं कञ्चिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत्। भेदैः प्ररोचनायुक्तै-
र्वीथीप्रहसनामुखैः। सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाथ विदूषकम्। स्वकार्यं प्रस्तुता-
ेप चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्। अत आह—अलमिति। अयमाशयः—पूर्वोक्ता-
ङ्गानि न भवन्ति। किन्तु परिषदोऽभिमुखीकरणानि। ता चेत्स्वयमेव कृताव-
ना नवनाटकदर्शनोत्सुका च तथाप्यत्प्रयुज्यमानं रसभङ्गाय भवेदिति कृत
प्रणयनेन। अन्यथा तस्या रसविच्छेदः स्यादिति।

इदानीं व्यासप्रणाममाह— श्रवणेति। तं कृष्णद्वैपायनं व्यासम् अहं वन्दे
स्करोमि। यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धादाह-यः भारतनामकम् अमृतं विरचितवान्
नरोत्। आप्यायनादिकर्तृत्वेनामृतत्वं भारतस्य। कीदृशम्। श्रवणं कर्णः
य अञ्जलिपुटं तेन पेयं श्रव्यमयं च पानीयम्। अन्यदप्यमृतमञ्जलिपुटेन
यते। तं कीदृशम्। अरागं रागशून्यम्। विषयासक्तिहीनमित्यर्थः। अत एव
प्रपं निष्कलुषम्। तदिह प्रतिपाद्यभारतकथाया आदिवक्ता व्यासस्तत्त्वविच्चेति
कीर्तनं शुभङ्करमेव भवतीति तदेव कृतमिति भावः॥४॥

[तत्रभवन्तो मान्याः। परिषत्प्रेसरः सभापुरोगण्याः] विज्ञाप्य संबोध्यम्।

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) तत्र भवन्तः पारिपार्श्विकाः, किमर्थं नः क्रियते

कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र ।
मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान् ।

अपि च कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम
प्रयोक्तुमुद्यता वयम् । तत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौ
नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये ।

कुसुमाञ्जलिरिति । एष काव्यबन्धः अपरः कुसुमाञ्जलिरिव प्र
विस्तार्यते । अत्र काव्यबन्धे । विरलानपि स्वल्पानपि गुणलेशान् गुणा
भजत गृह्णीत । हे सभ्याः इति शेषः । [मधुलिह इव] यथा मधुकराः कुसुम
मधुबिन्दून् विरलानपि गृह्णन्ति तथेत्यर्थः । अनेन मदीयनाटके स्वल्पा अपि
गुणा अभिग्राह्या इत्यौद्धत्यपरिहारोऽपि कृत इति ध्वनितम् ॥५॥

मृगराजलक्ष्मणः सिंहचिह्नस्य । नारायणभट्टस्य । कृतिनाटकशब्दयो
लिङ्गतया सामानाधिकरण्यम् । वेणीसंहारमिति वेण्या द्रौपदीकेशर
विशेषेण हेतुना संहारो विनाशो दुःशासनादीनां यत्र तत्तथा । यद्
वेण्याः संहारो मोक्षणं यत्र तत्तथा । भारतानन्तरमिह वेणीमोक्षणकथन
नाटकमिति । तदुक्तं तत्रैव—प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात् । स
लक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ॥ नाटके सूच्यमर्थं तु पञ्चभिः प्रतिपादये
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ॥ वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथां
निदर्शकः । संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ तद्वदेवानुदात्तो
नीचपात्रप्रयोजितः । प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ॥ अङ्कद्वयस्या
रिति प्रथमेऽङ्के न कर्तव्य इत्यर्थः । अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूच
अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्य छिन्नाङ्कार्थस्य सूचना ॥ अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्क
विभागतः । एभिः संसूचयेत्सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत् । दूराध्वानं वधं
राज्यदेशादिविप्लवम् । संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम् । अम्बरग्रह
दीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् । अङ्गेनैव निबध्नीयान्नैवाङ्केन कदाच
नाधिकारिवधः क्वापि त्याज्यमावश्यकं न च । एकाहाचरितैकार्थमित्थमा

(चारों ओर देखकर) मान्य सभा-पुरुषों, हमें कुछ निवेदन करना है—
यह काव्य-रचना यहाँ दूसरी पुष्पाञ्जलि के समान दिये जा रही है।
, भ्रमर मधु-बिन्दुओं का जैसे, स्फूत भी गुण-कणों का सेवन करें ॥५॥

अब हम 'मृगराज' उपाधिधारी कवि भट्टनारायण की रचना इस वेणीसंहार
क नाटक का प्रयोग (अभिनय) करने के लिये उद्यत हैं। इसलिये कवि के
श्रम के विचार से अथवा उदात्त कथावस्तु के प्रति आदर भाव से अथवा
न नाटक देखने की उत्सुकता से आप लोगों द्वारा इस पर ध्यान दिये जाने
भावना करता हूं।

रुम्। पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कस्तेषामन्ते च निर्गमः। एवमङ्काः प्रकर्तव्याः
:आदिपुरस्कृताः। पञ्चाङ्कमेतदवरं दशाङ्कं नाटकं परम्॥ इति नाटकलक्षण
तोक्तम्। तत्रैव प्रसङ्गान्नायकनायिकयोर्लक्षणम्—नेता विनीतो मधुरस्त्यागी
ः प्रियंवदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा। बुद्ध्युत्साहस्मृति-
कलामानसमन्वितः। शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः। विनय-
लसंपत्तिमधुरः प्रियदर्शनः। त्यागः सर्वस्वदानं स्याद्दक्षः क्षिप्र (क्षिप्र) कारी
ः। प्रियंवदोऽनुरक्तश्चावगस्नेहो लोकरञ्जनः। मितप्रशस्तवाग्वाग्मी नित्यकर्म-
ः शुचिः। ख्यातवंशो रूढवंशः षोडशात्त्रिंशको युवा। वाङ्मनःकर्मभिर्यश्च
चनः स स्थिरो मतः। धृतिः सर्वेषु या प्रीतिरुत्साहोऽग्लानिरेव च। स्मृतिः
ल्यान्तरे ज्ञानं प्रज्ञा तीक्ष्णमनिर्मता। कलाश्चात्र चतुःषष्टिर्मानश्चित्तसमुन्नतिः।
रः सङ्ग्रामनिपुणो रणवान्हृदय उच्यते। अतिप्रतापस्तेजस्वी शास्त्रचक्षुस्त्रयी-
रः। आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स धार्मिकः। प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो
। यत्र नायकः। तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम्॥ अयमर्थः—नाटके
रत्नादिप्रसिद्धो राजर्षिर्दिव्यो वा नायकः कर्तव्यः, न तु कविना स्वयमुत्पाद्य
था कल्पितो नायकः कर्तव्य इति। स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका
धा। स्वकीया तत्र वक्तव्या मुग्धा मध्या प्रगल्भिता। शीलार्जवादिसंयुक्ता-
कुटिला च पतिव्रता। लज्जावती चापलया निपुणा च प्रियंवदा। साधारणस्त्री
गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। रूपकेषु च रक्तैव कर्तव्या प्रहसं विना।

(नेपथ्ये)

भाव स्वर्यतां स्वर्यताम् । एते खल्वार्यविदुरादयः पुरस्ताद्व्याहरन्ति—प्रवर्त्यतामपरिहीयमाणमातोद्यविन्यासादिका विधिः । किल तत्रभवत[illegible] भरतकुलहितकाम्यया स्वयं प्रतिपन्नदौत्यस्य देवकीसूनोश्चक्रपाणेर्महाराजदु[illegible] शिविरं प्रति प्रस्थातुकामस्य इति ।

सूत्रधारः— (आकर्ण्य सानन्दम्) अहो नु खलु भो भगवता जगत्स्थितिनिरोधप्रभविष्णुना विष्णुनाद्यानुगृहीतमिदं भरतकुलं सकलं च राज[illegible] नयोः कुरुपाण्डवराजपुत्रयोराहवकल्पान्तानलप्रशमहेतुना स्वयं सन्धिका[illegible] कंसारिणा दूतेन । तत्किमिति पारिपार्श्विक नारम्भयसि कुशीलवैः सह संगीत[illegible]

अन्यस्त्री द्विविधा प्रोक्ता कन्यकोढा तथापरा । रसे प्रधाने कर्तव्या नान्य[illegible] नाट्यवेदिभिः । कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम् । इति ॥ [illegible] वृत्तयः प्रोक्ताश्चतस्रो नाट्यवेदिभिः । भारती कैशिकी चैव सात्वत्यारभटी [illegible] तत्र शृङ्गारी कामफलावच्छिन्नो व्यापारः कैशिकी । विशोका सात्वती [illegible] शौर्यत्यागार्जवैः पुनः । मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः । भवेदा[illegible] नाम नाट्ये चितस्तु वृत्तयः ॥ भारती शब्दवृत्तिः स्याद्वीरे रौद्रे च कुर्या[illegible] शृङ्गारे कैशिकी धीरे सात्वत्यारभटी पुनः ॥ एवमङ्गानि कार्याणि प्रधान[illegible] विरोधतः । आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुक्तितः ॥ अपेक्षितं परि[illegible] नीरसं वस्तुविस्तरम् । यदा सन्दर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कम्भकं तदा ॥ यदा तु [illegible] वस्तु मुखादेव प्रवर्तते । आदावेव तदाङ्कः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ॥ प्रत्यक्ष[illegible] चरितो बिन्दुव्याप्तिपुरस्कृतः । अङ्को नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ॥ अनु[illegible] विभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः । गृहीतमुक्तैः कर्तव्यमङ्गिनः परिपोष[illegible] न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् । रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलं[illegible] लक्षणैः । एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा । अङ्गमन्ये रसाः [illegible] कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ॥ शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः । बीभत्सा[illegible] इत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥ इति अभियुक्तोक्तिभिः शान्त [illegible]

(नेपथ्य में)

भाव, जल्दी करो, जल्दी करो। आर्य विदुर की आज्ञा से ये लोग सब
नटों से कह रहे हैं— वाद्य-विन्यास आदि की विधि बिना किसी त्रुटि के
रम्भ कर दी जावे। अब पराशर-पुत्र (व्यास), नारद, तुम्बरु, परशुराम
दि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा अनुसरण किये जाते हुए, भरत-कुल के हित की
मना से स्वयं दूत-कर्म स्वीकार करने वाले, महाराज दुर्योधन के राजधानी
रे) को प्रस्थान करने वाले, देवकी के पुत्र, आदरणीय भगवान् विष्णु (चक्र
धारण करने वाले) के प्रवेश का समय हो गया है।

सूत्रधार— (सुनकर आनन्द से) आ'''हा ! अरे, जगत् की उत्पत्ति,
र्ति और संहार में समर्थ कंस-शत्रु भगवान् विष्णु ने आज स्वयं इन कुरु
र पाण्डव राजपुत्रों के युद्ध रूपी प्रलयाग्नि के शमन का निमित्तभूत, सन्धि
राने वाला, दूत बनकर आज इस भरत-कुल पर तथा सम्पूर्ण राजसमूह पर
नुग्रह किया है। इसलिये, पारिपार्श्विक, नटों के साथ मिलकर संगीत आरम्भ
यों नहीं करते ?

म्भो रस.' इत्यस्ति तथापि न स सर्वसम्मतो न नाट्यविषयश्चेति न पृथगुक्तः।
ारिभाषाभावादस्य नाट्यविषयता न सम्भवतीति।

[तदत्रेति] उदात्तं हृदयम्। कथावस्तु कथाप्रधान नायकः। तस्य
स्वादाह्लादात्। नेपथ्यं रङ्गभूमिः। नेपथ्य रङ्गभूमौ स्यान्नेपथ्य
प्रसाधने। इति विश्वः॥ भावो मान्यः। मान्यो भावेति वक्तव्यः
्यमरः। अब्रुशब्दो वाक्यभूषायाम्। आर्यश्चासौ विदुरश्चेति
ोषणसमासः। विदुरोऽत्र नायकः तस्याज्ञयादेशेन। शैलूषो नटः। अपरिहीय-
ानमपरित्यज्यमानं यथा स्यादेवम्। विधयः प्रकाराः प्रवर्त्यन्ताम्। कीदृशाः।
तोद्यविन्यासो वीणादिवादनमादौ येषां ते तथा। चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रा-
ोद्यनामकम्। इत्यमरः॥ किल निश्चये। तुम्बरुर्मुनिविशेषः। वृन्दारकौ
निमुख्यौ इत्यमरः॥ भरतकुलं युधिष्ठिरादिवंशः। काम्या इच्छा। प्रतिपन्न-
ीस्वरयाङ्गीकृतदूतकर्मणः। सूनोः पुत्रस्य। सूनुः पुत्रकनिष्ठयोः। इति विश्वः॥

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः — भवतु । आगतमस्मि । [illegible]

सूत्रधारः — शरत्समयमेव [illegible] [illegible] सर्वांतवम् । तथा ह्यस्याः शरदि

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः ।

निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ॥६॥

पारिपार्श्विकः — (सभयम्) भाव शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम्

सूत्रधारः — (सवैलक्ष्यस्मितम्) मारिष, शरत्समयवर्णनाशंसया धार्तराष्ट्रा इति हंसा विवक्ष्यन्ते । तत्किं शान्तं पापं प्रतिहतममङ्गलम् ।

पारिपार्श्विकः — न खलु न जाने । किंत्वमङ्गलाशंसयास्य वो वत्सरस्य कम्पितमिव मे हृदयम् ।

सूत्रधारः — मारिष, ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममङ्गलं स्वयं प्रतिपन्नसन्धिकारिणा कंसारिणा । तथाहि ।

शिबिरसन्निवेशः सैन्यविन्यासः । तं प्रति प्रवेशकालश्चक्रपाणेरित्यन्वयः । व खलु भोः इत्यव्ययसमुदायोऽत्याश्चर्याविष्कारे । निरोधो विनाशः । प्रभि प्रभुणा । राजचक्रं क्षत्रियसंघः । आहवो युद्धम् । कल्पान्तानलः प्रलया स्वयं प्रतिपन्नदौत्येनेत्यन्वयः । कंसारिः कृष्णः । पारिपार्श्विक इति । सूत्र पार्श्वे यः प्रकरोत्यमुना सह । काव्यार्थसूचनालाप स भवेत्पारिपार्श्विकः । भरतः ॥ कुशीलवो नटः ॥ भरतास्तु कुशीलवाः इत्यमरः । संगीतकमेल ऐक्यमिति यावत् । नक्षत्रमश्विन्यादि । ग्रहाः सूर्यादयः । क्रौञ्च हंकूह प्रसिद्धः पक्षी । सप्तच्छदः तिमन इति प्रसिद्धो वृक्षः । रक्तोत्पलं कोकनः इत्यमरः । तथा हि इत्ययं शब्द उक्तविभावनार्थः । श्लेषच्छायोपदे समुद्दिष्टं विसर्पति । यत्फलोदयपर्यन्तं सद्बीजमिति कीर्तितम् ॥ इति भरत

श्लेषेण बीजमाह — सत्पक्षा इति । धार्तराष्ट्राः हंसविशेषाः । कालव शरन्माहात्म्यात् मेदिनीपृष्ठे निपतन्ति । मानस सरः परिहृत्यायान्तीत्य च धार्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रपुत्रा दुर्योधनादयो भूमौ पतन्तीत्यर्थः । कीदृश

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक— अच्छा, आरम्भ करता हूं। किस ऋतु के विषय में
ा जाय ?

सूत्रधार—इसी शरद् ऋतु के विषय में संगीत आरम्भ कर दिया जाय,
समें चन्द्रिका, नक्षत्र, क्रौञ्च पक्षी, हंस-समूह, सप्तपर्ण, कुमुद, पुण्डरीक और
ास-पुष्प के पराग से आकाश तथा दिशा-मण्डल धवल हो रहा है और जिसमें
ाशय स्वादिष्ट जल वाले हैं। क्योंकि इस शरद् ऋतु में—

सुन्दर पङ्खों वाले, मधुर वाणी वाले, दिशाओं को अलङ्कृत करने वाले,
द के कारण उद्दाम क्रीडा करने वाले हंस (धार्तराष्ट्र) समय (शरद् ऋतु) के
ाव से पृथ्वी-तल पर आ रहे हैं। (दूसरा सकेतित अर्थ) उत्तम सायन वाले,
ुरभाषी, दिशाओं को वश में करने वाले, अहङ्कार से धृष्टतापूर्ण कार्य करने
ले, धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन आदि) मृत्यु के वश में होने के कारण पृथ्वी
र गिर रहे हैं॥६॥

पारिपार्श्विक—(घबराकर) भाव, पाप शान्त हो। अमङ्गल का नाश हो।

सूत्रधार—(लज्जा और मुस्कराहट के साथ) मारिष, शरद् ऋतु के वर्णन
ी इच्छा से हंसों को धार्तराष्ट्र कहा जा रहा है। तब 'पाप शान्त हो;
मङ्गल का नाश हो' यह क्या ?

पारिपार्श्विक—मैं नहीं जानता हूं, ऐसी बात नहीं है। फिर भी, आपके
स वचन से अमङ्गल की आशङ्का से मेरा हृदय सचमुच काँप-सा गया है।

सूत्रधार—मारिष, अब तो स्वयं दूत-कार्य स्वीकार करके सन्धि कराने
ाले कंसारि ने सारे अमङ्गल का नाश कर दिया है। इस प्रकार—

सन्तः पक्षा येषां ते] सत्पक्षाः श्रेष्ठपक्षयुक्ताः श्रेष्ठसैन्यवन्तश्च। मधुरगिरः
मधुरवाणीकाः। प्रसाधिता आशा दिशो यैस्ते तथा। मदोद्धता आरम्भा येषा
ा। 'मदो हर्षोऽहंकारश्च' 'धार्तराष्ट्राः सितेतरैः' इत्यमरः। इह श्लोके
प्रवर्तकरूपता प्रस्तावना। यदुक्तं तत्रैव—प्रवृत्तकालमाश्रित्य वर्णना या
विधीयते। तदाश्रयस्य पात्रस्य प्रवेशेन प्रवर्तकम्॥ इति॥ आर्याच्छन्दः।॥६॥

यत्र पटाक्षेपेण पात्रप्रवेशस्तत्र प्रविश्येति प्रयुज्यते। शान्तं पापमनाशङ्के

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन ।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥७॥

(नेपथ्ये साधिक्षेपम्)

आः दुरात्मन्वृथा मङ्गलपाठक शैलूषापसद ,

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः
स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ।

(सूत्रधारपारिपार्श्विकावाकर्णयतः)

पारिपार्श्विकः—भाव, कुत एतत् ।

सूत्रधारः—(पृष्ठतो विलोक्य) अये एष खलु वासुदेवगमनात्कुरुसंधानममृष्यमाणः पृथुललाटतटघटितविकटकोनाशतोरणत्रिशूलायमानभीषणभ्रु

इति भरतः । तथा च न चकारपमिरयर्थः । स्वंसक्ष्यं सलक्ष्मिन्मुनरन्तु मारिष इत्यमरः । मारिष एव मर्षणाभ्यामार्य इति । मारिष इत्यादि इति शब्दार्णवः । न खलु न जाने किन्तु जानात्यनुग्रहो निर्णयः । अर्थसम्पो प्रतिषेधहति सूत्रम् । यो युष्माकम् । यत्र समानेऽर्थे इति भाष्यम् । तथा च परस्परम् भाषाभाषणीयमिदमित्यर्थः ।

निर्वाणेति । निर्वाणः निर्वैरीकृतः [शान्त] वैरमेव दहनः यैः [ते] तथा । अरीणां प्रशमात् नाशनात् । विनाशादिति यावत् । स्वजनैः सह पाण्डवाः प्रसन्नचित्ता सन्तः भू वै ते तथा । अत्र च रक्तेन इति दुर्योधनपक्षे भूरिति । [अत्र अन्य पद विग्रहं युद्ध येषां ते । पक्षे शत्रुणा विग्रह देहः येषां ते] । विग्रही युद्ध शरीर वा । स्वस्था सुखिनः... स्वर्गगताः । विग्रह ... इति ... । सुखिने च

शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण पाण्डु के पुत्र, जिनकी वैर रूपी अग्नि शान्त हो गई है, कृष्ण के साथ आनन्द करें; और भृत्यों सहित कुरु-राज के पुत्र, जिन्होंने अनुरक्त (पाण्डवों) को भूमि दे दी है तथा जिनका युद्ध समाप्त हो गया है, स्वस्थ रहें ॥ (दूसरा संकेतित अर्थ) शत्रुओं का नाश हो जाने के कारण माधव समेत पाण्डव लोग, जिनकी वैर रूपी अग्नि बुझ गई है, आनन्द करें और भृत्यों समेत कुरु-राज के पुत्र जिन्होंने रुधिर से पृथ्वी को अलङ्कृत किया है और जिनके शरीर क्षत-विक्षत हैं, स्वर्गस्थ होवें ॥७॥

(नेपथ्य में कुछ गर्जना सहित)

ओ दुष्ट, स्वयं ही स्तुति करने वाले, नीच नट,

लाक्षागृह में आग, विषाक्त अन्न और सभा में प्रवेश द्वारा हमारे प्राण तथा धन पर प्रहार करके और पाण्डवों की वधू के वस्त्र तथा केशों को खींचकर धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीवित रहते स्वस्थ रहें ॥८॥

(सूत्रधार और पारिपार्श्विक दोनों सुनते हैं)

पारिपार्श्विक—श्रीमान्, यह (ध्वनि) कहाँ से (आ रही है) ?

सूत्रधार—(पीछे की ओर देखकर) अरे ! भगवान् कृष्ण के जाने से (होने वाली) कुरुओं के साथ सन्धि को सहन न करता हुआ यह क्रुद्ध भीम, जिसके विशाल मस्तक-तट पर, यमराज के विशाल तोरण पर त्रिशूल के समान प्रतीत होने वाली, भयङ्कर भ्रुकुटि तनी हुई है और जिसके पीछे पीछे सहदेव आ

...स्थः इति विग्रहः । मेघाग्रण्ठोऽयम् । यदुक्तमत्रैव —द्वयर्थता यत्र वाक्यानां ...दोऽपि प्रतीयते । यः शब्दभङ्गिगतो मेघागण्ड' स उच्यते ॥७॥

...भाः शब्दं आलेपे । दीभूयो नटः [घाती] अजगदः अधम. [च] ।

लाक्षागृहेति । [लाक्षागृहे सः अनलः अग्निसमर्पणं स च [विषमिश्रितमन्न ...पानम् च सभाप्रवेशश्च तैः] जतुगृहाग्निविषदद्युतपदमूलादिभिः म... ...स्मात् [प्राणेषु वित्तनिचयेषु च] प्रहृत्य दत्तप्रयः । पाण्डववधूद्रौपदी । ...र्दिहानम् परिधानीयवस्त्रम् । [आहृता: पाण्डवधृता: परिदानं च केशाश्च यैः । ...धार्तराष्ट्र मयि जीवति स्वस्थाः सुखिनो भवन्ति किम् । अर्थोन्तरमर्थः] ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अत्रैव —[illegible] यथा

पृथुपयोदस्य [illegible] ।
[illegible] भ्रुकुटिः [illegible] ॥८॥

इहावधार्य विज्ञप्तम् । मधुर [illegible] मारब्धोऽस्मत्प्रबन्धस्तन्माद्य विज्ञप्तम् ॥८॥

अत्र इति [illegible] अत्र विदग्धपरिषदो इति भरत. । [मधुरत्वादिति । मधु [illegible] तत्र यदिता विदग्ध [illegible] सरसी भोयमा भ्रुकुटिर्येषु] कुटिलभ्रूभागो भ्रुकुटिः । इतिवाचैतस्योक्तिरेव पृथुपयोदत्वाच्चवैव विशेषणम् । इत एतावित्यत्र इति निष्क्रमि । निष्क्रा- सूत्रधारनटीभ्यां निष्क्रान्तौ । प्रस्तावनेति । प्रस्तावना आमुखपर्यायः । तत्र तत्रैव—सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते । नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा । [विवक्षितार्थैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः] । आमुखं नाम तद्वि

ता है, दृष्टिपात से, मानो, हम सबको पीता हुआ इधर की ओर ही आ रहा । इसलिये इसके सामने खड़ा होना उचित नहीं है। इसलिये हम दोनों यहाँ कहीं अन्यत्र चलें। (दोनों बाहर चले गये)।

प्रस्तावना समाप्त

(तत्पश्चात् सहदेव द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ क्रुद्ध भीम प्रवेश करता है)

भीमसेन—अरे दुष्ट, व्यर्थ स्तुति करने वाले, नीच नट। (लाक्षागृहानल इत्यादि श्लोक १।८ का फिर पाठ करता है)।

सहदेव—(अनुनय सहित) आर्य, क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये। इस नट का वचन हमारे अनुकूल ही है। 'शान्त हो गई है वैर रूपी अग्नि जिनकी' इत्यादि वचन सच ही है। (क्योंकि) यह कह रहा है— 'सेवकों सहित कुरुवंशीय, जिन्होंने रुधिर से भूमि को अलङ्कृत कर दिया है और जिनके शरीर क्षयुक्त हो गये हैं, स्वर्गस्थ होवें।'

भीमसेन—(उलाहना देते हुये) नहीं, नहीं। आप कौरवों का अमङ्गल नहीं सोच सकते। उनसे तो सन्धि करनी चाहिये। तुम्हारे भाई हैं।

सहदेव—(क्रोधपूर्वक) आर्य,

यदि राजा रोकने वाला न हो तो तुम्हारा कौन-सा छोटा भाई पग-पग पर शत्रुता करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को सहन करे ॥६॥

...य प्रस्तावना मता ॥ इति। इयं प्रस्तावना वाक्यार्थकथोद्घातरूपा। सूत्रधारस्य वाक्य वा यत्र वाक्यार्थमेव वा। गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्घातः स उच्यते ॥ इति भरतः। प्रविशतीति। सर्वत्र प्रवेशे पूर्वसूचितस्यान्वयः। नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशः इति भरतवचनात्। मर्षय क्षमस्व। भरतपुत्रस्य नटस्य अन्यथा ...रणार्थतया। सोपालम्भं विसंवादसहितम्। बोल्पितो न खलुशब्दोऽत्यन्त-...र्थवचनः।

धृतराष्ट्रस्येति। [राजा निषेद्धा न स्यात् चेत् पदे पदे कृतवैरात् धृतराष्ट्रस्य ...पत्यान् कः तवानुजः सहेत। इत्यन्वयः] पदे पदे प्रतिस्थानमित्यर्थः।

भीमसेनः—(सरोषम्) एवमिदम् । अत एवाहमद्यप्रभृति भिन्नो भवद्भ्यः ।

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।
जरासंधस्योरः स्थलमिव विरूढं पुनरपि
क्रुधा संधिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ॥१०॥

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्य एवमतिसंभृतक्षोभेषु युष्मासु कदाचित् गुरुः ।

भीमसेनः—किं नाम खिद्यते गुरुः । गुरुः खेदमपि जानाति । पश्य ।

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां
वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः ।
विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥११

तत्सहदेव निवर्तस्व । एवं चातिचिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य भीमस्य वच द्विज्ञापय राजानम् ।

सहदेवः—आर्य किमिति ।

भीमसेनः—एवं विज्ञापय ।

चेच्छब्दो यद्यर्थे । निषेद्धा निषेधकः । इह श्लोके यद्यपि वाक्ये गर्भित मालकारदोषस्तथापि रसान्तरद्योतनाय तद्वाक्यमिति न दोषवक्षामवगा इत्यवधेयम् ।

इह अहं भिन्नो भवद्भ्यः इत्यनेन भेदसंधिः । यदाह— भेदस्तु भिन्न इति । प्रभृतिशब्द आरम्भपर्यायः ।

प्रवृद्धमिति । [शिशोरेव मम कुरुभिः यद्वैरं प्रवृद्धं खलु तत्र आर्यः हेतुः भवति, न किरीटी, न युवा । जरासन्धस्य उरःस्थलमिव पुनः विरूढमपि सं भीमः क्रुधा विघटयति यूयं घटयत । इत्यन्वयः] विरूढं जातं स्मृतं च । संधि संघटनके संधानेऽपि च कथ्यते । इति विश्वः ॥१०॥

तथाभूतामिति । नृपसदसि तथाभूताम् ऋतुमतीमपि आकृष्टकेशामाकृष्टाम्बर

ीमसेन—(क्रोध से) यह ऐसा ही है। इसीलिये आज से हम आप लोगों
ग हुये। देखो—

ा बालक का ही कौरवों के साथ जो वैर बढ़ा था, उसमें न आर्य
हेर) कारण हैं, न अर्जुन और न ही तुम दोनों। जरासन्ध के वक्षःस्थल
न दृढ सन्धि को भीम क्रोध से फिर तोड़ रहा है, तुम लोग जोड़
०॥

हेव—(मनाते हुये) इस प्रकार आपके अत्यधिक क्रोध करने पर बड़े
ीं दुःखी न होवें।

मसेन—क्या बड़े भाई दुःखी होते हैं? क्या बड़े भाई दुःख को जानते
ि—

ा-सभा में उस प्रकार की हुई (दुर्दशा में पड़ी हुई) पाञ्चाल की पुत्री
को, वन में व्याधों के साथ वल्कलधारियों के चिरकाल वास को
ाट के भवन में अनुचित कार्यों द्वारा छिपाये गए वास को देखकर
भाई को कौरवों पर आज तक खेद नहीं हुआ। मेरे खिन्न होने पर
॥११॥

ाये, सहदेव, तुम लौट जाओ। चिरकाल से बढ़े हुये क्रोध से उद्दीप्त
ोर से राजा से इस प्रकार कहो।

ा—आर्य, क्या (कहूं)?

ान—इस प्रकार कहो—

तनया द्रौपदीम्। वन उषितमस्माभिर्वासः कृतः। तद्दृष्ट्वेत्यन्वयः।
ानं कृतम्। तद्दृष्ट्वेत्यन्वयः। अनुचितारम्भाः कन्यालंकरणादिका-
ष्टं यथा स्यादेवम्। मयि खिन्ने सति गुरुः [खेदं भजति], अद्यापि
: वहतीत्यन्वयः ॥११॥

जरेति। अतिचिरादतिचिरं वा प्रवृद्धो यः अमर्ष. तेनोद्दीपितस्य]।
।। [मया युष्मत्कुलसनलस्तुनाहुति मग्नेन स्थितं नाम, स्थितिमतामनु-
विगर्हणा अपि प्राप्ता नाम, क्रोधोल्लासितशोणिताक्षणगदस्य कौरवा-
ाम अद्य एकं दिवसं गुरुः न असि, अहं तव विधेयः न। इत्यन्वय.]

युष्मच्छासनलङ्घनांहसि मया मग्नेन नाम स्थितं
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥१२

([illegible])

सहदेवः—([illegible]) [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible]) ।

भीमसेनः—([illegible] च) [illegible] [illegible] भवति ।

सहदेवः—आर्य, [illegible] ।

भीमसेनः—([illegible]) [illegible] [illegible] । ([illegible]) [illegible] । ([illegible]) वत्स, [illegible] । [illegible] [illegible] ।

(उभौ [illegible] नाटयतः)

सहदेवः—आर्य इदमासनमास्यताम् । अत्रोपविश्य प्रतिपाल्यताम् कृष्णागमनम् ।

भीमसेनः—(उपविश्य) वत्स, कृष्णागमनमित्यनेनोपोद्घातेन स्मृतम् । भगवान्कृष्णः केन पणेन सन्धिं कर्तुं सुयोधनं प्रति प्रहितः ।

अंहसि पापे । नाम प्राकाश्ये । नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमे कुत्सने तथा । [illegible] विश्वः । विगर्हणा निन्दा । स्थितिमतां धैर्यवताम् । क्रोधेनोल्लासिता समुत्क्षिप्ता शोणितेनारुणा रक्ता च गदा यस्य । उच्छिन्दतो नाशयतः । दिवसं व्याप्य कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वितीया । अद्येदानीम् । इदानीमद्य इति [illegible] सूत्रम् । अस्मिन्नहनीत्यर्थेऽनन्वयः स्यादित्यवधेयम् ॥१२॥

इह परिकररूपः सन्धिः । यदुक्तं तत्रैव—कार्याकार्यस्य हेतूनामुक्तिः परि[illegible] मतः । इति । चतुःशालकं चउसार इति प्रसिद्धं गृहम् । [चतसृणां शाला

मैं तुम्हारी आज्ञा के उल्लङ्घन के पाप में डूब गया हूं, मैंने मर्यादा का
लन करने वाले छोटे भाइयों के भी मध्य में निन्दा प्राप्त कर ली है। आज
क दिन के लिये आप मेरे क्रोध से उठाई और रुधिर से लाल गदा वाले तथा
रवों का नाश करने वाले के बड़े (भाई) नहीं हैं और मैं आपका आज्ञाकारी
हीं हूँ ॥१२॥

(यह कहकर क्रोध के साथ घूमता है)

सहदेव—(उसी के पीछे-पीछे चलते हुये, स्वगत) अरे कैसे ? आर्य पाञ्चाल
ी राजकुमारी (द्रौपदी) की चौसाल में चले गये। अच्छा, तब तक मैं यहीं
हूं। (खड़ा हो जाता है)

भीमसेन—(लौटकर और देखकर) सहदेव, तुम जाओ और बड़े भाई के
नुकूल आचरण करो। मैं भी आयुधागार में जाकर शस्त्रों से सज्जित होता हूं।

सहदेव—आर्य, यह आयुधागार नहीं है। यह तो पाञ्चाली की चौसाल है।

भीमसेन—(सोचते हुये) क्या कहा ? यह शस्त्रागार नहीं है, द्रौपदी की
ौसाल है। (कुछ हंसकर हर्षपूर्वक) मुझे पाञ्चाली से विदा ले लेनी चाहिये।
प्रेम से सहदेव का हाथ पकड़ कर) प्रिय, आओ। कौरवों के साथ सन्धि करने
ी इच्छा करने वाले आर्य हमें जो पीड़ा दे रहे हैं, उसे आप भी देख लें।

(दोनों अन्दर जाते हैं)

सहदेव—आर्य, यह आसन बिछा है। आर्य यहीं बैठकर कृष्णा (द्रौपदी)
 आने की प्रतीक्षा करें।

भीमसेन—(बैठकर) वत्स, 'कृष्णागमन' इस प्रसङ्ग से याद आ गया है :
गवान् कृष्ण किस शर्त पर सन्धि करने के लिये सुयोधन के पास भेजे हैं ?

माहारः चतुःशालम्। आवन्तो वा इति क्लीवत्वम्। •शालकमिति पाठे
वार्थे कः।] आगारो गृहम्। आयुधसहायोऽस्त्रद्वितीयः। आः स्वीकारे।
ामन्त्रयितव्या संवदनीया। कृष्णागमनं द्रौपद्यागमनमथ च हरेरागमनम्।
पोद्घात उक्तिः। तदुक्तममरे-उपोद्घात उदाहारः इति। यद्वा प्रकृतानुकूलिनी
चिन्ता उपोद्घातः। भगवानैश्वर्यादिमान्। इह श्रीकृष्णो निगूढार्थो दूतः। यदुक्तं
ंवे—उद्देश्यकार्यवोधेन विपक्षे नायके स्वयम्। वाग्युद्धनिरतो यस्तु स

सहदेवः—आर्य, पञ्चभिर्ग्रामैः ।

भीमसेनः—(कर्णौ पिधाय) अहह हन्त ... पकर्ष इति यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् । (परिवृत्य स्थित्वा) तदलम् कथितं न मया श्रुतम् ।

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः ।
दीव्यताक्षैस्तदानेन नूनं तदपि हारितम् ॥१३॥

(नेपथ्ये)

समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । [समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी ।]

सहदेवः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्यात्मगतम्) अये कथं याज्ञसेनी ... चीयमानबाष्पपटलस्थगितनयना आर्यसमीपमुपसर्पति । तत्कष्टतरमापतितम्

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य संभृतम् ।
तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ॥१४॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च)

(द्रौपदी सास्रं निश्वसिति)

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । अपनेष्यति ते मन्युं ... कुरुवैरः कुमारो भीमसेनः । [समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी । अवणाइस्सदि मण्णुं णिब्बाणवइरकुरुवेरो कुमालो भीमसेणो ।]

निगूढार्थं उच्यते ॥ इति । पञ्चग्रामदानाद्दानेन तयोस्तेन वैरप्रकाशना अहहेत्यद्भुते खेदे इत्यमरः । यत्सत्यं निश्चये । तदुक्तं तत्रैव—यत्तत्स्यात् भावार्थम् ।

यत्तदिति । [यत् अस्य भूपतेः तत् ऊर्जितम् अत्युग्रं क्षात्रं तेजः तदपि अ... तदा द्यूतसमये अक्षैः दीव्यता नूनं हारितम् इत्यन्वयः ।] ऊर्जितं बलवत् । ... क्षत्रियसंबन्धि । दीव्यताक्षैर्द्यूतेन क्रीडमानेन । दिवः कर्मं च इति चकारात्तृतीया ... निश्चये । तदपि तेजः हारितम् । अन्यथा कथमयं तेजोभङ्ग इति भावः । ... ... । आत्मगतम् । मनु । श्राव्यं न सर्वस्य स्वगतं तदिहोच्यते । इ...

ामसेन—(कानों पर हाथ रखकर) ओह ! देव अजातशत्रु का भी यह
ाज का क्षय (हो गया), इससे सचमुच मेरा हृदय काँप-सा रहा है।
र खड़े होकर) वत्स, (समझ लो कि) वह न तुमने कहा और न मैंने

स राजा का जो वह जगत्प्रसिद्ध प्रचण्ड क्षात्र तेज वृद्धि को प्राप्त था,
ही इसने तब पाशों से खेलते हुए उसे भी गँवा दिया ॥१३॥

(नेपथ्य में)

ामिनी, धैर्य रखो, धैर्य रखो।

हदेव—(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे ! (यह) क्या ? बार-बार बढ़
सुओं के समूह से आच्छादित नेत्रों वाली द्रौपदी आर्य के समीप ही आ
। तब तो बड़े कष्ट की बात हुई।

द्ध आर्य में आज जो विद्युत् के जैसा तेज संचित हुआ है, उसे वर्षा के
यह कृष्णा अवश्य ही और अधिक बढ़ा देगी ॥१४॥

(तब यथावर्णित द्रौपदी और चेटी प्रवेश करती हैं)

(द्रौपदी आँसू बहाते हुए गहरा श्वास लेती है)

ी—स्वामिनी धैर्य रक्खें, धैर्य रक्खें। सर्वथा कौरवों से बंधे वैर वाला
ीमसेन आपके शोक को दूर करेगा।

याज्ञसेनी द्रौपदी। [उपचीयमानः वृद्धिं गच्छन् यः बाष्पस्तस्य पटलं
ाते नयने यस्याः सा।] अश्रुणा पूर्वावस्था बाष्पः। स्थगितं पिहितम्।
द्युतमिति [क्रुद्धे आर्ये अद्य यत् वैद्युतमिव ज्योतिः संभृतम् तदिदं कृष्णा
मूनं संवर्धयिष्यति इत्यन्वयः]। वैद्युतं विद्युत्प्रभवम्। आर्ये भीमे।
तम्। प्रावृड् वर्षाकालः। नूनं निश्चये ॥१४॥

मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि। इत्यमरः। द्रौपदी। सास्रं सनयनजलम्। अत्र
ा हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति। इत्यमरः। जयतु कुमारः। अत्र
न यद्यपि जयेरतनभिधानादुक्तं न भवतीति रूपावतारे दृश्यते तथापि
वत्त्वम्। प्राकृते जयदु जयत्वित्यस्याभिधानात्। प्राकृतस्य च तद्भव-
ीत्यनेकः प्राकृतः क्रमः। इति नियमात्। संस्कृतं क्रमवत्त्वात्।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके [illegible] महाराजस्य परिकुपितो [illegible]

[हञ्जे बुद्धिमदिए [illegible] महाराअस्स परिकुविदो [illegible]]

चेटी—(विलोक्य) एष कुमारस्तिष्ठति । [illegible]

[एसो कुमारो चिट्ठदि । [illegible]]

द्रौपदी—हञ्जे एवं कुर्वः इति । [हञ्जे एवं करेम्ह ।] [illegible]

चेटी—(उपसृत्य) जयतु जयतु कुमारः । [जेदु जेदु कुमारो ।]

भीमसेन—(अशृण्वन् मथ्नामीत्यादि पुनः पठति)

चेटी—(परिवृत्य) महदपि परिकुपित इव कुमारः लक्ष्यते ।

[महंतं परिकुविदो विअ कुमारो लक्खीअदि ।]

द्रौपदी—हञ्जे यद्येवं तदवधीरणापि मामानन्दयति. शृणोमि तावन्नाथस्य व्यवसितम् । [हञ्जे जइ एव्वं ता अवहीरणा वि आणन्दअदि ता एत्थ उवविट्ठा णाहस्स सुणोमि दाव णाहस्स ववसिदं ।]

(उभे तथा कुरुतः)

भीमसेनः—(सक्रोधम्, सहदेवमभिलक्ष्य) किं नाम पञ्चभिर्ग्रामैः सन्धिः

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्

दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू

सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥१५॥

द्रौपदी—(सहर्षम्, जनान्तिकम्) नाथ अश्रुतपूर्वं खलु ते ईदृशं तत्पुनरपि तावद्भण । [णाह अस्सुदपुव्वं क्खु दे एदिसं वअणं । ता पुणो दाव भणाहि ।]

भीमसेनः—(अशृण्वन्नेव, मथ्नामि कौरवशतं इति पुनः पठति)

सहदेवः—आर्य, किं महाराजस्य सन्देशोऽयुत्पन्न इव गृहीतः ।

अन्यथा क्रमहान्यापत्तेः । किं च । जयतात्···भवानीपतिः इत्यादिदर्शनाज्जयतीत्यत्र साधु । अन्यथा तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्यतरस्याम् । इति जयतीत्यत्रोकारस्याकरणादित्यवधेयम् । अत्र व्यवसितमध्यवसायः ।

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, यह हो सकता है, यदि वह (भीमसेन) राज के विरुद्ध हो जायेंगे।

चेटी—(देखकर) यह कुमार स्थित हैं। इसलिये स्वामिनी इनके समीप ।

द्रौपदी—सखी, ऐसा (ही) करते हैं। (दोनों घूमती हैं)।

चेटी—(समीप जाकर) जय हो, कुमार की जय हो।

भीमसेन—(न सुनते हुये, 'जो वह वृद्धि को प्राप्त था' इत्यादि श्लोक १ का पुनः पाठ करता है)।

चेटी—(घूमकर) स्वामिनी, कुमार क्रुद्ध-से बोल रहे हैं।

द्रौपदी—सखी, यदि ऐसा है तो यह अपमान भी मुझे सान्त्वना देने वाला तब बैठकर नाथ के निश्चय को सुनूंगी।

(दोनों वैसा करती हैं)

भीमसेन—(क्रोध से, सहदेव को लक्ष्य करके) क्या पाँच ग्रामों से संधि ? क्या युद्ध में कोप से सौ कौरवों को नहीं मारूंगा ? क्या दुःशासन के स्थल से रुधिर नहीं पीऊँगा ? क्या गदा से सुयोधन की जाँघें नहीं गा ? आप का राजा भले ही शर्त पर सन्धि करलें ॥१५॥

द्रौपदी—(हर्षपूर्वक एक ओर को होकर चुपके से) स्वामी, तुम्हारा ऐसा पहले कभी न सुना था। इसलिये फिर से कहिये।

भीमसेन—(न सुनते हुये ही 'मथ्नामि कौरवशतम्' इत्यादि श्लोक १।१५ र पाठ करता है)।

सहदेव—आर्य, क्या आपने महाराज के सन्देश को सारहीन-सा समझ है ?

सम्नामीति। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा इति भविष्यति लट्। मथार शिरस्यामने। मथ्नामि विमर्दयिष्यामि। [अत्र वाक्ये न मथ्नामि इति ष्टु मथ्नात्येवेत्यर्थो लभ्यते। एवमग्रेऽपि]। उरस्तो वक्ष स्थलात्। विदार्येत्यर्थः। स्थलोरे पक्षम्यर्थस्तसिः]। पिबामि, भविष्यत्सामीप्ये वर्तमाने लट्। [पञ्चेन पञ्चग्राममूल्येन] ॥१५॥

भीमसेनः—का पुनरत्र व्युत्पत्तिः ।

सहदेवः—आर्य एवं गुरुणा संदिष्टम् ।

भीमसेनः—कस्य ।

सहदेवः—सुयोधनस्य ।

भीमसेनः—किमिति ।

सहदेवः—

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् ।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कञ्चिदेकं तु पञ्चमम् ॥१६॥

भीमसेनः—ततः किम् ।

सहदेवः—तदेवमनया प्रतिनामग्रामप्रार्थनया पञ्चमस्य जतुगृहदाहद्यूतसभाद्यपकारस्थानोद्घाटनमेवेदं मन्ये ।

भीमसेनः—(साटोपम्) वत्स, एवं कृते किं कृतं भवति ।

सहदेवः—आर्य, एवं कृते लोके तावत्स्वगोत्रक्षयाशङ्कि भवति कुरुराजस्यासन्धेयता च दर्शिता भवति ।

भीमसेनः—सर्वमप्येतदनर्थकम् । कुरुराजस्य तावदसन्धेयता सर्वत्र यदैवास्माभिरितो वनं गच्छद्भिः सर्वैरेव कुरुकुलस्य निधनं प्रतिज्ञातम् च धार्तराष्ट्रकुलक्षयः किं लज्जाकारो भवताम् । अपि च रे मूर्ख—

युष्मान्ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ।
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ॥१७॥

इह प्रतिमुखनामा सन्धिः । यदुक्तं तत्रैव—आनुषङ्गिककार्येण क्रियते यत् ... दानम् । नष्टस्यैवेह बीजस्य तद्धि प्रतिमुखं मतम् ॥ व्यवसायनामा वचनर्म ... मम् । यदाह—प्रतिज्ञाहेतुसंयुक्त व्यवसायो मतो मतः । इति ।

क्रमान्तिकम्—अन्योन्यामन्त्रणं यस्याग्रनान्ते तद्ग्रनान्तिकम् । इति भ... अनुवृत्तं मनु ईदृश आभासो नाम्य । तथाच पुन.पुनस्तावद् ·· । अत ... निरथें वाक्यभूयासो वा । अनुलापः [तारिस्वरापन्तरा सह इव । तारि ... सर्वमविस्मृतेयर्थं] । पञ्चग्रामयाचनम् । इह भारतमुख्यो निर्वहणसन्धिः । य... दर्शः—ग्रामवार्तिनोत्र भागानां भावनं मतम् ।

भीमसेन—लेकिन इसमें क्या गूढ सार है ?

सहदेव—आर्य, बड़े भाई ने यह सन्देश दिया है ।

ीमसेन—किसे ?

हदेव—सुयोधन को ।

ीमसेन—क्या ?

हदेव—

द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त और वारणावत यह चार ग्राम तथा
कोई भी एक ग्राम दे दो ॥१६॥

ीमसेन—उससे क्या ?

हदेव—तो इस प्रकार प्रत्येक ग्राम का नाम लेकर याचना से और ग्राम के नाम का कथन न करने से विषाक्त भोजन, लाक्षागृहदाह, भा आदि अपकार के स्थानों का उद्घाटन ही इसे समझता हूं ।

ीमसेन—(आवेश के साथ) वत्स, ऐसा करने पर क्या होगा ?

हदेव—आर्य, ऐसा करने पर लोक में (आर्य का) अपने कुल के नाश से कुल हृदय प्रकट हो जाता है और कुरु-राज के साथ सन्धि की अयोग्यता त हो जाती है ।

भीमसेन—यह सब व्यर्थ है । कुरुराज के साथ सन्धि की अयोग्यता तो ो बतला दी थी जब हम सब ने यहां से वन जाते हुये कुरुकुल के नाश तिज्ञा की थी । क्या धृतराष्ट्र के कुल का नाश भी आप लोगों के लिये : में लज्जा-जनक है । और, मूर्ख,

क्रोध से शत्रु के वंश का नाश तो तुम्हें संसार में लज्जित करता है, लेकिन में वधू के केश खींचा जाना (तुम्हें) लज्जित नहीं करता ॥१७॥

[इन्द्रप्रस्थमिति–] विषभोजनेत्यादौ यथायोग कुशस्थलेत्यादिसंबन्धः । ोजनादेस्तत्तत्स्थानेवृत्तत्वात्तत्तत्स्मरणम् ॥१६॥

अन्यथा मन्यते प्रकारान्तरेण जानन्ति । त इति शेषः । [स्वगोत्रक्षयादा-ने बिभेतीति तथा] । असन्धेयताऽसन्धानविषयता । [अनर्थकमुद्दिष्टार्थ-कम् ।] निधनं विनाशः ।

युष्मानिति । [क्रोधादस्माभिः करिष्यमाणः शत्रुकुलक्षयः युष्मान्] ह्रेपयन्ति

द्रौपदी—(जनान्तिक) नाथ, इन्हें लज्जा नहीं आती। तुम तो न भूलो

भीमसेन—(याद करते हुये) वत्स, द्रौपदी कैसे देर कर रही है ?

सहदेव—आर्य, आदरणीय को आये कितना ही समय हो गया। कि
ाध के आवेग के कारण आर्य ने आई हुई भी नहीं देखी।

भीमसेन—(देखकर आदर से) देवी, बढ़े हुए क्रोध वाले हमने आप
ई भी नहीं देखीं। इससे कुपित न होवें।

द्रौपदी—नाथ, आपके उदासीन होने पर (हमें) दुःख होता है, कु
ाने पर नहीं।

भीमसेन—यदि ऐसा है तो अपने अपमान को समाप्त हो समझो। (ह
कड कर, पास में बैठाकर, मुख देखकर) लेकिन मैं आपको परेशान-सी
ख रहा हूं ?

द्रौपदी—नाथ, आपके होते उद्वेग का कारण कैसे हो सकता है ?

भीमसेन—बतलाती क्यों नहीं ? (केशों को देखकर) या बतलाने से क्य

जब पाण्डु-पुत्रों के जीवित रहते हुये और दूर परदेश न जाने पर
ञ्चाल की राजकुमारी इस अवस्था को धारण कर रही है ॥१८॥

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, नाथ को बतला दो। अन्य कौन मेरे अपम
र दुःखी होगा।

चेटी— जैसी देवी की आज्ञा हो। (भीम के समीप जाकर और हा
ोडकर) कुमार, आज देवी के कोप का कारण इससे भी अधिक था।

पमापकारमुपेक्षमाणेषु। अपगतः वैरनिर्यातनेनेति शेषः परिभवोऽवमान
शकर्षणादिरूपा यस्य।] समर्थयस्व जानीहि।

जीवत्स्विति। [यत् यस्मात्कारणात् इमां दशां वहते तस्मात् किमावेदिते
ति सम्बन्धः।] यस्य च भावेन भावलक्षणम् इति सप्तमी। दूरमिति क्रिया
शेषणमतिशयार्थम्। अप्रोषितेष्वपरदेशवासिषु सन्निहितेष्वित्यर्थः।] ॥१८॥

मयय नाथस्य सर्वं व्यवसितम्। इतोऽप्यधिकतरमद्योद्वेगकारणं समासादि
न्या।

भीमसेनः—किं नामास्मादप्यधिकतरम् । तत्कथय कथय ।

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्क एष शलभायते ।
मुक्तवेणीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव ॥१६॥

चेटी—शृणोतु कुमारः । अद्य खलु देवी अम्बासहिता सुभद्राप्रमुखेन सपत्नीवर्गेण परिवृतार्याया गान्धार्याः पादवन्दनं कर्तुं गतासीत् । [सुणादु कुमालो । अज्ज क्खु देवी अम्बासहिदा सुभद्दाप्पमुहेण सवत्तिवग्गेण परिवुदा अज्जाए गन्धालीए पादवन्दणं करदुं गदा आसी ।]

भीमसेनः—युक्तमेतत् । वन्द्याः खलु गुरवः । ततस्ततः ।

चेटी—ततः प्रतिनिवर्तमाना भानुमत्या दृष्टा ।
[तदो पडिणिवुत्तमाणा भाणुमदीए दिट्ठा ।]

भीमसेनः—(सक्रोधम्) आः शत्रोर्भार्यया दृष्टा । हन्त स्थानं क्रोधस्य देव्याः । ततस्ततः ।

चेटी—ततस्तया देवीं प्रेक्ष्य सखीवदनदत्तदृष्ट्या सगर्वमीषद् विहस्य भणितम् । [तदो ताए देवीं पेक्खिअ सहीवअणदिण्णदिट्ठीए सगव्वं ईसि विहसिअ भणिदं ।]

भीमसेनः—न केवलं दृष्टा उक्ता च । अहो किं कुर्मः । ततस्ततः ।

चेटी—अयि याज्ञसेनि, पञ्च ग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते । तत्कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते । [अइ जण्णसेणि, पञ्च गामा पत्थीअन्ति त्ति सुणीअदि । ता कीस दाणीं वि दे केसा ण संजमीअन्ति ।]

भीमसेनः—सहदेव, श्रुतम् ।

सहदेवः—आर्य, किमिति श्रूयते । दुर्योधनकलत्रं हि सा । पश्य ।

कौरव्येति । [क एष मुक्तवेणीम् एनां कृष्णां स्पृशन् धूमशिखामिव [illegible]

भीमसेन—इससे भी अधिक क्या हो सकता है ? बताओ, बताओ तो।

धूम-शिखा के समान खुली चोटी वाली इस कृष्णा को छूकर यह कौन इस कौरव-कुल की वनाग्नि में शलभ (पतंग) बन रहा है ॥१६॥

चेटी—कुमार, सुनिये। आज सुभद्रा आदि सपत्नी-समुदाय से घिरी हुई देवी अम्बा सहित आर्या गान्धारी की चरण-वन्दना करने के लिये गई थी।

भीमसेन—यह उचित था। बड़े जनों की वन्दना करनी ही चाहिये। उसके बाद—

चेटी—वहाँ से लौटती हुई को भानुमती ने देख लिया।

भीमसेन—(क्रोध से) ओह ! शत्रु की पत्नी ने देख लिया। आह ! देवी का क्रोध उचित ही था। उसके बाद—

चेटी—तब देवी को देखकर सखी के मुख पर दृष्टि डालते हुये उसने गर्व के साथ कुछ हँसकर कहा।

भीमसेन—केवल देखा ही नहीं, कहा भी। आह, क्या करें ? उसके बाद—

चेटी—अरी याज्ञसेनी, सुना है कि पाँच गाँव माँगे हैं। तब अब भी तुम्हारे केश क्यों नहीं बँध रहे हैं ?

भीमसेन—सहदेव, सुन लिया।

सहदेव—आर्य, इस विषय में क्या कहा जाय ? क्योंकि वह तो दुर्योधन की स्त्री है। देखिये—

इति धात्वर्थः। बद्धवेणीमित्यत्र भूतार्थक्तप्रत्ययस्यासाधुत्वमग्रे वेणीबन्धनादित्य-...त्यम्। वेण्यास्तनावद्धत्वादग्र उन्मोकस्य कथनात्। अत एव वेण्याः संहार ...उन्मोकोऽत्रेति ग्रन्थनामापि घटते। शलभायते पतङ्गवदाचरति। वेणी केशवेषः ...ाहश्च। एनाम् इत्यनान्वादेशाद् एताम् इति युक्तः पाठः। तयोरनित्यत्वात्। ...ष्णां द्रौपदीं श्यामां च ॥१६॥

अत्र खलु वाक्यामृतायाम्। अम्बा माता कुन्ती। आ इत्याक्षेपे। न संयम्यन्ते ...यमनमिह बन्धनम्। कलत्रशब्दस्याजहल्लिङ्गतया कलत्रं सेति सामानाधिकरण्...म्। कलत्रं श्रोणिभार्ययोः इति विश्वः।

स्त्रीणां हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।
मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥२०॥

भीमसेनः—बुद्धिमतिके, ततो देव्या किमभिहितम् ।

चेटी—कुमार, यदि परिजनहीना भवेत्तदा देवी भणति ।
[कुमार, जइ परिअणहीणा भवे तदो देवी भणादि ।]

भीमसेनः—किं पुनरभिहितं भवत्या ।

चेटी—यथा एवं भणितम् । अयि भानुमति, [illegible] स्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति । [जह एव्वं भणिदं । अइ भाणु- तुह्माणं अमुक्केसु केसेसु कधं अह्माणं देवीए केसा संजमीअन्ति त्ति ।]

भीमसेनः—(सपरितोषम्) साधु, बुद्धिमतिके, साधु । तदभिहितं यदस्मत्- जनोचितम् । (स्वाभरणानि बुद्धिमतिकायै प्रयच्छति) अत्रभवति पाञ्चाल- तनये श्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन ।

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥२१॥

द्रौपदी—किं नाथ दुष्करं त्वया परिकुपितेन । अनुगृह्णन्त्वेतद्व्यवसितं भ्रातरः । [किं णाह दुक्करं तुए परिकुविदेण । अणुगेह्णन्तु एदं ववसिदं भादरो ।]

स्त्रीणामिति । [स्त्रीणां चेतांसि भर्तुः] साहचर्यान्नित्यसमाजात् [सहवासा- भर्तृसदृशानि भवन्ति ।] मधुरा कोमला मधुररसा वा । [वल्ली विषविटपि- समाश्रिता मूर्च्छयते हि ।] मूर्च्छयते मूर्च्छां करोति । यद्वा मूर्च्छयते जनमि- शेषः । विषविटपो विषशाखाविस्तारः । विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम् इत्यमरः क्वचित् विषविटपिसमाश्रिता इति पाठः । स तु मनोहरः । वल्लया वृक्षसाह- र्यात् । वल्ली लता । आर्याच्छन्दः ॥२०॥



ग्रास के कारण स्त्रियों के चित्त भी पतियों के जैसे हो जाते हैं। विषैले आश्रित लता मीठी होते हुए भी मूर्छा उत्पन्न कर देती है ॥२०॥

रसेन—बुद्धिमतिका, तब देवी ने क्या कहा ?

ी—कुमार, यदि देवी सेवकों से क्षुब्ध होतीं, तब कहतीं।

रसेन—तो फिर आपने क्या कहा ?

ी—मैंने यह कहा—'अरी भानुमती, तुम्हारे केश जब तक नहीं खुल ब तक हमारी स्वामिनी के केश कैसे बंधें ?'

नसेन—(सन्तोष से) ठीक, बुद्धिमतिका, ठीक। तुमने वही कहा जो सेवक के लिये उचित था। (अपने आभूषण बुद्धिमतिका को देता है) ोिय पाञ्चाल की राजकुमारी, सुनिये। अल्प ही समय में—

देवी, फड़कती हुई भुजाओं से घुमाई गई गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई जङ्घाओं वाले सुयोधन के चिकने, चिपके हुये और गाढ़े रुधिर से लाल शला भीम तेरे केशों को अलङ्कृत करेगा ॥२१॥

पदी—नाथ, कुपित हुए आपके लिये क्या करना कठिन है ? आपके ापके इस निश्चय का समर्थन करें।

राहस्ताः सयम्यन्त इति। अत्र केशहस्ताः प्रशस्तकेशाः। साधु बुद्धिमतिके त्यनेन हर्षरूपशिल्पकमुक्तम्। यदुक्तं तत्रैव—चित्तप्रसादो हर्षः स्यात्तस्मि-प सङ्गमे इति।

चञ्चदित्यादि। हे देवि, तव कचान्केशान्भीम उत्तंसयिष्यति बन्धयिष्यति। : सन्। [चञ्चन्तौ परिस्फुरन्तौ यौ भुजौ ताभ्यां भ्रमिता या चण्डा गदा अभिघातेन प्रहारेण संचूर्णितं ऊरुयुगलं यस्य तस्य] सुयोधनस्य स्त्यान नवमर्वविद्धं क्षिप्तं [अवनद्धं संसक्त] घन निरन्तरं यच्छोणितं तेन शोणो वः पाणिर्यस्य स तथा। स्त्यानं स्तिमितसङ्घयोः इति विश्वः। आविद्धक्षि-ताः समाः इत्यमरः। चण्डः प्रचण्डः ॥२१॥

इह स्त्यानेत्यादिकः प्रतीकाररूपो गण्डः। यदुक्तं तत्रैव— प्रतिक्रियान्वित प्रतीकार इति स्मृतः। इह परिन्यासरूपो मुखसधिः। यदुक्तं तत्रैव— यानस्तु कार्यस्य भाविनो निश्चयाद्वचः। नाथ अतिदुष्करं त्वया परिकुपितेन

सहदेवः—अनुगृहीतमेतदस्माभिः ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः । सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति)

भीमसेनः—

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः ।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताड्यतेऽयम् ॥

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

कञ्चुकी—कुमार, एष खलु भगवान्वासुदेवः ।

(सर्वे कृताञ्जलयः समुत्तिष्ठन्ति)

भीमसेनः—(ससंभ्रमम्) क्वासौ भगवान् ।

कञ्चुकी—पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन संयन्तुमारब्धः ।

(सर्वे संभ्रमं नाटयन्ति)

भीमसेनः—किं संयतः ।

कञ्चुकी—नहि नहि संयन्तुमारब्धः ।

भीमसेनः—किं कृतं देवेन ।

[illegible] । तदनुमन्यन्तामेतदध्यवसितं देवताः ।
[illegible] ।

ह्देव—हम इसका समर्थन करते हैं।

(नेपथ्य मे तीव्र कलकल ध्वनि होती है। सब आश्चर्य से सुनते हैं)

न्दन से क्षुब्ध समुद्र के जल से भरी हुई गुफा वाले और घूमते हुए जल की ध्वनि के समान गम्भीर, बादल-दण्ड का प्रहार होने पर गरजती यकारी घन-घटाओं की परस्पर टक्कर के समान भयङ्कर कृष्णा के क्रोध के, कुरु-वंश के नाश के अपशकुनभूत प्रचण्ड पवन (के समान) और सिंहनाद की प्रतिध्वनि के मित्र इस नगाड़े को कौन पीट रहा है ॥२२॥

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

न्चुकी—कुमार, इन भगवान् वासुदेव को···

(सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं)

मसेन—(घबराहट के साथ) कहाँ है भगवान् ?

चुकी—पाण्डवों के प्रति प्रेमभाव को न सहन करने वाले सुयोधन ने । प्रयत्न किया।

(सब घबरा जाते हैं)

सेन—क्या बाँध लिया ?

कुकी—नहीं, नहीं। बाँधने का प्रयत्न किया।

सेन—भगवान् ने क्या किया ?

नयघनानां घटाः पङ्क्तयस्तासामन्योन्यसङ्घट्टस्तद्वच्चण्डः।] घटा समूहः लनम्। [कृष्णायाः क्रोधस्तस्य] अग्रदूतः प्रथमसूचकः। [कुरुकुलस्य नाशस्य] उत्पातनिर्घातवातोऽशुभः प्रचण्डपवनः। [अस्माकं] प्रतिरवः [तस्य सखा तत्सदृशः]। [अत्र बीजगुणाख्यानात् विलोभनं ख्यङ्गमुक्तम् इति केचित्।] ॥२२॥

री महल्लकः। तल्लक्षणम्—अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः। कुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः। ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च इति अण्। संयतो बद्धः। बद्धे कीलितसंपृक्तौ इह निर्वहणसन्धिः। यदाह—विरोधस्याख्यानं यद्वा दुःखस्य समयो मतः। र्हेम। हन्त हर्षे। [दर्शितं यद्विश्वरूपं तस्य तेजः तस्य सपातेन

सहदेव—हम इसका समर्थन करते हैं।

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। सब आश्चर्य से सुनते हैं)

मन्थन से क्षुब्ध समुद्र के जल से भरी हुई गुफा वाले और घूमते हुए ...गाधन की ध्वनि के समान गम्भीर, वायु-वज्र का प्रहार होने पर गरजती प्रलयकारी घन-घटाओं की परस्पर टक्कर के समान भयङ्कर कृष्णा के कोप पूर्वक, कुरु-वंश के नाश के अपशकुनभूत प्रचण्ड पवन (के समान) और ...रे सिंहनाद को प्रतिध्वनि के मिश्र इस नगाड़े को कौन पीट रहा है ॥२२॥

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—कुमार, इन भगवान् वासुदेव को···

(सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं)

भीमसेन—(घबराहट के साथ) कहाँ हैं भगवान् ?

कञ्चुकी—पाण्डवों के प्रति प्रेमभाव को न सहन करने वाले सुयोधन ने ...धने का प्रयत्न किया।

(सब घबरा जाते हैं)

भीमसेन—क्या बाँध लिया ?

कञ्चुकी—नहीं, नहीं। बाँधने का प्रयत्न किया।

भीमसेन—भगवान् से क्या किया ?

...न्त्यः प्रलयघनानां घटाः पङ्क्तयस्तासामन्योन्यसङ्घट्टस्तद्वच्चण्डः।] घटा समूहः ...ट्टो मिलनम्। [कृष्णायाः क्रोधस्तस्य] अग्रदूतः प्रथमकथकः। [कुरुकुलस्य ...चनं नाशस्तस्य] उत्पातनिर्घातवातोऽशुभः प्रचण्डपवनः। [अस्माकं] ...निर्गतं प्रतिरवः [तस्य सखा तत्सदृशः]। [अत्र बीजगुणाख्यानाद् विलोभन ...मि मुखसन्ध्यङ्गमुक्तम् इति केचित्।] ॥२२॥

¹ कञ्चुकी महल्लकः। तल्लक्षणम्—अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः। ...र्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥ वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः। ...ष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च इति अण्। संयतो बद्धः। बद्धं कीलितसंयतौ इह ...यरूपो निर्वहणसन्धिः। यदाह—विरोधस्याख्यानं यदा दुःखस्य समयो मतः। ...तेन मस्तीहम्। हृतं हृतं। [दर्शितं यद्विश्वरूपं तस्य तेजः तस्य सपातेन

कञ्चुकी— ततः स महात्मा दर्शितविश्वरूपतेजःसंपातमूर्च्छितकुरुकुलमसृणविरतनिदेशमनुमान्य । कुमारमखिलमित्रं द्रष्टुमिच्छति ।

भीमसेनः— (सोपहासम्) किं नाम दुरात्मा सुयोधनो भगवन्तं ... ते । (आकाशे दत्तदृष्टिः) आः दुरात्मन्कुरुकुलपांसन, एवमतिक्रान्तमर्यादेनैतावन्मात्रेण पाण्डवकोपेन भवितव्यम् ।

सहदेवः—आर्य किमसौ दुरात्मा सुयोधनो वासुदेवमपि भगवन्तं ...देण न जानाति ।

भीमसेनः— वत्स, मूढः खल्वयं दुरात्मा कथं जानातु । पश्य ।

आत्मारामा विहितमतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ॥२३॥

आर्य जयन्धर, किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः ।

मूर्च्छित । विश्वरूपं विश्वंभरमूर्तिः । संपातो मेलकम् । हतको निन्द्यः । पापकारिन् । मूढो मूर्खः । खलु वाक्यभूषायां निश्चये वा ।

आत्मेत्यादि । सत्त्वनिष्ठाः सात्त्विकभावापन्ना मुनयः यं भगवन्तं साक्षात्कुर्वन्ति । कीदृशाः आत्मारामाः आत्मैवारामो वनं येषां ते । आत्मवनयोस्तुल्यत्वेनात्यन्तमोदास्पदत्वमाविष्कृतम् । यद्वा । आत्मन्यासमन्तात् रमन्त इत्यात्मारामाः । स्वकेतरसङ्गा इत्यर्थः । पुनः कीदृशाः । निष्कलुषे निर्गुणे स्वतभेदे वा [असम्प्रज्ञातलक्षणे] समाधौ निर्मल[विहितमतयः समाहितचित्ताः ।] विहितरतयः कृतानुरागाः । विहित... इत्यपि पाठः । तत्र विहिता धृतिर्धारणा यैस्ते । ... भवति । तथा च गीता—असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । ... कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ इति । यद्वा आत्मारामे ... समाध्यादिविहितरतयः कृतानुरागाः । यद्वा । आत्मैवारामो वनं ... विहितरतयः । अभिमतपर्यन्ते निर्विकल्पे समाधौ मनि यं वीक्षन्त इत्यर्थः ।

कञ्चुकी—तत्पश्चात् वह महात्मा प्रकट किये विश्व-रूप के तेज के प्रहार
(छित हुए कुरु-कुल को तिरस्कृत करके हमारी छावनी में आ गये हैं औ
विलम्ब कुमार को देखना चाहते हैं।

भीमसेन—(उपहास के साथ) क्या दुष्ट दुर्योधन भगवान् को बाँधन
चाहता है? (आकाश की ओर दृष्टि लगाकर) आह! दुष्ट, कुरु-कुल क
कलङ्कित करने वाले, तेरे इस प्रकार मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाला होने प
पाण्डवों का क्रोध तो केवल निमित्तमात्र ही रह जायेगा।

सहदेव—आर्य, क्या यह दुष्ट सुयोधन भगवान् वासुदेव का भी सत्य
स्वरूप नहीं जानता?

भीमसेन—वत्स, यह दुष्ट तो मूर्ख है, फिर भला क्या जाने? देखो—

जिस प्रकाश और अन्धकार (ज्ञान-अज्ञान) से परवर्ती अनिर्वचनीय पुरातन
देव को आत्मा में रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में चित्त को लगाये
हुए, ज्ञान के उद्रेक से नष्ट हुई अज्ञान-ग्रन्थि वाले, ब्रह्मनिष्ठ योगी देखते हैं, उस
(देव) को मोह से अन्धा यह (दुर्योधन) कैसे देख सकता है।२३॥

आर्य जयन्धर, अब बड़े भाई ने क्या निश्चय किया है?

दशाः। ज्ञानोत्सेकात्तत्त्वज्ञानमाहात्म्याद्विनाशितनामसगुणा विनाशितमिथ्या-
ना वा। अनेन धृतेः फलमुक्तम्। ज्ञानोद्रेकाद् इत्यपि पाठः। उद्रेकः प्रौढिः।
न तत्रासङ्ग उक्तः। अत्र तु प्रथमं वनवासः ततः समाधिलाभः ततस्तत्त्वज्ञा-
मिथ्याज्ञानविनाशः ततः सत्त्वनिष्ठता ततः साक्षात्कार इति तत्त्वज्ञानोत्पादकः
ोऽपि बोद्धव्यः। यद्वा अन्यत्र सङ्गत्यागः, ततो धृतिः, ततः प्रज्ञाप्रौढिः,
ोऽविद्यालक्षणतमोग्रन्थिभेदः, ततो राजसप्रवृत्त्युच्छेदो, मूलोच्छेदाद् ततः
त्त्विकी प्रवृत्तिः, तस्याः फलमीश्वरप्रसादः, तेन भगवान्समस्ततमःप्रकाशयोः
रो दृश्यते। तमेवं तादृशपुरुषोऽपि न पश्यति। किं पुनर्मूढो दुर्योधन इति
ः। यं कीदृशम्। कमप्यनिर्वचनीयम्। तमसां मिथ्याज्ञानानां ज्योतिषां
ज्ञानानां वा परस्तात्परम्। ताभ्यामप्यगम्यमित्यर्थः। अत एव कमपीत्युक्तम्—
प देवं कथमयं मोहान्धो जानातीति। पुनः कीदृशम्। पुराणमनादिसिद्धम्।
तथा च यमनियमादिसिद्धपुरुषधौरेयगम्यमिति ध्वनितम्॥२३॥

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरिः
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता ।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः ॥२५॥

सहदेव—आर्य गच्छामो वयमिदानीं गुरुजनानुज्ञाताः ...

भीमसेनः—वत्स, एते वयमुद्यता एवार्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुम् । (उत्थाय) ... गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय ।

द्रौपदी—(सास्रं सखेदम्) णाह, असुरसमराहिमुहस्स हरिणो विअ मङ्गलं तुम्हाणं भोदु । [नाथ, असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मङ्गलं युष्माकं ...

उभौ—प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनमस्माभिः ।

द्रौपदी—अण्णं च णाह, पुणोवि ...
[अन्यच्च नाथ, पुनरपि त्वया हि समरात् आगत्य अहं समाश्वासयितव्या ...

भीमसेनः—ननु पाञ्चालराजतनये, किमद्याप्यलीकाश्वासनया ।

भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।
अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥२६॥

बीजप्ररोह उद्भेदो परिकरविस्तारभवात्मकः । इति भरतादुद्भेदरूपं मुखसन्धिमाह—चत्वार इति । चत्वारो भीमार्जुनसहदेवनकुलाः । [ऋतुमृतौ वा यजन्ति इति ऋत्विजः । ऋत्विग्दधृग् इति क्विन्तो निपातः । (पा० ३. २. ५९) ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्युरूपाः ।] स भगवान् हरिः कर्मोपदेष्टाचार्यः । [... एवाध्वरो यज्ञस्तत्र] दीक्षितो दीक्षां प्रापितः । [यद्वा दीक्षा जातास्य ... दित्वादितच् ।] नरपतिर्युधिष्ठिरः । पत्नी द्रौपदी गृहीतव्रता कृतनियमा [व्रतमत्र कौरवनिधने केशान्संहरिष्यामीति नियमरूपम् ।] कौरव्याः कुरु... जाताः । पशवो यज्ञार्थं घातनीयाः । राजन्योपनिमन्त्रणाय क्षत्रियाह्वानाय रसति शब्दायते । स्फीतं मनोज्ञं [सुमहानादं च] यथा स्यादेवम् । ... दाः प्रधानो वाद्यविशेषः । यद्वा यशोदुन्दुभिः पटहः ।

म चारों पुरोहित हैं, यह भगवान् विष्णु (कर्त्तव्य) कर्म का उपदेश दें आचार्य) हैं, राजा (युधिष्ठिर) युद्ध-रूपी यज्ञ की दीक्षा लिये (यजमान नी (द्रौपदी) नियम-धारिणी हैं, कौरव लोग (बलि होने वाले) पशु । प्रिया के अपमान से उत्पन्न क्लेश की शान्ति फल है। (यह) यशो राज-समूह को निमन्त्रित करने के लिये ज़ोर से बज रही है ॥२५॥

हदेव—आर्य, अब बड़े जनों से अनुमति पाये हम भी अपने पराक्रम आचरण करने के लिये जाते हैं।

ीमसेन—वत्स, आर्य की आज्ञा का पालन करने के लिये हम तैयार उठकर) देवी, अब हम कौरवों के नाश के लिये जाते हैं।

ौपदी—(आँसू भरकर) नाथ, असुरों के साथ युद्ध के लिये जाने वाले के समान आपका मङ्गल होवे।

दोनों—हमें (आपका) मङ्गल-वचन स्वीकार है।

द्रौपदी—और नाथ, युद्ध से लौटकर मुझे फिर भी सान्त्वना दीजियेगा।

भीमसेन—पाञ्चाल की राजकुमारी, अब झूठे आश्वासन से क्या (प्रयोजन) (अब) फिर वृकोदर को सब कौरवों का बिना नाश किये (और कार-जन्य ग्लानि तथा लज्जा से दीन-मुख न देखोगी ॥२६॥

मानकदुन्दुभिः। इत्यमरः ॥२५॥

अनुज्ञात इति पञ्चम्यास्तसिः। [अनुज्ञाताः कृतानुमतयः] इह देवि ग्रन्थाम नेन कारणरूपो मुखसन्धिः। यदाह—उद्यमः प्रस्तुतार्थस्य कारण परिकीर्ति। हरेर्यन्मङ्गलं वृत्तं तद्युष्माकं भवतु। यच्चाम्बा कुन्ती वदति तद्युष्माव तु। अलीकं मिथ्या।

भूय इति। भूयः परिभवः प्रचुरपराभवः। [भूय इति पदच्छेदो युक्ततरः भवेन या क्लान्तिर्लज्जा च ताभ्याम्। क्षान्तीति पाठे परिभवस्य क्षान्त्या य तथा विधुरितं क्लिष्टं विच्छाय वा आननं यस्य तम्। अहतकौरवनि. पुनः न पश्यसि।] क्षान्तिः क्षमा। विधुरितं व्यासम्। वृकोदरं भीमम् पश्यति इति पाठे भविष्यति लट् ॥२६॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी— आदिष्टोऽस्मि महाराजमहिष्या— विनयवसो, कर्तव्यम् । अभिव्यक्ता देवी भगवती । अपि विधृता आहाराः वासवदत्ते-देवि । भगवान् [illegible] निहूर्तादिमध्यगो [illegible] राजरूपमिव पतवा समालम्बितया इति । तत्पत्रा कुसुमं गतमद्य । अहो! [illegible] महाराजस्य पश्चय अरतादिभूनाय सर्वांशमात्रमेवावरोधस्य अथवा किमिति जरानुपालमेव यतः सर्वान्तःपुरिकाजनस्यैव व्यापृ-तश्चेटा च । तथाहि ।

नोच्चैः सत्यपि चक्षुषीक्षितमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं
शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्बिता ।
सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा यातं मया नोद्धतं
सेवास्वीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम् ॥

आदिष्टोऽस्मीति । सभाजयितव्याः इत्यनेनान्वयः । अभिव्यक्तामनुमि-तिः अद्ये संभावनायां वा । अम्बा माताम्ब जननी इत्यमरः । [समय श-पथो वा । समयः शपथे भाषासंपदोः कालसंविदोः सिद्धान्ताचारसंकेत-सरेषु च ॥ इति हैमः] । राधेयः कर्णः । संभावयितव्याः सन्निहितीवर्तं सभाजयितव्याः सम्मानयितव्याः] । प्रभविष्णुता प्रभावशालिता । [illegible] । मर्यादामात्रं मर्यादापर्यवसन्नः । अवरोधस्यान्तःपुरस्यान्तःपुरकर्म । [illegible] व्यवहारजनः । उक्तोपन्यासे तथाहि इति शब्दप्रयोगः ।

नोच्चैरिति । चक्षुषि सत्यपि उच्चैरीक्षितुं नालमहं न समर्थः । [ईक्षि-तः प्रक्रमभङ्गादुपेक्ष्यः । चक्षुषि सत्यपि मया उच्चैः नेक्षितमुद्धोक्षि- [illegible] । शक्तेनापि मया यष्टिः [समालम्बिता] समाश्रि-

द्वितीय अंक

(तत्पश्चात् कञ्चुकी प्रवेश करता है)

कञ्चुकी—महाराज दुर्योधन ने मुझे आज्ञा दी है— 'विनयन्धर, जल्दी जाओ। देवी भानुमती का पता लगाओ। वह माता जी की चरण-वन्दना के आचार से निवृत्त हो चुकी अथवा नहीं। क्योंकि उसे देखने के पश्चात् मुझे अभिमन्यु को मार डालने वाले, कर्ण, जयद्रथ आदि अपने सेनापतियों को युद्ध-भूमि में जाकर संमानित करना है।' इसलिये मुझे बहुत शीघ्र जाना चाहिये। ओह! महाराज का प्रभाव भी कितना अद्भुत है कि मुझ वृद्धावस्था से आक्रान्त का केवल मर्यादा-पालन ही अन्तःपुर में कर्त्तव्य रह गया है। अथवा वृद्धावस्था को क्या उलाहना दूं? क्योंकि अन्तःपुर में नियुक्त सब लोगों का ही आचारानुरूप वेष और चेष्टा है। क्योंकि—

आँखें होने पर भी ऊपर को नहीं देखा; पर्याप्त सुनकर भी नहीं सुना; समर्थ होते हुये भी अधिकार के कारण धारण की जाने वाली छड़ी का सहारा लिया; हमेशा त्रुटियों का ध्यान रखते हुए मैं कभी अकड़कर नहीं चला। सेवा के लिये प्राण धारण करने वाले मुझ में क्या (नई बात है), जो वृद्धावस्था ने उत्पन्न की है॥ १॥

...दृशी। अधिकारोऽयं मम कञ्चुकिनो यष्टिसमालम्बनमिति अधिकृता योग्या। ...लितं व्यापारप्रत्ययः। उद्धतं यथा स्यादेवं मया न यातं नोद्धतेन मया ...मित्यर्थः। नामानवक्लृप्तो। जरसा मम किं नाम कृतम्। अपि तु न किमपि। ...द्धस्य। सेवान्धीकृतजीवितस्य। सेवार्थमन्धीकृतं निष्फलीकृतं जीवितं येन ...स्येत्यर्थः। क्वचित् सेवास्वीकृतजीवितस्य इति पाठः। तत्र सेवार्थं स्वीकृतं ...वितं जीवनं येन। तथा च सेवानिमित्तमेव ममान्ध्यादिकं न तु ...राकृतमिति भावः॥१॥

नो महाराजदुर्योधनस्य महिषी भूत्वैवं विगलितधीरभावातिमात्रं संतप्यसे।
भाणुमदि, कीस दाणीं तुमं सिविणअदंसणमेत्तस्स किदे
दुज्जोहणस्स महिसी भविअ एव्वं विअलिअधीरभावा अदिमेत्तं संतप्पसि।
चेटी—भट्टिनि, शोभनं भणति सुवदना। स्वप्नजनः किं न खलु प्रल
[भट्टिणी, सोहणं भणादि सुवअणा। सिविणअन्तो जणो किं ण क्खु पल
भानुमती—हञ्जे एवमेतत्। किन्त्वयं स्वप्नोऽतिमात्रमकुशलदर्शनो
भाति। [हञ्जे एव्वं णेदम्। किंदु एदं सिविणअं अदिमेत्तं अकुसलदंस
पडिभादि।]

सखी—प्रियसखि, यद्येवं तत्कथय स्वप्नं येनावामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ
प्रशंसया देवतासंकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्याव:। [पिअसहि
एव्वं ता कहेहि सिविणअं जेण अह्मे वि पडिट्ठावअन्तीओ पसंसाए
देवदासंकित्तणेण दुव्वादिपडिग्गहेण अ पडिहरिस्सामो।]
चेटी—शोभनं खलु भणति सुवदना। अकुशलदर्शनाः स्वप्ना देव
प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते। [सोहणं खु भणादि सुवअ
अकुसलदंसणा सिविणआ देवदाणं पसंसाए कुसलपरिणामा होन्ति त्ति सुणीअ
भानुमती—यद्येवं तत्कथयिष्ये। अवहिता तावद्भव।
[जइ एव्वं ता कहइस्सं। अवहिदा दाव होहि।]
सखी—अवहितास्मि। कथयतु प्रियसखी। [अवहिदम्हि। कहेदु पिअस
भानुमती—हला भयेन विस्मृतास्मि। तत्तिष्ठ यावत्सर्वं स्मृत्वा कथयिष्या
[हला भएण विसुमरिदम्हि ता चिट्ठ जाव सव्वं सुमरिअ कहइस्स
(इति चिन्तां नाटयति)।
(ततः प्रविशति दुर्योधनः कञ्चुकी च)
दुर्योधनः—सूक्तमिदं कस्यचित्।

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥३॥

विष्कम्भकः स विज्ञेयः कथार्थस्यानि सूचकः ॥ इति भरतः।
भूत्वा विगलितधीरभा इत्या०। अत्र [अभिमानास्प

स्वप्न के दर्शन मात्र से इस प्रकार धीरता खोकर तू अब क्यों अत्यधिक ...ी हो रही है ?

चेटी—स्वामिनी, सुवदना ठीक कह रही है। सोते हुए मनुष्य क्या नहीं ...देता है।

भानुमती—हञ्जे, ऐसा ही है। फिर भी मुझे यह स्वप्न अत्यधिक अशुभ-...क प्रतीत हो रहा है।

सखी—प्रिय सखी, यदि ऐसा है तो स्वप्न (हमें भी) बतला दो, जिससे हम ...ों भी (उसे) मङ्गल-जनक बनाकर धर्म-कथा, देवों के नामोच्चारण और ... (दूब घास) के धारण से (अनिष्ट का) परिहार करें।

चेटी—सुवदना ठीक कह रही है। सुना जाता है कि अशुभ स्वप्न भी ... की स्तुति से शुभ फल वाले हो जाते हैं।

भानुमती—यदि ऐसा है, तो कहती हूँ। सावधान हो जाओ।

सखी—मैं सावधान हूँ। प्रियसखी कहे।

भानुमती—सखी, भय के कारण मैं भूल रही हूँ। तनिक ठहरो, सब याद ...के बतलाती हूँ। (सोचती है)

(तत्पश्चात् दुर्योधन और कञ्चुकी प्रवेश करता है)

दुर्योधन—किसी ने यह ठीक कहा है—

शत्रु की हानि, छिपकर की गई हो या प्रत्यक्ष, थोड़ी हो या अधिक, स्वयं ...हो या दूसरे ने, बहुत ही प्रसन्नता उत्पन्न करती है ॥३॥

...। हिंसाया प्रणयेऽज्ञाने। इति हैमः]। महिर्षी कृताभिषेकायाम् इत्यमरः। ...न्खलु जनो यत्किमपि विप्रलपति। अत्र खलु प्रसिद्धौ। विप्रलपति विसंवादि ... वदति। किं त्वेव मे स्वप्नो···प्रतिभासते। येन मया प्रतिष्ठापयन्त्या ...तया देवतासंकीर्तनेन च परिहरिष्यते। अत्र प्रतिष्ठापयन्त्या स्वप्न शुभार्थक ...येत्यर्थः। [प्रतिष्ठापयन्त्यौ शुभफलदत्वेन सम्पादयन्त्यौ]। देवि एवमेतत्। ...शसदर्शना अपि स्वप्नाः प्रशस्ता...। सूक्तं शोभनोक्तिः। ... गुप्त्येति। अपकारिणां शत्रूणामपकारो गुप्त्या निभृत साक्षात्सर्ववेद्यो ...न्यकृतो वा स्वयं बाहुबलेन वा कृतो महतीं प्रीतिं करोतीत्यन्वयः ॥ ३ ॥

पैशाच [illegible] समुत्पत्तिमिव

कञ्चुकी—देव, [illegible] ।

का नामात्र श्लाघा ।

राजा—विनयन्धर, किमाह भवान् [illegible]

इयमेव श्लाघा कुरुपुङ्गवानामिति । मूढ पश्य ।

हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति ॥

कञ्चुकी—(सवैलक्ष्यम्) देव, न ममायं सङ्कल्पः । किं तु भवतो
यातोऽस्माभिर्निर्विलोकितपूर्वं इत्यत एवं विज्ञापयामि ।

राजा—एवमिदम् ।

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥

कञ्चुकी—(कर्णौ पिधाय सभयम्) शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम्

राजा—विनयन्धर, किं मयोक्तम् ।

कञ्चुकी—सहभृत्यगणं···पाण्डुसुतं सुयोधनः ॥ (इति पठति) । ए
रीतमभिहितं देवेन ।

राजा—विनयन्धर, अद्य खलु भानुमती यथापूर्वं मामनामन्त्र्य वास
त्प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्याक्षिप्तं मे मनः । तदादेशय तमुद्देशं यत्रास्या भानु

कञ्चुकी—इत इतो देवः ।

[समुच्छ्वसितमिव विकसितमिवेत्युत्प्रेक्षा] । का नाम अपि तु न व
नामाननलृशो । लूनशरासनच्छिन्नधनुः ।

हत इति । जरति वृद्धे । गाङ्गेये गङ्गापुत्रे भीष्मे । शिखण्डी क्ली
। तं पुरस्कृत्याग्रे कृत्वा गाङ्गेये हते सतीत्यन्वयः ॥४॥

इच्छा । वो युष्माकम् ।

। सहभृत्यगणमित्यादौ समासो वैकल्पिकः । न चिरादिति

इसीलिये आज द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि द्वारा मारे गये अभिमन्यु के वध में सुनकर हमारे चित्त ने साँस-सा लिया है।

कञ्चुकी—महाराज, आचार्य के शस्त्रों के सामर्थ्य के लिये यह कोई दुस्साध्य कार्य नहीं था, और न ही कर्ण या जयद्रथ के लिये। इसमें प्रशंसा की क्या बात है?

राजा—विनयन्धर, क्या कहा आपने—'कटे धनुष वाले अकेले बालक को अनेकों ने मारा, इसलिये इसमें कुरुश्रेष्ठों की प्रशंसा की क्या बात है।' मूर्ख, देख—

शिखण्डी को आगे करके बूढ़े गाङ्गेय (गङ्गा-पुत्र, भीष्म) को मारने पर पाण्डु के पुत्रों की प्रशंसा हुई है, वही हमारी होगी ॥४॥

कञ्चुकी—(लज्जित होकर) महाराज, मेरा यह अभिप्राय नहीं था। परन्तु के पराक्रम की कुण्ठा हमने पहले कभी नहीं देखी, इसलिये ऐसा कहा है।

राजा—ऐसा ही है—

शीघ्र ही पाण्डु का पुत्र अपने बल से युद्ध में भृत्य-वर्ग, बन्धु-बान्धव, मित्र, तथा अनुजों सहित सुयोधन को मार डालेगा ॥५॥

कञ्चुकी—(कानों पर हाथ रखकर, भय के साथ) पाप शान्त हो। कुल का नाश हो।

राजा—विनयन्धर, मैंने क्या कहा है?

कञ्चुकी—'भृत्यवर्ग सहित ······ पाण्डुपुत्र को सुयोधन।' (इत्यादि का करता है) महाराज ने इसका विपरीत कह दिया।

राजा—विनयन्धर, आज भानुमती पहले के समान मुख से बिना कहे भवन से प्रातः ही बाहर चली गई। इससे मेरा चित्त व्याकुल है। इसलिये स्थान बतलाओ जहाँ भानुमती स्थित है।

कञ्चुकी—महाराज, इधर से, इधर से।

...दित्यर्थः। नशब्द एवाय न तु नञ्समानः ॥ ५ ॥

...पठति। न विपरीताण्डुसुतं सुयोधनः इत्याकारेण। व्याक्षिप्तं—[व्याकुलं], ...म्। इत इतो गम्यतामिति दोषः।

(तथा परिक्रामतः)

कञ्चुकी—(पृष्ठतोऽवलोक्य । [illegible] [illegible]) देव, [illegible] [illegible]

[illegible]

ईषदालोहित[illegible]

[illegible] शीतलं [illegible]लोकनम् । [illegible]

[illegible] देवः । तथाहि—

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः
पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः ।
अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध-
संमूर्छितानि कमलान्यलयः पतन्ति ॥६॥

राजा—(समन्तादवलोक्य) प्रियतमे, इदमपरमसुमिन्नुपति रमणीय

पश्य—

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै-
र्हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।

तुहिनं हिमम् । शिशिरं शीतलम् । उद्वेल्लितं चपलीकृतम् । प्रसवबन्धनम् । वन्धुरं निम्नोन्नतम् । शेफालिका पुष्पभेदः । शेफालिका तु निर्गुण्डी नीलिकापि सा । इत्यमरः । प्रियङ्गुः फलिनी प इत्यमरः । श्यामलता सतुंल इति प्रसिद्धा । [तुहिनकणैः शि यः समीरणस्तेनोद्वेल्लितानि यानि बन्धनानि तेभ्यः च्युता याः शेफा ताभिः विरचितः कुसुमप्रकरो यस्मिन् । ईषदालोहिता ये मुग्धवधूनां क ते इव पाटलानि यानि लोध्रकुसुमानि तैर्विजितं श्यामलतायाः सौभाग्यं यस्मिन् । उन्मीलितैर्विकसितैः कुसुमैः सुरभि च तत् शीतलं च] ।

प्रालेयेति । प्रालेयं हिमम् । (तेन मिश्रः) यः मकरन्दः पुष्परसः कोशा येषां तैः ।] करालो दन्तुरे तुङ्गे इत्यमरः । कोशो म
। । अलयो भ्रमराः । [पुष्पैः समं निपतिता अलयः । [illegible]
[illegible] भिन्ना ये मुकुलास्तेषां उदराणि तत्सम्बन्धिना सान्द्र

(दोनो घूमते हैं)

६। कञ्चुकी—(सामने देखकर, चारों ओर गन्ध सूंघकर) महाराज, देखिये देखिये। यह आपके सामने बालोद्यान रहा, जिसमें ओस के कणों से शीतल वायु द्वारा हिलाये गये वृन्तों से गिरे हुए शेफालिका-पुष्पों ने पुष्पों की राशि लगा दी है, जिसमें कुछ लाल भोली वधू के कपोल के समान लाल लोध्र पुष्पों ने श्याम-लता के सौन्दर्य को जीत लिया है, जो खिले हुये बकुल और कुन्द के पुष्पों से सुगन्धित एवं शीतल है और जो प्रभात काल में सुन्दर प्रतीत हो रहा है। महाराज इसे देखें। क्योंकि—

रात्रि में खिले हुए, हिम-कण मिश्रित पुष्परस से विषम मध्य-भाग वाले पुष्पों के साथ गिरे हुए भौंरे सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के अन्तर्भाग की तीव्र गन्ध से सूचित किये गये कमलों पर पड़ रहे हैं ॥६॥

राजा—(चारों ओर देखकर) विनयन्धर, यहाँ प्रभात मे यह और भी सुन्दर है। देखो—

खिलना प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुड़ियों के छोर रूपी झरोखों में से होकर अन्दर प्रविष्ट सूर्य की किरणों से छुये जाकर जगे हुये ये भौंरे, जिनका अङ्गराग तीव्र गन्ध से कुछ-कुछ प्रकट हो रहा है, अपनी स्त्रियों के साथ खिली हुई कमलिनी के मध्य-भाग रूपी शय्या को राजाओं के समान—(पुष्पों का) विकास प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुड़ियों के छोरों के समान

[सूचितानि] कमलानि पतन्ति गच्छन्ति। (पततेः गत्यर्थत्वात्सकर्मकत्वम्] ॥६॥

[अमुष्मिन्नुद्याने]। उषसि प्रभाते।

जृम्भेति। जृम्भारम्भो विकासोपक्रम इत्यर्थः। [जृम्भारम्भेण प्रवितता दलानामुपान्ताः ते एव जालानि पक्षे दलानामुपान्ते यानि जालानि वातायनानि तैः प्रविष्टैः भानोः किरणैः स्पृश्यमाना नृपतय इव विबुद्धाः। घनपरिमलश्चासौ स्तोकं लक्ष्यश्चाङ्गरागो येषाम्, पक्षे घनपरिमलस्य चन्दनादेः स्तोकेनापि लक्ष्यः, यद्वा स्तोकं लक्ष्यः अङ्गरागो येषाम्। एते द्विरेफाः विकचनलिनीगर्भ एव शय्या ताम्। पक्षे विकचनलिन्यो गर्भे यस्यास्तादृशीं शय्याम्। स्त्रीभिः सार्धं मुञ्चन्ति।] दलोपान्तः पत्रसमीपम्। तदेव जाल-

स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा
मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥७॥

कञ्चुकी—देव, नन्वेषा देवी भानुमती सुवदनया तरलिकया -
माना तिष्ठति । तदुपसर्पतु देवः ।

राजा—(दृष्ट्वा) आर्य विनयन्धर, गच्छ त्वं साङ्ग्रामिकं [illegible]
तुम् । अहमप्येष देवीं दृष्ट्वानुपदमागत एव ।

कञ्चुकी—एष कृतो देवादेशः । (इति निष्क्रान्तः)

सखी—प्रियसखि, अपि स्मृतं त्वया । [पिअसहि, अवि सुमरिदं तुए

भानुमती—सखि, स्मृतम् । अद्य किल प्रमदवन आसीनाया [illegible]
केनाप्यतिशयितदिव्यरूपिणा नकुलेनाहिशतं व्यापादितम् । [सहि, सुम
अज्ज किल पमदवणे आसीणाए मम अग्गदो केणावि अदिसइददिव्व
णउलेण अहिसदं वावादिदम् ।]

उभे—(अपवार्य । आत्मगतम्) शान्तं पापम् । प्रतिहतमम
(प्रकाशम्) ततस्ततः । [सन्तं पावम् । पडिहदं अमङ्गलम् । तदो तदो ।]

भानुमती—अतिसंतापोपगृहीतहृदयया विस्मृतं मया । तत्पुनरपि
कथयिष्ये । [अदिसंदावोवग्गहिदहिअआए मए विसुमरिदं । ता पु
सुमरिअ कहइस्सम् ।]

राजा—अहो देवी भानुमती, सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मन्त्र
निकृति । भवतु । अनेन लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विस्रब्धा
(इति तथा स्थितः) ।

सखी—सखि, अलं संतापेन । कथयतु प्रियसखी ।

[सहि, अलं सन्दावेण । कहेदु पिअसही ।]

[illegible] । भागीति भाः । अन्येष्वपि दृश्यते इति
[illegible] । यथा । भामिनीति पदे पु
[illegible] एव च । [illegible]
[illegible] इति मन्तव्यः । [illegible]
[illegible] इति वार्तिकः । [illegible] । द्विरेफो [illegible]

...गवाक्षों में से होकर अन्दर प्रविष्ट सूर्य की किरणों से छूने पर जगे हुए, और ...चन्दन के स्वल्पांश से दिखलाई देते हुए अङ्गराग वाले राजा अपनी स्त्रियों के ...पि खिली हुई कमलिनियों को मध्य में धारण करने वाली शय्या को जैसे— ...ड़ रहे हैं ॥७॥

कञ्चुकी – महाराज, सुवदना और तरलिका द्वारा सेवा की जाती हुई यह ...दी भानुमती बैठी है। इसलिए महाराज पास जायें।

राजा—(देखकर) आर्य विनयन्धर, तुम मेरा युद्ध का रथ तैयार कराने ...ओ। मैं भी देवी से मिलकर बस यह पीछे-पीछे आया।

कञ्चुकी—महाराज का आदेश यह किया। (बाहर चला गया)।

सखी—प्रियसखी, क्या आपको याद आया ?

भानुमती—सखी, याद आया। आज मेरे प्रमदवन में बैठी हुई के सामने ...सी अत्यधिक दिव्यरूपधारी नकुल ने सौ सर्प मार डाले।

दोनों—(एक ओर को होकर स्वगत) पाप शान्त हो। अमङ्गल का नाश ...। (प्रकट में) उसके बाद ?

भानुमती—अत्यधिक संताप से व्याकुल हृदय वाली मैं (फिर) भूल गई। ...लिये फिर से याद करके कहूँगी।

राजा—आहा ! देवी भानुमती, सुवदना और तरलिका के साथ कुछ बातें ...रही है। अच्छा, तब इस लता-गुल्म से छिपकर इनके स्वैर-आलाप को ...गा। (वैसा करके खड़ा होना है)।

सखी—सखी, सन्ताप न करो। प्रियसखी (आगे) कहो।

...तद्दोषेऽपि सर्वं योज्यम् ॥ ७ ॥

...धार्मिकं युद्धे साधु। ममापत एव दिव्यरूपिणा। अत्र किस निश्चये। ...नकरिणा सुन्दरेण। नकुलो नेउर इति प्रसिद्धो जन्तुः पाण्डवश्च। अहिशतं ...तम्। वध च सूचनम् ॥ अनात्यायं निभृतम्। प्रकाशमिति। यतु ...जनाव्यं प्रकाश तमिनदते। इति भरतः। तनस्तत.। मन्मथमाला मन्द ...ते।

राजा—किं नु खल्वस्या मन्युकारणम् । [illegible]
[illegible] समर्थित दृष्टवती मया [illegible] । अपि भानुमति,
यत्तु दुर्योधनो भवत्याः कोपस्य—

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखं नाद्यासि संभाविता ।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि कं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि

(विचिन्त्य) अथवा—

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण ।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम्

तथापि श्रोतुमस्याभिरिक्तं वाञ्छतीति ।

भानुमती—हञ्जा, अहं ततस्तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेन उत्सुका जाता । [हला, अह तदो तस्स अदिसइददिव्यरूविणो णउलस्स दंसणेण उस्सुआ जादा ।]

राजा—(सवैलक्ष्यम्) किं नामातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता । तत्किमनया पापया माद्रीसुतानुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः । (सोद्वेगम् इयमस्मद्-इति पठित्वा) मूढ दुर्योधन, कुलटाविप्रलभ्यमानमात्मानं बहुमन्यमानो

किं कण्ठ इति । [अद्य मया प्रमादात् तव कण्ठे भुज० शिथिलीकृतः किम्] निद्रायाश्छेदोऽवसानं तत्र विवर्तनं पार्श्वपरिवर्तनम् । [अद्य गतायां रात्रौ निद्राच्छेदविवर्तनेषु अभिमुखं अभिमुखो भूत्वा इत्यर्थः । मया त्वं न संभाविता संमानिता किम् ।] संभाविता संमुखीकृता । [अन्यस्त्रीजनेन सह या] संकथा आलापः [तया लघुः क्षुद्रवृत्तिः अहं त्वया लक्षितः किम् ।] उपालम्भो विसंवादः । [परिजन इवोपालम्भयोग्ये मयि यद्वा परिजनस्योपालम्भस्तद्योग्ये कृतापराधोऽहं परिजनवन्निर्भर्त्स्यो न त्वन्यथा मयि कोपः कार्य इत्यर्थः ।]॥८॥

इयमिति । [अस्माकमुपाश्रयः सान्निध्यम् अस्मदु० स एव एकः प्रधानः ह

ा—इसके सन्ताप का क्या कारण हो सकता है ? अथवा यह मुझसे
ही वास-भवन से निकल आई है, इस से मैं इसके कोप को समझ
री भानुमती, दुर्योधन आपके कोप का पात्र नहीं है।

लापरवाही के कारण मैंने कण्ठ से भुजारूपी लता के पाश को शिथिल
? क्या (मैंने) निद्रा-भङ्ग में करवट बदलते पर तुम्हारी ओर मुख
ज तुम्हारा आदर नहीं किया है ? क्या तुमने स्वप्न में मुझे अन्य स्त्री
ालाप के कारण क्षुद्रवृत्ति देख लिया है ? प्रिय, सेवक के समान
िय मुझ में क्या दोष देख रही हो ॥८॥

) अथवा—

ात्र हम से आश्रित चित्त वाली यह अवश्य ही अपने मन से, जिसमें
र हो गया है, अतिप्रिय होने के कारण मेरे किसी तनिक से अपराध
ा करके रुष्ट हो गई है ॥९॥

नेंगे कि यह क्या कहेगी।

मती—सखी, तब मैं उस अतिशय दिव्य रूप वाले नकुल के दर्शन
ठत हो गई।

ा—(खिसियाकर) क्या अतिशय दिव्य रूप वाले नकुल के दर्शन से
हो गई ? तो क्या माद्री के पुत्र पर आसक्त हुई इस पापिनी ने हमें
[धोखा दिया है ? (सोचते हुए—'इयमस्मद्' इत्यादि २।९ का फिर
ः) मूर्ख दुर्योधन, पुंश्चली द्वारा वञ्चित स्वयं को बहुत मानने वाला तू

या सा तथोक्ता। इय प्रेमनिबद्धमत्सरेण मनसा मम अपराधलेश
य अतिवल्लभत्वात् नियतं कुपिता इत्यन्वयः]। उपाश्रयः सश्रय।
यावत्। [मम सान्निध्यमेव वाञ्छतीत्यर्थः।] मनसा कारणभूतेना-
रैकचित्तेत्यन्वयः। निबद्धं निरस्तम्। [प्रेम्णा निबद्धो मत्सरोऽन्यस्त्री-
यस्मिन्। मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः इत्यमरः]। स्वयमुत्प्रेक्ष्य असन्तमपि
]॥ ९॥

ा वेश्ययानया वृथा प्रेमदर्शनेन प्रतार्यमाणम्। माद्रीसुतो नकुलः॥
ः ...मया वञ्चिताः।] विप्रलम्भो विसवादः इत्यमरः। कुलटा बन्धकीत्वरी

ऽधुना किं वक्ष्यसि । (किं कण्ठ इत्यादि पठित्वा । दिशोऽवलोक्य) मेधास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजनसंकथासु च दुर्योधनस्तु मोहादविज्ञातयन्यकोहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः । मत्परिग्रहपांसुले—

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि
श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः ।
तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः
ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ॥

सखी—ततस्ततः । [तदो तदो ।]

भानुमती—तत उज्झित्वा तदासनस्थानं लतामण्डपं प्रविष्टा । ततः सोऽपि मामनुसरन्नेव लतामण्डपं प्रविष्टः । [ततो उज्झिअ तं आसणट्ठाणं लदामण्डवं पविट्ठा । तदो सोवि मं अणुसरन्तो एव्व लदामण्डवं पविट्ठो ।]

राजा—अहो कुलटोचितमस्याः पापाया अशालीनत्वम् ।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभाव-
मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः ।
तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती
ह्रीणाऽसि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन् ॥११॥

इत्यमरः । [विविक्तं विजनम् ।] विविक्तौ पूतविजनौ इत्यमरः । [... आदरः । मोहाद्यथार्थाज्ञानात् ।] अन्यस्यै वेश्या । सारः स्थैर्यम् [याथार्थ्यं ... परिग्रहोऽत्र कलत्रम् । तत्र पांसुला अगती ।

तद्भीरुत्वमिति । [मम पुरतः तव तत् तथा दर्शितं भीरुत्वम् । ... ईदृशानि परपुरुषगमनरूपाणि [साहसानि] । [विनयस्य पातिव्रत्य... व्युत्क्रमोऽतिक्रमः । तत्र एव] रागोऽनुरागः । मयि जडमती तत् तथा प्रदर्शि... औदार्यं दाक्षिण्यम् ।] चापले चाञ्चल्ये । तत्र कोऽपि पन्थाः किमपि अपूर्वं [मार्गः ...] ।] वंश तदैन्यभवः । तस्मिन् ख्याते विमलति निर्म...

ा कहेगा ? ('किं कण्ठे शिथिलीकृत' इत्यादि श्लोक का पाठ करके, चारों तरफ देखकर) ओह ! इसी लिये इसकी प्रातः ही एकान्त स्थान की अभिलाषा सखियों के साथ स्वैर-आलाप मे प्रेम हुआ है। दुर्योधन तो मोह के कारण (व्यभिचारिणी) के हृदय की वास्तविकता को न जानने के कारण धोखे में ही रहा। ओ पापिनी, मेरे कलत्र को कलङ्कित करने वाली,

कहाँ) मेरे सामने तेरी वह भीरुता, (और कहाँ तेरे) ऐसे साहसपूर्ण र कर्म ! (कहाँ) हमारे रूप (शरीर) की (वह) प्रशंसा, (और कहाँ) के उल्लङ्घन के प्रति (यह) आसक्ति ! (कहाँ) मुझ मन्दबुद्धि के प्रति वह उदारता, (और कहाँ) चञ्चलता का (यह) विलक्षण मार्ग ! उस विशुद्ध प्रसिद्ध कुल में जन्म, (और कहाँ) यह निन्दनीय कर्म ।।१०

मती—उसके बाद ?

भानुमती—तब मैं उस बैठने के स्थान को छोड़कर लता-मण्डप के अन्दर गई। तब वह भी मेरे पीछे-पीछे आता हुआ लता-मण्डप मे ही घुस गया।

राजा—ओह ! इस पापिनी की कैसी व्यभिचारिणियों जैसे निर्लज्जता है। हे पापपूर्ण हृदय वाली, जिन सखियों से तूने एकान्त मे मेरे सुरत के ण का लम्बे प्रेम के कारण बड़े चाव से वर्णन किया था, आज उन्हीं (सखियों) से अपने दुराचार को बतलाती हुई तू लज्जित नहीं होती ।।११।।

व जन्म । एतत्] कौलीनमपवादः । कौलीनं पशुभिर्युद्धे कुलीनत्वापवादयो । विषः ।। १० ।।

ग. सोऽपि मामनुवर्तमानस्तमेव लतामण्डपं प्रविष्टः । अहमपीनस्व था ।

यस्मिन्निति ।। [हे पापहृदये यस्मिन्सखीजने चिरं प्रणयेन विस्रम्भेण यः एव अभिमानं यथा तथा यदो भावो यस्मिन्कर्मणि तदया तथा लोपभोगः रहसि आवेदितः तस्मैव अस्मिन् सखीजने अद्य दुश्चरित तस्त्री न हीणा असि ।] प्रणयः प्रेम्णि विस्रम्भे इति विश्व । भावो- ग्रः । रहस्येकान्ते । हीणा लज्जावती ।। ११ ।।

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—तब उसने एष्टता के साथ हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली।

राजा—(सोचते हुये) गर्व से हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली ? (क्रोध अब आगे नहीं सुना जाता। अच्छा तो मैं दूसरे की स्त्री को दूषित करने और बने उस नीच माद्री के पुत्र के प्राण लिये लेता हूँ। (कुछ दूर जाकर सोचकर) या पहले इस पापिनी को ही दण्ड देना चाहिये। (लौट ता है)।

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—इसके बाद आर्यपुत्र के (जगाने के लिये किये गये) प्रातः-कालीन मङ्गलमय वाद्यों की ध्वनि से मिले हुये वाराङ्गनाओं के संगीत के ने मुझे जगा दिया।

राजा—(अनिश्चय से) 'मुझे जगा दिया' इस कथन से प्रतीत होता है इसने स्वप्न-दर्शन का वर्णन किया हो। (सोचकर) जो भी हो, सखी के से स्पष्ट हो जायेगा।

- (दोनों खेदसहित एक दूसरी को देखती हैं)

सुवदना—इसमें जो भी अनिष्ट है, उसे भागीरथी आदि नदियों के जल से कर दिया जाय। भगवान् ब्राह्मणों के आशीर्वचन और आहुति दिये गये प्रज्वलित अग्निदेव द्वारा नष्ट हो जाय।

राजा—अब सन्देह की आवश्यकता नहीं। इसने यह स्वप्न-दर्शन का ही किया था, लेकिन मुझ जड़मति ने कुछ अन्य ही समझ लिया—

सौभाग्य है कि मैं आधी सुनी बात से होने वाली वञ्चना से उत्पन्न आवेश ला नहीं गया; सौभाग्य से मैंने बातचीत के बीच में ही क्रोध से कठोर

।] वारविलासिनी वेश्या। [अत्याहितं महाभीतिदं। अत्याहितं महाभीतिः र:। आहुतिभिर्हुतस्तेन। हुता आहुतयो यस्मिन् तेन इति वा।] तिसुरभिगन्धिना ज्वलनेनापह्नियताम्। अत्र अत्याहितमप्रशस्तम्।

ष्ट्येति। [अर्धश्रुतेन यो विप्रलम्भो वञ्चना तेन जनितः यः क्रोधस्तस्मात्। गत इति दिष्ट्या भाग्येनेति हर्षहेतुः दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे

मां प्रत्याययितु विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत् ॥१

भानुमती--हला, कथय किमत्र शुभसूचकम् ।

[हला, कहेहि किं एत्थ सुहसूअअम् ।]

सखी चेटी च-- (अन्योन्यमवलोक्य, अपवार्य) अत्र नास्ति स्तोक शुभसूचकम् । यद्यत्रालीकं कथयिष्ये तत्प्रियसख्या अपराधिनी भविष्यामि । एव स्निग्धो जनो यः पृष्टः पथ्यमपि हितं भणति । (प्रकाशम्) सखि, सर्वं वैतदशुभनिवेदनम् । तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिग्रहेण शान्त्यताम् । खलु दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतवधं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणा [एत्थ णत्थि त्थोअ वि सुहसूअअम् । जइ एत्थ अलीअं कहइस्सं ता पिअसहीए अवराहिणी भविस्सम् । सो एव्व सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो पत्थं वि हि भणादि । सहि सव्वं एव्व एद असुहणिवेदणम् । ता देवदाणं पणामे दुजादिजणपडिग्गहेण अ अन्तरीअदु । णहु दाढिणो णउलस्स वा दंसणं अहि दवह अ सिविणए पसमन्ति विअक्खणा ।]

राजा--अवितथमाह सुवदना । नकुलेन पन्नगशतवधः स्तनांशुकापहरणं निपतमरिष्टोदर्कं तर्कयामि ।

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ॥१३॥

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः, ममापि नाम दुर्योधनस्यानिमित्तानि हृद

दयन्तरः ।] दिष्ट्या हर्षेण । मो निपेधे । ममानोना निषेधवचनाः कोनात् । [दिष्ट्या अर्थान्तरमे कथामध्ये मया दया क्रोधेन परुषं कठिनं स्याहृतमुक्तम् । दिष्ट्या विमूढं यथार्थग्रहणासमर्थं हृदयं यस्य तं मां प्रत्याययितुं बोधयितुम् । कथा अन्तं गता समाप्ता । [दिष्ट्या जगत् मिथ्या दूषितया अनया विरहितं न जातम्] ॥ १२ ॥

नास्ति कथय किमत्र शुभं किं शुभसूचकमिति । तनोऽलीक मन्त्रयन्ती प्रियसख्या अपराधिन्यो भविष्यामः । सर्वमेवैतदशुभनिवेदनम् । तथापि

नहीं कहो; हर्ष है कि मुझ मूर्ख को विश्वास दिलाने के लिए क्या समाप्ति पहुँच गई; सौभाग्य है कि मिथ्या दोषारोपण की गई इस (भानुमती) से [शू]न्य नहीं हुआ ॥१२॥

भानुमती—सखी, बतलाओ इसमें क्या शुभ-सूचक है ?

सखी और चेटी— (परस्पर एक दूसरे को देखकर, एक ओर को) इसमें [कुछ] भी शुभ-सूचक नहीं है। यदि इस विषय में झूठ कहूँगी तो प्रियसखी की [अपरा]धिनी हो जाऊँगी। प्रेमी जन वही हैं जो पूछने पर कठोर होते हुए भी [सत्य]र बात कहें। (प्रकट में) सखी, यह तो सारा ही अशुभ-सूचक है। इस-[लिए] देवों को प्रणाम करके और ब्राह्मणों को दान देकर अनिष्ट रोका जाय। [विद्वान] लोग स्वप्न में अंगसी सूअर या नेवले के दर्शन और सौ साँपों के वध [को अ]च्छा नहीं बतलाते।

राजा—सुवदना सत्य कह रही है। नकुल द्वारा सौ साँपों का वध और [चो]ली का अपहरण निश्चित रूप से अशुभ फल वाला है, ऐसा मैं समझता हूँ।

यद्यपि शुभ-अशुभ स्वप्न लोगों को समय-समय पर दीखते रहते हैं, लेकिन [य]ह सौ संख्या तो, मानो, छोटे भाइयों समेत मुझ पर ही लग रही है ॥१३॥

(बाईं आँख का फड़कना सूचित करके) ओह ! ये अपशकुन मुझ दुर्योधन के भी हृदय को व्याकुल कर रहे हैं। (संभल कर) अथवा डरपोक लोगों के

[य]त्किमप्यत्याहितं तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिग्रहेण चान्तरीक्रियताम्। [किन्तु पु]न पुनर्दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतव्यापादानं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणाः। [अ]त्र पदं निष्ठुरम्। अन्तरीक्रियतां शाम्यताम्। इहाशीरलंकारः। यदुक्तम् तत्रैव—आशीरिष्टार्थशासनम् इति। विचक्षणाः पण्डिताः। अवितथं सत्यम्। पन्नगाः सर्पाः। [अरिष्टमशुभमुदर्के उत्तरकाले यस्य।] उदर्कः उत्तरविशुद्धिः। पर्यायेणेति। [स्वप्नाः पर्यायेण शुभाशुभाः दृश्यन्ते। कदाचिद् शुभफलो-त्पादकाः कदाचिदशुभपरिणामा इत्यर्थः।] अकामानुमतौ कामम् इत्यमरः। इयं शतसंख्या पुनर्मां स्पृशतीत्यन्वयः ॥ १३ ॥

आवहन्तीत्यत्र कश्चिच्युतकदोषो नास्ति। विशेषगुणेपूद्धृतरवादित्यवधेयम्। [प्रकम्पनेषु कम्पकारिषु। का गणना तुच्छान्येतानीत्यर्थः।]

लोचमाचेरर्जिज । (सावष्टम्भम्) अथवा भीरुजनहृदयप्रत्ययेषु क
दुर्बलमनोवृत्तिषु । भीरुजनप्रतारितहृदया—

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम् ।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति ॥१४

तदुपनय: शीघ्रमायुधमामन्त्रितानुपानयामि ।

भानुमती—हला सुवदने, पश्य तावदुदयगिरिशिखरगतोऽनुराग
विगलितसन्ध्यारागप्रसरगोऽम्बरतलो भगवान्दिवसनाथः । [
सुवअणे, पेक्ख दाव उदअगिरिसिहरग्गरिअविमुक्कप्पहरो विअलिअसंज्झ
राअप्पसरोअम्बरअलो भअवं दिअसणाहो ।]

सखी—सखि, रोगाणितननकपत्रमहृतेन मयामामान्तरोर्तिहृर्तिहरे
पिञ्जरितोद्यानभूमिभागो दुःप्रेक्षणीयो भगवान्सहस्ररश्मिः संवृत्तः । तत्
लोहितचन्दनकुसुमगर्भेणार्घेण पर्युपस्थातुम् । [सहि, रोगाणिदरणाअसन्ति
सदाजालन्तरोरहिदकिरणनिवहेण पिञ्जरिदोज्जाणभूमिभाओ दुप्पेक्खणि
भअवं सहस्सरस्सी संवृत्तो । ता समओ दे लोहिदचन्दणकुसुमगब्भेण अ
पज्जुवट्ठादुम् ।]

भानुमती—हञ्जे तरलिके, उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भगवतः सहस्र
सपर्यां निर्वर्तयामि । [हञ्जे तरलिए, उवणेहि मे अग्घभाअणं जाव भअ
सहस्सरस्सिणो सवरिअं णिव्वट्टेमि ।]

चेटी—यद्देव्याज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) । [जं देवी आणवेदि ।]

राजा—अयमेव साधुतरोऽवसरः प्रियासमीपमुपगन्तुम् ।

(इत्युपसर्पति)

ग्रहाणामिति । सूर्यादिदशाः स्वप्नोऽनिमित्तमकस्मादौत्पातिकमुत्पात
दिकमेते काकतालीयमतर्कितोपनत यथा स्यादेवं फलन्ति । अतस्तेभ्यः प्रा
पण्डिता न बिभ्यति । न भयं कुर्वन्तीत्यर्थः । तेभ्य इति भीत्रार्थानां भय
। ॥ १४ ॥

अलीका चासौ आशंका च ताम् । विगलितो यः सन्ध्यारागस्तेन प्रम

य को कम्पित करने वाले इस प्रकार के (अपशकुन आदि) के विषय दुर्योधन को क्या चिन्ता हो सकती है ? अङ्गिरा ने भी यही भाव छन्दोबद्ध या है -

ग्रहों की गति, स्वप्न, अपशकुन और मनौती (उपयाचित) संयोग-वश ही देती हैं (सच्ची होती हैं)। इसलिये बुद्धिमान् लोग उनसे नहीं डरते ॥१४॥

तो अब भानुमती को स्त्री-स्वभाव सुलभ मिथ्या आशङ्का को दूर करता हूँ।

भानुमती—सखी सुवदना, देखो तो—भगवान् सूर्य (दिन का पति), जिस उदयपर्वत के शिखर से छिपा हुआ उत्तम रथ बाहर निकल आया है, ग की लालिमा के नष्ट हो जाने से स्वच्छ एवं दुर्लंक्ष्य बिम्ब वाला हो है।

सखी—सखी, तपे हुए स्वर्ण के पत्र सदृश, लता-समूह के अन्तर्भाग मे पड़े किरण-जाल से उद्यान के भूमि-भाग को पीला कर देने वाला भगवान् र (सहस्र किरणों वाला) दुरालोक हो गया है। इसलिये आपका लास । और पुष्पों से मिश्रित पूजा-सामग्री से पूजा करने का समय हो गया है।

भानुमती—अरी तरलिका, पूजा-सामग्री का पात्र मेरे पास ला, जिससे भगवान् सूर्य की पूजा कर सकूं।

चेटी—जैसी देवी आज्ञा दें। (बाहर जाती है)।

राजा—प्रिया के समीप जाने का यही अच्छा अवसर है। (यह कहकर जाता है)।

रालोकं मण्डलं यस्य ।] सखि रोसानितकनकपत्रसदृशेन लताजालान्तर-किरणनिवहेन पिञ्जरितोद्यानभूमिभागः पूरितप्रतिज्ञ इव रिपुदुःप्रेक्षणीयो भगवान्सहस्रकिरणः । तत्समयस्ते कुसुमचन्दनगर्भेणार्घेण पर्युपस्थातुम् । सानितं निर्मलीकृतम् । पिञ्जरितः कपिशीकृतः । पर्युपस्थातुं पूजयितुम् । सपर्या पूजा । देहि एतदर्घभाजनम् । भगवन्नम्बरसरोवरैकसहस्रपत्र मुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक सकलभुवनाङ्गनदीपक इह स्वप्नदर्शने प्यरशाहितं तद्भगवतः प्रणामेन कुशलपरिणामं मम सगतभ्रातृकस्यार्य-

([illegible])

चेटी—भट्टिनि, इदमर्घभाजनम्। [illegible]

[भट्टिणि, इदं अग्घभाअणं। [illegible]]

[illegible]—(विलोक्यात्मगतम्) कथं महाराज आगतः। हन्त जातो मे नियमभङ्गः। [कहं महाराओ आअदो। हन्त जादो मे णिअमभङ्गो।]

(राजा उपसृत्य संज्ञया परिजनमुत्सार्य स्वयमेवार्घपात्रं गृहीत्वा [illegible]

भानुमती—(दिनकराभिमुखी भूत्वा) भगवन् अम्बरमहासरएक[सहस्र]पूर्वदिशावधूमुखमण्डनकुङ्कुमविशेषक सकलभुवनैकरत्नप्रदीप यदत्र स्व[प्न]दर्शने यत्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन सभ्रातृकस्यार्यपुत्रस्य कुशलपरिणामि [भवतु]। (अर्घं दत्त्वा) हञ्जे तरलिके, उपनय मे कुसुमानि। अपराणामपि देवतानां [सपर्यां] निर्वर्तयामि। (हस्तौ प्रसारयति)। [भअवं अम्बरमहासरेक्कसहस्सपत्त पुव्वदिसावहूमुहमण्डलकुङ्कुमविसेसअ सअलभुवणेक्करअणप्पदीव जं एत्थ सिविण[अदंसणे] किं वि अच्चाहिदं तं भअवदो पणामेण सभादुअस्स अज्जउत्तस्स कुसलपरि[णामि] होदु। हञ्जे तरलिके, उवणेहि मे कुसुमाइं। अवराणं वि देवदाणं [सपज्जं] णिव्वट्टेमि।]

(राजा पुष्पाण्युपनयति। स्पर्शसुखमभिनीय च कुसुमानि भूमौ पातयति।)

भानुमती—(सरोषम्) अहो प्रमादः परिजनस्य। (परिवृत्य दृष्ट्वा ससंभ्रमम्) कथमार्यपुत्रः। [अहो पमादो परिअणस्स। कधं अज्जउत्तो।]

राजा—देवि, अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे। तत्प्रभवत्यत्र शासने देवी।

भानुमती—(लज्जां नाटयति)

राजा—अयि प्रिये,

विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः
परिजनपथवर्तिन्यत्र किं संभ्रमेण।

[पुत्र]स्य भवतु। अत्र सहस्रपत्रं कमलम्। विशेषकस्तिलकः। अङ्गनं चत्वरा[दि]। [illegible]। अत्र णत्वविधायकसूत्राभावात् प्रकारान्तरमेवैतदवधेयम्। अनिपु[णः]

(प्रवेश करके)

चेटी—स्वामिनी, यह पूजा-पात्र रहा। अब भगवान् सूर्य की पूजा कर ये।

सखी—(देखकर स्वगत) क्या महाराज आ गये! ओहो! (बस अब) व्रत-भङ्ग हो ही गया।

पास जाकर संकेत से सेवकों को हटाकर स्वयं ही पूजा-पात्र लेकर देता है)

ानुमती—(सूर्य की ओर मुख करके) आकाश रूपी विशाल जलाशय के य सहस्र-दल (कमल), पूर्व दिशा रूपी वधू के मुखमण्डल के कुंकुम-, सम्पूर्ण जगत् के अद्वितीय मणि-दीपक, भगवान्, इस स्वप्न-दर्शन में जो निष्ट हो, वह भगवान् के अभिवादन से भाइयों सहित आर्यपुत्र के लिये ल वाला हो जाय। (अर्घ्य देकर) अरी तरलिका, मुझे पुष्प दो, (जिससे सरे देवताओं की भी पूजा कर सकूं। (दोनों हाथ फैलाती है)।

राजा पुष्प देता है और स्पर्श-सुख का नाट्य करके पुष्पों को पृथ्वी पर गिरा देता है)

ानुमती—(नाराज होकर) ओह! सेवकों का कैसा प्रमाद है? (घूमकर नकर घबराहट के साथ) क्या? आर्यपुत्र!

ाजा—देवी, यह सेवक इस प्रकार की सेवा के अवसर के लिये (बहुत) हीं है। इसलिये देवी इसके लिये दण्ड देने में समर्थ हैं।

ानुमती—(लज्जा का नाट्य करती है)।

ाजा—प्यारी, घबराहट की क्या आवश्यकता है? धवल और विशाल त की ओर चलने वाली अपनी दृष्टि सेवक के मार्ग पर चलने

र्विरेति। [हे देवि सम्भ्रमेण अलम्। परिजनस्य पन्थाः परिजनपथ। ीतु शीलमस्य तस्मिन्परिजनपथवर्तिनि अत्र मयि। धवलश्चासौ दीर्घश्च कटाक्षेतेन सम्पतीति तच्छील चक्षु] विकिर विक्षिप। अपाङ्गे नेत्रान्तः त संसर्ग गमनशीलम्। परिजनपथवर्तिनि सेवकमार्गस्थिते मयि। कि

स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः
प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥१५॥

भानुमती—आर्यपुत्र, अभ्यनुज्ञातायास्त्वयाऽस्ति मे कस्मिन्नपि मिलाषः । [अज्जउत्त, अब्भणुण्णादाए तुए अत्थि मे कस्सि वि हिलासो ।]

राजा—श्रुतविस्तार एवास्मि भवत्याः स्वप्रवृत्तान्तं प्रति । त नकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम् ।

भानुमती—आर्यपुत्र, अतिमात्रं मां शङ्का बाधते । तदनुमन्यता पुत्रः । [अज्जउत्त, अदिमेत्तं मे सङ्का बाहेदि । ता अणुमण्णदु मं अज्ज

राजा—(सगर्वम्) देवि, अलमनया शङ्कया । पश्य—

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं
किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि
भीरु भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायां सुखोपस्थिता
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव ॥

भानुमती—आर्यपुत्र, न खलु किमपि मे शङ्कास्थानं युष्मासु सन्नि किं त्वार्यपुत्रस्यैव मनोरथसंपत्तिमभिनन्दामि । [अज्जउत्त, ण हु कि

संभ्रमेणोद्वेगेन । स्मितमधुरमुदारं मनोहरं च यथा स्यादेवं हे देवि म ब्रूहि । मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं [त्वां प्रभवति ।] पाण्योरञ्जलिरित्यना दरस्य न देयम् । उत्तरोत्तरमनोहारिण्या तदुच्चारात् ॥१५॥

किं नो व्याप्तेति । [यदि त्वमेव शङ्कां [illegible] तर्हि नः व्याप्त दिगन्तानाम्, प्रकम्पिता भूर्याभिस्तासाम्, अक्षौहिणीनां किं फलम् । [द्रोणेन । [illegible] । किं फलम् । अङ्गानां राजा अङ्गराजः कर्ण विशिखैः बाणैः किं फलम् ।] अक्षौहिणी सेनाभेद. । [अक्षौहिण्याः प्रमाण । द्विसप्तत्या । [illegible] ॥ [illegible]
८। तथा [illegible] (२१८७०) । [illegible] एतेनैव [illegible]

ं इस (मुझ दुर्योधन) पर डालो। देवी, मुख से मन्द हास से मधुर और
रतापूर्ण वचन ज़ोर से कहो। मेरे हाथों की अञ्जलि आपकी सेवा कर
ती है ॥१५॥

भानुमती—आर्यपुत्र, आपकी अनुमति पाकर मुझे कोई व्रत लेने की
त्तता है।

राजा—आपके स्वप्न की घटना के विषय में मैंने विस्तार से सुन लिया
इसलिये स्वभाव से कोमल अपने (शरीर) को इस प्रकार कष्ट देने से
करो।

भानुमती—आर्यपुत्र, मुझे बहुत अधिक भय सता रहा है। इसलिये आर्य-
मुझे अनुमति प्रदान करें।

राजा—(गर्व से) देवी, इस आशङ्का से बस करो। देखो, यदि तुम इस
र दुःखी होगी तो—

दिशाओं को छा देने वाली और पृथ्वी को कम्पित कर देने वाली हमारी
ौहिणी सेनाओं का क्या फल हुआ? (आचार्य) द्रोण से क्या लाभ हुआ?
देश के राजा (कर्ण) के बाणों का क्या लाभ हुआ? हे भयशील, तुम मेरे
भाइयों की भुजा रूपी वृक्षों की छाया में सुखपूर्वक बैठी हुई, दुर्योधन रूपी
राज की पत्नी हो; तुम्हें भय का कारण क्या हो सकता है ॥१६॥

भानुमती—आर्यपुत्र, तुम लोगों के रहते मेरे लिये कोई भी भय का कारण
है। किन्तु मैं आर्यपुत्र की ही मनोरथ-सिद्धि की कामना कर रही हूँ।

शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु। नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि
चानघाः॥ पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्य-
थावदिह संख्यया॥ इति महाभारते आदिपर्वणि अ० २ श्लो० २३.२६]
किं द्रोणेनेत्यादौ फलमित्यनुषज्यते। अङ्गराजः कर्णः। क्लाम्यसि परिक्लाम्यसि।
हे भीरु। [मि भ्रातृशतस्य भुजा एव वनं तस्य छायां सुखेनोपस्थिता। किं च
दुर्योधनः केसरीन्द्रः तस्य गृहिणी एव] ॥१६॥

न खलु शब्दो निषेधे। वनिता कान्ता।

मङ्गलानां पुरतः प्रतिष्ठितेषु। किं नु अवहसितं एव [illegible] अदूरतः इति।]

राजा—अयि सुन्दरि, एतावता एव मनोरथः [illegible] स्वेच्छया विहरामीति। पश्य—

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा
पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य ॥१७॥

(नेपथ्ये महान्कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति)

भानुमती—(सभयं राजानं परिष्वज्य) परित्रायतां परित्रायतामार्यपुत्रः।
[परित्ताअदु परित्ताअदु अज्जउत्ते

राजा—(समन्तादवलोक्य) प्रिये, अलं संभ्रमेण। पश्य—

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांसुदण्डोऽन्तरिक्षे
झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः।
प्रासादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर-
श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु किं संभ्रमेण ॥१८॥

सखी—महाराज प्रविशत्विमं दारुपर्वतप्रासादम्। उद्वेगकारी खल्वयं सुदुःसहपरुषरजःकलुषीकृतनयन उन्मूलिततरुवरशब्दवित्रस्तमधुरापरिभ्रष्टवनभुजङ्गमपर्याकुलीकृतजनपदः सुभीषणः समीरणासारः। [महाराओ पविसदु

प्रेमेति। एतादृशं वा तव वक्त्रेन्दुं पातुं दुर्योधनस्य किं वाञ्छा न। अपि तु वाञ्छैव। कीदृशम्। प्रेम्णाबद्धं संबद्धमत एव स्तिमितं निश्चलं यन्नयनं तेनापीयमानं यदब्जं तद्वच्छोभा यस्य तम्। लज्जासंबन्धादस्वच्छकथमल्पहासं च। नियमान्मुषितः परवासीभूतः अलक्तको यत्र। तादृशोऽग्राधरो यत्र। परमतिशयेनासुलभं दुर्लभम्। अन्यतरुणानामिति शेषः ॥१७॥

[illegible]। हे भीरु किं संभ्रमेण भयेन। एतादृशः समीरो वायुः परिदिशं

राजा - अयि सुन्दरी, मेरे तो केवल यही मनोरथ है कि मैं प्रिया के साथ नगर यथेच्छ विहार करूँ। देखो—

(मुझे) तुम्हारे कमल सदृश मुख के, जो अपने प्रेम-पूर्ण और निश्चल नेत्रों कमलों की शोभा को पी रहा है, लज्जा के कारण, जिससे अस्पष्ट वचन रस रहे हैं तथा जिस पर मन्द मुस्कान है और जिसमें अधर के अग्रभाग से के कारण यावक वर्धित हो गया है, पान करने की इच्छा है। दुर्योधन के ये अन्य कौन (वस्तु) दुर्लभ है ॥१७॥

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। सब सुनते हैं)

भानुमती— (भय से राजा का आलिङ्गन करके) आर्यपुत्र, बचाइये, इये।

राजा—(चारों ओर देखकर) प्यारी, घबराओ नहीं। देखो—

(यह) चारों ओर तीव्र वेग वाला वायु बह रहा है, जिसने विभिन्न ाओं में वृक्षों के अङ्कुरों को बखेर दिया है; आकाश में जिससे तिनकों से न धूलि-स्तम्भ उठ रहा है, जो मार्गों में झांय-झांय करने वाला तथा रियों (छर्रों) से भरा है; जो वृक्षों की शाखाओं की (परस्पर) रगड़ से से युक्त है और महलों के कुञ्जों में नूतन जलधर के गर्जन के समान भीर और घोर (ध्वनि वाला) है। (इसलिये) हे भीरु, डरने की क्या है ॥१८॥

सखी—महाराज, इस दारुपर्वत के प्रासाद के अन्दर चलिये। यह वायु तूफान बड़ा ही भीषण और उद्वेगजनक है, जिसने उठी हुई कर्कश धूलि से

दिशा वहति यतः। कीदृशः। विक्षु क्षुद्रं संवद्धमङ्घ्रिपस्य पादपस्याङ्कुरादि] येन स तथा। अन्तरिक्षे व्योम्नि तृणेन जटिलो व्यासश्चलत्पांशुदण्डो कारकधूलिर्यस्मात्स तथा। झाङ्कारः अव्यक्तशब्दस्तद्युक्तः। पथिषु शर्करालः रायुक्तः। सिध्मादित्वात् मत्वर्थीयो लच्प्रत्ययः। विटपिनां वृक्षाणां स्कन्धपर्णधूमसहितः। प्रासादानां धवलगृहाणां मध्येषु नवजलधरोद्गमगम्भीररवः प्रचण्डोपक्रमः। अङ्घ्रिश्चरणस्तेन पिबति जलादिकमित्यङ्घ्रिपः। पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् इत्यमरः। कम्पो भयः। भावे घञ् ॥१८॥

दारुपव्वअप्पासादम् । उव्वेअकारी क्खु अअं उत्थिदपहमरअकलुसीकिद
उन्मूलिअतरुवरसद्दवित्तत्थमन्दुरापरिब्भट्ठवल्लहतुरङ्गमपज्जाउलीकिदजण
भीसणो समीरणासारो ।]

राजा—(सहर्षम्) उपकारि खल्विदं वात्याचक्रं सुयोधनस्य । यतः
दयत्नपरित्यक्तनियमया देव्या संपादितोऽस्मन्मनोरथः । कथमिति—

न्यस्ता न भ्रुकुटिर्न वाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन्वारितः ।
तन्व्या मग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं
भङ्क्ताऽस्या नियमस्य भीपणमरुन्नायं वयस्यो मम ॥१९

तत्संपूर्णमनोरथस्य मे कामचारः संप्रति विहारेषु । तदितो दारुपर्वतप्रासादे
गच्छामः ।

(सर्वे वात्याबाधां रूपयन्तो यत्नतः परिक्रामन्ति)

राजा—

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनैरयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।
सुतनु बाहुलतोपरिबन्धनं मम निपीडय गाढमुरःस्थलम् ॥२०

(प्रवेशं रूपयित्वा) प्रिये, अलब्धावकाशः समीरणः संवृतत्वाद्गर्भगृहस्य । विस्रब्धं
मुन्मीलय चक्षुरस्पृष्टरेणुनिकरम् ।

अत्र दारुपर्वतः दारुरचनाभिः पर्वताकारः । 'यद्वा दारुपर्वत इति क्रीडा
पर्वतनाम । स्खलित इतस्ततो भ्रष्टः । वाजिशाला तु मन्दुरा इत्यमरः । पर्या
कुलम् । चक्रं समूहः ।

न्यस्तेति । अयं भीमसेनः वयस्यो मित्रं न । अपि तु मित्रमेव । यतो
ऽस्या नियमस्य भङ्क्ता भञ्जकः । नियमभङ्गमेवाह—भ्रुकुटिर्न न्यस्ता न कृता ।
न वा नैर्मल्येन नेत्रं रुद्धम् । अन्यत्र मुखं न कृतम् । स्पृशन्नहं न सशपथं
वारितः । यदि मां स्पृशसि शपथस्ते इति न कृतमित्यर्थः । तन्व्या
: नीयते । मग्नपयोधरं मग्नस्तनं यथा स्यात्तथा भयवशादालिङ्गित

ो व्याकुल कर दिया है और जिसने उखड़े हुये बड़े बड़े वृक्षों के शब्द से अश्वशाला से छुटे हुए उत्तम घोड़ों से मनुष्यों के यातायात को अस्त-कर दिया है।

राजा—(हर्ष के साथ) यह वायु का तूफान सुयोधन के लिये हितकर हो सकी कृपा से बिना प्रयत्न ही व्रत छोड़ देने वाली देवी ने हमारी इच्छा र दी है। क्योंकि—

स कृशाङ्गी ने न भ्रुकुटि टेढ़ी की, न आँसुओं से दोनों नेत्र ढके, न मुख ओर किया, न स्पर्श करते हुए मुझे शपथपूर्वक रोका, (बल्कि) भय के (मेरा ऐसे) आलिङ्गन किया कि (इसके) स्तन डूब (दब) गये। इसके ो भङ्ग कर देने वाला यह भीषण वायु नहीं है, प्रत्युत मेरा सखा है।।१९।।

सलिये पूर्ण मनोरथ वाला मैं अब इच्छानुसार विहार कर सकता हूँ। यहाँ से दारुपर्वत के प्रासाद में ही चलें।

(सब आँधी के कष्ट का नाट्य करते हुए कठिनता से चलते हैं)

राजा—

हे निविड जङ्घाओं वाली, धीरे-धीरे पद रक्खो, लड़खड़ाती गति को ड़ो। सुन्दरी, भुजा रूपी लता से ऊपर (कण्ठ में) बन्धन डाल कर मेरे व.स्थल को जोर से दबाओ ॥२०॥

वेश करके) प्रिय, इस गर्भ-गृह के बन्द होने के कारण (यहाँ) आँधी को स्थान हीं मिला है। (इसलिये) धूलि-समूह पोंछी गई आँखें निडर होकर खोलो।

ऽनुनयाबद्धं कृतम्। एतानि भयात्तया कृतानीति महत उपकारकलेति भाव। ा। अय भीषणमरुत्। किं तु मम वयस्य इति योजना। मैत्रं च तरिक्रयाभिव्यञ्जनेयम् ॥ १९ ॥

कामचारः स्वेच्छाचरणम् ॥

कुर्वित्ति। हे घनोरु निविडोरुप्रदेशे। परिवेपिनीं कम्पवतीम्। हे सुतनु ीमनशरीरे। ममोरःस्थल गाढं दृढं निपीडय। बाहुलतयोपरिबन्धनं यथा ादेवम् ॥ २० ॥

[संवृतत्वाद्गर्भगृहस्य] । गर्भगृहदं गर्भहर इति प्रसिद्धम्। विस्रब्धं दृग-

[illegible]—([illegible]) [illegible] न [illegible]।
[[illegible] न [illegible]।

[illegible]—महाराज, [illegible] [illegible]।
[illegible] महाराज [illegible] न [illegible]। [महाराज, [illegible]
[illegible]। [illegible] न [illegible]

राजा—(देवीमवलोक्य) अयि, [illegible]।

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महतीं नेत्रयोरायतत्वा-
दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुरः क्षिप्तहारं दुनोति।
ऊर्वोर्मन्देऽपि याते पृथुजघनभराद्वेपथुर्वर्धतेऽस्या
वात्या खेदं मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्ता करोति॥

(सर्वे उपविशन्ति)

राजा—तत्किमित्यनास्तीर्णं कठिनं शिलातलमध्यास्ते देवी।

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं
त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य।
अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य
पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुयुग्मम् ॥२२॥

(प्रविश्य पटाक्षेपेण संभ्रान्तः)

विश्वासमिति क्रियाविशेषणम् । [उन्मृष्टः अपसारितः रेणुनिकरः [illegible] तच्चक्षुः।] दिष्ट्येह तावदुत्पातमारुतो न बाधते । तत्किंनिमित्तं...न भू[illegible] [आरोहणस्य संभ्रमेण त्वरया निःसहममर्यम्।]

रेणुरिति । नेत्रयोरायतत्वाद्दैर्घ्यात्तनुरप्यल्पोऽपि रेणुर्बाधां पीडां वि[illegible] अल्पोऽप्येष कम्पः। [क्षिप्तो हारो यस्मात्तद् । उरो वक्षःस्थलं दुनोति पी[illegible] भरितमिति तारकादित्वादितच् इति साधनीयम् । अन्यथा भृतमिति स्य[illegible] वधेयम् । ऊर्वोराधारभूतयोर्वेपथुः कम्पः मन्देऽप्यल्पेऽपि याते गमने सति [illegible] इत्यन्वयः। अतो हेतोर्वायुः मृगाक्ष्याः खेदं करोति। कीदृशः। अवयवैः शरी[illegible]

भानुमती—(हर्ष के साथ) सौभाग्य से यहाँ उत्पात-वायु नहीं सता रही है।

सखी—महाराज, प्रियसखी की दोनों जङ्घाएं (ऊपर) चढ़ने की खीझ्ना रण अशक्त हो गई हैं। तो अब महाराज आसन-वेदिका (चबूतरे) को नहीं अलङ्कृत करते ?

राजा—(देवी को देखकर) भद्रे, आंधी ने तो बड़ा ही अपकार किया है। के—

अल्प भी धूलि नेत्रों के विशाल होने से अधिक पीड़ा दे रही है; थोड़ा-सा कम्पन स्थूल स्तनों के भार वाले तथा हार पड़े हुए वक्षःस्थल को पीड़ित रहा है; धीरे-धीरे चलने पर भी स्थूल जघन (कटि) के भार के कारण जङ्घाओं में कम्पन बढ़ रहा है। (इस प्रकार) अवयवों का अवलम्बन हुई वात्या मृग-नयनी को बहुत देर तक कष्ट दे रही है ॥२१॥

(सब बैठते हैं)

राजा—परन्तु महारानी नंगे ही कठोर शिलातल पर क्यों बैठ रही हैं ?

करभ (हथेली का कलाई और छोटी अंगुली के बीच का भाग) के समान ओं वाली, वायु से चञ्चल पट के छोर वाली और तुम्हारी दृष्टि को हरने मेरा यह उरु-युगल चञ्चल वस्त्र वाले और मेरे नेत्रों को प्रिय तुम्हारे -स्थल के चिरकाल तक आश्रय लेने के लिये पर्याप्त है ॥२२॥

(पर्दा हटाकर प्रवेश करके घबराया हुआ)

नाद्भिर्दत्तहस्तः कृतसाहित्य इत्यर्थः। उभाभ्यामेव पीडा देव्या इति वः ॥ २१ ॥

अनास्तीर्णं वस्त्रादिना अनाच्छादितम्।

लोलेति। हे करभोरु तव जघनस्थलस्याध्यासितुं जघनस्थलस्याश्रयणाय रुयुग्मं पर्याप्तमेव शक्तमेव। कीदृशस्य। [लोलांशुकस्य] चपलवसनस्य। [मम लोचनबान्धवस्य] मदीयनेत्रमित्रस्य। कीदृशम्। वाताकुलितांशुकान्तम्। दीयदृष्टिहरणशीलं च। जघनस्थलस्येत्यत्र शेषे षष्ठी इति सूत्रेण षष्ठी। करस्य रभो बहिः। इत्यमरः ॥२२॥

इह लोलेत्यादिमन्तमिरयन्तेन प्रगमन्धिरुक्तः। इष्टार्थयुक्तं पद्यावरं भावदर्थं-

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः) ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—(सोद्वेगमुपसृत्य) जयतु जयतु महाराजः । महाराज, एष

समीप्सितम् । वाक्यान्तरेण संतोषाच्छादोऽयमभिधीयते ॥ इति भरत:

नामेति । नाम प्राकाश्ये । किं सहितमिति प्रकाशार्थः । आर्य किमर्थं कथं

भानमिति । भीमेन मरुता वायुना अथ च भीमसेनेन । मरुता वायुं

मरुतोऽयम आत्मा वै जायते पुत्रः इत्यभेदोपचाराद्वा तडितपोताद्वा सायुं

कञ्चुकी—महाराज, तोड़ दिया, तोड़ दिया।

(सब भय से देखते हैं)

राजा—क्या हुआ ?

कञ्चुकी—भीम ने तोड़ दिया।

राजा—अरे ! क्या बक रहा है ?

कञ्चुकी—(भयपूर्वक) निश्चित ही भीम ने आपका तोड़ दिया।

राजा—धिक्कार ! बकवादी, अधम वृद्ध, आज तुझे यह क्या बुद्धि-विभ्रम हो गया है ?

कञ्चुकी—महाराज, (मुझे) कोई बुद्धि-विभ्रम नहीं हुआ है। बिल्कुल सच कह रहा हूँ—

भयङ्कर वायु से तोड़ दी गई आपके रथ की ध्वजा, घुंघुरुओं के शब्द से चीत्कार करती हुई, मानो, पृथ्वी पर गिर पड़ी है ॥२३॥

राजा—तीव्र वायु के वेग से जगत् के काँप जाने पर रथ की ध्वजा टूट गई तो क्या कारण है कि इस तरह जोर जोर से बक रहे हो—'तोड़ दिया, तोड़ दिया।'

कञ्चुकी—महाराज, कुछ भी नहीं। किन्तु इस अनिष्ट के शमन के लिये महाराज को सूचित कर देना चाहिये, यह स्वामि-भक्ति ही मुझे कहने के लिये विवश कर रही है।

भानुमती—आर्यपुत्र, प्रसन्न हुए ब्राह्मण के वेद-पाठ और दान से इस अपशकुन का निवारण करा दीजिये।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) अच्छा जाओ। पुरोहित सुमित्र से कह दो।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (बाहर चला जाता है)।

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—(घबराई हुई समीप आकर) जय हो, महाराज की जय हो।

रथकेतनम्। केतनं चिह्नम्। किङ्किणीकाणैः क्षुद्रघण्टिकारवैः [किम बाढम् जल्पसि देव] ॥२३॥

स्वामिभक्तिः मुखरयति मुखरं करोति। [अनिमित्तप्रत्यूहः]। आर्यपुत्र प्रसन्न-ब्राह्मणजनवेदघोषेण। [पुरोहितैः]। अथ [illegible]—[illegible]

जामातुः सिन्धुराजस्य माता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठति । [अज्ज
महाराओ । महाराअ, एसा क्खु जामादुणो सिन्धुराअस्स मादा दुस्स
पडिहारभूमीए चिट्ठदि ।]

राजा—(किंचिद्विचिन्त्यात्मगतम्) किं जयद्रथमाता दुःशला चेति ।
भिमन्युवधामर्षितैः पाण्डुपुत्रैर्न किंचिदत्याहितमाचेष्टितं भवेत् । (प्र
गच्छ । प्रवेशय शीघ्रम् ।

प्रतीहारी—यन्महाराज, आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) । [जं मह
आणवेदि ।]

(ततः प्रविशति संभ्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च)

(उभे सास्रं दुर्योधनस्य पादयोः पततः)

माता—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।[परित्ताअदु परित्ताअदु कुम

(दुःशला रोदिति)

राजा—(ससंभ्रममुत्थाप्य) अम्ब, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । किमत्
हितम् । अपि कुशलं समराङ्गणेष्वप्रतिरथस्य जयद्रथस्य ।

माता—जात, कुतः कुशलम् । [जाद कुदो कुसलम् ।]

राजा—कथमिव ।

माता—(साशङ्कम्) अद्य खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गाण्डीविना अनस्त
दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः । [अज्ज क्खु पुत्तवहामरिसुद्दीविदेण गण्डीवि
अणत्थमिदे दिवहणाहे तस्स वहो पडिण्णादो ।]

राजा—(सस्मितम्) इदं तदश्रुकारणमम्बाया दुःशलायाश्च । पुत्रशो
दुन्मत्तस्य किरीटिनः प्रलापैरेवमवस्था । अहो मुग्धत्वमबलानाम् । अम्ब,
विषादेन । वत्से दुःशले अलमश्रुपातेन । कुतश्चायं तस्य धनञ्जयस्य प्र
दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य महारथजयद्रथस्य विपत्तिमुत्पादयितुम् ।

माता—जात, ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितश
वीराः परिक्रामन्ति । [जाद दे हि पुत्तबन्धुवहामरिसुद्दीविदकोवाणला अ
वेक्खिदसरीरा वीरा परिक्कमन्ति ।]

... । आशीर्वादवचोयुक्त एष राजपुरोहितः ।। इति । अयं

हाराज, जामाता सिन्धुराज की माता और दुःशला द्वार-भूमि पर उपस्थित हैं।

राजा—(कुछ सोचकर, स्वगत) क्या ? जयद्रथ की माता और दुःशला ? हों अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध पाण्डु-पुत्रों ने कुछ अनर्थ तो नहीं कर दिया ? प्रकट में) जाओ, शीघ्र अन्दर ले आओ।

प्रतीहारी—जैसी महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाती है)।

(तत्पश्चात् घबराई हुई जयद्रथ की माता और दुःशला प्रवेश करती हैं)

(दोनों आँसू भरकर दुर्योधन के पैरों में पड़ती हैं)

माता—बचाइये, कुमार बचाइये।

(दुःशला रोती है)

राजा—(जल्दी से उठाकर) माता जी, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये। क्या नर्थ हुआ ? अप्रतिम वीर जयद्रथ का युद्ध-भूमि में कुशल तो है ?

माता—पुत्र, कुशल कहाँ से ?

राजा—क्यों, क्या हुआ ?

माता—(आशङ्कापूर्वक) आज पुत्र के वध से उत्पन्न क्रोध से भड़के हुए ण्डीवधारी (अर्जुन) ने सूर्य के छिपने से पहले ही उसके वध की प्रतिज्ञा है।

राजा—(मुस्करा कर) तो माता जी और दुःशला के आँसुओं का कारण है। पुत्र के शोक से पागल हुए अर्जुन के प्रलाप से यह अवस्था है। ओह ! यों में कितना भोलापन होता है ! माता जी, दुःख न कीजिये। प्रिय शला, आँसू न गिराओ। दुर्योधन की भुजा रूपी परिघ से रक्षा किये गये रथी जयद्रथ के लिये विपत्ति पैदा करने का सामर्थ्य अर्जुन में कहाँ है ?

माता—पुत्र, पुत्र और बन्धुओं के वध को न सहने से प्रज्ज्वलित क्रोधाग्नि ले वह (पाण्डव) वीर अपने शरीर की चिन्ता न करके घूम रहे हैं।

विहितं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्। इत्यग्निपुराणम्। सिन्धुराजमाता। अत्र घुराजो जयद्रथः। [प्रतीहारभूमिर्द्वारम्]। [अमर्ष एषां संजातः इति र्षिताः तैः।] अत्याहितमनर्थः। अप्रतिरथस्य अविद्यमानः प्रतिरथः यस्य। मत्तस्य जातचित्तविभ्रमस्य। मुग्धत्वं विचारवैकल्यम्। दुर्योधनस्य बाहू रघो अर्गले इव ताभ्यां रक्षितस्य]।

राजा—(सोपहासम्) [illegible]। [illegible]
पश्य—

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना　दुःशासनेनाज्ञया
पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता।
तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो
यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ॥२४॥

[illegible]—[illegible] । [[illegible]
[illegible] ।]

राजा—यद्येवमनुमानवत्यसीति ते विज्ञातेन। ननु [illegible] युधिष्ठिर इति। अन्यच्च मानः, का शक्तिरस्ति [illegible] दुर्योधन[illegible] [illegible]
मामपि ग्रहीतुं ते तनयस्य। अपि गुरुपराक्रमानभिज्ञे,

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति ।
मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन ।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ॥२५॥

अमर्षिता क्रोधशालिता।

हस्ताकृष्टेति। [मम आज्ञया दुःशासनेन हस्तेन आकृष्टमत एव विले केशाश्च वसनं च केशवसनं यस्याः सा हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना पाञ्चा राजचक्रपुरतः गौः गौः इति व्याहृता।] व्याहृतेति णिजर्थम्। तेन व्याहृ तेत्यर्थः। राजवधूनां गौर्गौरित्यभिधानमतिहानिकरमिति समाचारः। तस्मिन्न तता विस्तृता ज्या पतञ्चिका यत्र तादृश गाण्डिवं धनुर्यस्य सः। गाण्डीवम् गाण्डिवम् इति शब्दभेदः। पृथानन्दनोऽर्जुनः। [नासीत्किम्। अपि त्वासीदेव [illegible] तत्रापि यूनो यौवनशालिनः। न तु वार्धक्याद् गलितोत्साह [illegible] कृतिनः कृतहस्तस्य युद्धकलाप्रवीणस्येत्यर्थः।] आस

भानुमती—आर्यपुत्र, यद्यप्येवं तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञाभरो खलु शङ्कायाः । [अज्जउत्त जइवि एव्वं तहवि गुरुकिदपडिण्णाभरा स्र... ट्ठाण खु संकाए ।]

माता—जाते, साधु कालोचितं त्वया मन्त्रितम् । [जादे साहु कालो... मन्तिदं ।]

राजा—आः, ममापि नाम दुर्योधनस्य शङ्कास्थानं पाण्डवाः ।

कोदण्डज्याकिणाङ्कैरगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः
श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः ।
रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलाना-
माक्रान्ता भ्रातृभिर्मे दिशि दिशि समरे कोटयः संपतन्ति ॥...

अपि च भानुमति विज्ञातपाण्डवप्रभावे, किं त्वमप्येवमाशङ्कसे । पश्य—

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने
दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।
तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां
ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥२७॥

कः कोऽत्र भोः । जैत्रं मे रथमुपकल्पय तावत् । यावदहमपि तस्य प्रगल्भपा... जयद्रथपरिरक्षणेनैव मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसंपादितमशस्त्रपूतं मरणमुपदिशामि

कोदण्डेति । कोदण्डो धनुः । [तस्य ज्यायाः किणो घर्षणजन्य चिह्नं... अङ्को येषां तैः । अगणिता अविचिन्तिता रिपवः यैः । कङ्कटेन संनाहेन उ... त्यागिशो देहो येषां तैः ।] तथा चात्मगौरवात्संनाहमकुर्वद्भिरि... [कङ्कटामुक्तदेहैरिति पाठे कङ्कटा आमुक्ताः पिनद्धा येषु तथा देहा येषां... श्लिष्टमन्योन्यस्य] आतपत्रं छत्रं । तैः करणभूतैः श्वेतकमलवनभ्रमं कुर्व... [पि भ्रातृभिः आक्रान्ताः । रेणुना ग्रस्ताऽर्कस्य भा यैः तेषाम् । प्रचलन्त... आनन्दनाम्नाभिः] दन्तुराणां निम्नोन्नतानां बलानां कोटयः संख्याभेदा, ... । संपतन्ति गच्छन्ति । कोटिरग्रे प्रकर्षे च संख्यायामर्धदेशयोः इति ...

भानुमती—आर्यपुत्र, यद्यपि यह ठीक है। फिर भी की गई प्रतिज्ञा के
री भार वाला अर्जुन शङ्का का कारण हो सकता है।

माता—पुत्री, तूने ठीक समयोचित बात कही है।

राजा—ओह! क्या मुझे दुर्योधन के लिये भी पाण्डव भय का कारण ह
ते हैं? देखो—

धनुष की डोरी के घाव के चिह्न वाले, शत्रुओं की चिन्ता न करने वाले
सलिये) शरीर पर से कवच खोल देने वाले और परस्पर सटे हुए छत्रों से
त कमलों के वन की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले मेरे भाइयो से अधिष्ठित,
ाओं की कोटि-कोटि संख्यायें, जिन्होने धूलि से सूर्य की कान्ति ग्रस ली है
र जो घुमाई गई तलवार रूपी लताओ से विकराल हैं, दिशा विदिशा मे युद्ध-
म में मिलकर जा रही हैं ॥२६॥

और, पाण्डवों के प्रभाव को जानने वाली भानुमती, तू भी ऐसी आशङ्का
 कर रही है? देख—

दुःशासन के हृदय से रुधिर रूपी जल के पीने और गदा से दुर्योधन की
ङ्घा को तोड़ डालने के विषय में तेजस्वी पाण्डवों की जैसी प्रतिज्ञा थी, वैसी
युद्ध-भूमि मे जयद्रथ के वध के विषय में भी समझनी चाहिये ॥२७॥

अरे, यहाँ कोई है? मेरे जय-शील रथ को तैयार करो। तो अब मैं भी
ल जयद्रथ की रक्षामात्र से उस धृष्ट पाण्डव को झूठी प्रतिज्ञा से उत्पन्न
ा से किये गये और शस्त्र से पवित्र न किये गए मरण का उपदेश देता हूँ।

च्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्। इत्यमरः॥ २६॥

दुःशासनेति। यथा दुःशासनस्य हृदयरक्तमेवाम्बु जलं तस्य पाने। गदा च
धनस्य ऊरुभङ्गो ऊर्वोः भङ्गविषये। तथा समरमूर्धनि रणशिरसि जयद्रथ-
वे तेजस्विनां पराक्रमिणां पाण्डवानां प्रतिज्ञा ज्ञेया।] रक्तक्षतजशोणितम्
मरः॥ २७॥

[जैत्रमिति जेतृशब्दात् प्रज्ञादित्वादण्। उपकल्पय सज्जं कृत्वा
य। प्रगल्भस्य धृष्टस्य पाण्डवस्यार्जुनस्य। मिथ्याप्रतिज्ञा तया यद् वैलक्ष्यं
ा तेन संपादितं विहितम्। शस्त्रेण शस्त्रव्यापारेण पूतं शस्त्रपूतम्। युद्ध

(नेपथ्ये)

कञ्चुकी—देव,

उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः

प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः ।

सज्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः

शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते ॥२८॥

राजा—देवि, प्रविश त्वमभ्यन्तरमेव । (यावदहनि तस्य प्रत्यर्

इत्यादि पठन् परिक्रामति) ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

शस्त्रप्रहारेण मृतस्य वीरस्य स्वर्गप्राप्तिहेतुत्वात्तन्मरणस्य पूतत्वम् । त
भवतीति अशस्त्रपूतम् ।] जैत्रं जयशालिनम् । अशस्त्रपूतमशस्त्रहतम् ॥

उद्घातेति । उद्घात आघातः तेन क्वणिताः शब्दिता विलोलाः प्र
हेमघण्टा यस्य ।] यद्वा स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः इत्यमरः । तेनो
उपक्रम इत्यर्थः । प्रालम्बो लम्बितो हारः । [तेन द्विगुणितः चामरस्य प्र
धवलिमा यत्र । प्रालम्बं द्विगुणितं द्विपार्श्वे द्विधाबद्धं यच्चामरं तस्य प्र
यत्र इति केचित् ।] प्रहासः प्रकाशः । [नियमिता अतएव वल्गितेनाकुला अ
। नियमितं वल्गितं येषां तथाभूता अतएव आकुला अश्वा यस्येति
इति पाठे नियमितं वल्गु चारु वल्गितं येषां तथा

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज,

प्रतिघात से बजती हुई चञ्चल सुवर्ण की घण्टियों वाला, लटकती मालाओं
[से यु]क्त किये गये चामर के हास (चपलता) वाला, गति के नियन्त्रित होने से
[व्याकु]ल घोड़ों वाला और शत्रुओं के मनोरथों को नष्ट कर देने वाला आपका
[र]थ तैयार है ॥२८॥

राजा—देवी, तुम भी अन्दर जाओ। ('तो अब मैं उस धृष्ट पाण्डव …'
[ऐसा] कहता हुआ घूमता है)।

(सब निकल जाते हैं)

※ द्वितीय अङ्क समाप्त ※

…श्चा यस्य।] नियमितो वेल्लितेन गतिविशेषेणाकुलितोऽश्वो यत्र स तथा। शत्रूणां क्षपिता नाशिता मनोरथा येन स तथोक्तः। अत्र शत्रूणामिति षष्ठ्या [मन]ोरथेन सम्बन्धः। सापेक्षत्वात्समासः। तदुक्तम्—सम्बन्धिशब्दः सापेक्षो [नि]त्यं सर्वः समस्यते। वाक्यवत्सा व्यपेक्षापि वृत्तावपि न हीयते॥ इति।] ॥२८॥

अत्राङ्के, नायिकाचेट्योर्भाषा शौरसेनी। तदुक्तं तत्रैव—नायिकायां च [चे]ट्यां च तथा चैव विदूषके। शौरसेनीं समाश्रित्य भाषा योज्या तु नाटके। इति। एवमन्यत्रापि॥

असूत यं रत्नधरो गुणीशो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतौ गतोऽयमङ्को द्वितीयो वरटिप्पनेऽत्र॥

● द्वितीयोऽङ्कः ●

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विकृतवेषा राक्षसी)

राक्षसी—(विकृतं विहस्य । सपरितोषम्)

हतमानुषमांसभारके कुम्भसहस्रवसाभिः संचिते ।
अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भवतु ।

(नृत्यन्ती सपरितोषम्) यदि सिन्धुराजवधदिवस इव ... प्रतिपद्यतेऽर्जुनतया पर्याप्तभृतकोष्ठागारं मांसशोणितैर्मे गृहं भविष्यति । (दिशोऽवलोक्य) अथ क नु खलु रुधिरप्रियो भविष्यति । प्रियभर्तारं रुधिरप्रियमन्वेषयामि । (परिक्रम्य) भवतु । शब्दापयि... अरे रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय, इत एहि, इत एहि ।

[हदमाणुसमंसभालए कुम्भसहस्सवसाहिं संचिए ।
अणिसं अ पिवामि शोणिअं वलिससदं शमले हुवीअदु ॥
जइ सिन्धुलाअवहदिअहे विअ दिअहे-दिअहे शमलकम्म पडिवज्जे... तदो पज्जत्तभलिदकोट्ठागाले मशशोणिएहिं मे गेहे हुवीअदि । अह क... लुहिलप्पिए हुवीअदि । ता जाव इमरश शमले पिअभत्तालं लुहिलप्पि... शामि । होदु । गद्दाइश्शं दाव । अले लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिया इदो एहि ।]

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षसः—(श्रमं नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत ।
तदेष मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत् ॥२॥

[पच्चग्गहदाणं मंशए जइ उण्हे लुहिले अ लब्भइ ।
ता एशे मह पलिस्शमे क्खणमेत्तं एव्व लहु णस्सइ ॥२॥]

(राक्षसी पुनर्व्याहरति)

[विकृतः बीभत्सः वेषो यस्याः । विकृतं विकटम्] ।

तृतीय अङ्क

(तत्पश्चात् वीभत्स वेष वाली राक्षसी प्रवेश करती है)

राक्षसी—(भयङ्कर हँसी हँसकर सन्तोष के साथ)
मरे हुए मनुष्यों की मांस-राशि के हजारों घड़े चर्बी सहित सञ्चित कर
र में दिन-रात रुधिर पी रही हूँ। यह युद्ध सौ वर्ष तक चलता रहे ॥१॥
(नाचती हुई सन्तोष के साथ) यदि सिन्धु देश के राजा (जयद्रथ) के वध
न के समान प्रतिदिन अर्जुन युद्ध-पराक्रम करता रहे, तो मेरा घर मांस
रुधिर से पूरे भरे हुए कोठे वाला हो जायेगा। (घूमकर और चारों ओर
र) न जाने रुधिरप्रिय कहाँ है? तो इस युद्ध-क्षेत्र में अपने प्रिय पति
प्रिय का पता लगाऊँ। (घूमकर) अच्छा, पुकारती हूँ। ओ, रुधिरप्रिय,
प्रिय, इधर आ, इधर आ।

(तब उसी प्रकार का राक्षस प्रवेश करता है)

राक्षस—(थकान का नाट्य करता हुआ)
यदि ताजे मरे हुए लोगों का मांस और गर्म रुधिर मिल जाये तो मेरी
थकान क्षण-भर में ही तुरन्त मिट जाय ॥२॥

(राक्षसी फिर पुकारती है)

[हतेति। हतानां मानुषाणां मांसस्य भार एव भारकः तस्मिन्। कुम्भानां
तेन परिच्छिन्नाभिः वसाभिः सह संचिते सति अनिशमहोरात्रं शोणितं
पिबामि। समरो युद्धं वर्षशतं शतवर्षपर्यन्तं भवतु ॥१॥]
समरकर्मातिप्रवर्तयत्यर्जुनस्तदा पर्यन्तं भृतकोष्ठागारं मम मांसशोणितैर्गृहं
पति। भवतु। वादयिष्ये। अरे रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय एहि तावत्।
[यदि प्रत्यग्रं सद्यः हतानां मांसम् उष्णं कोष्णं रुधिरं च लभ्येत, तत्तदा
म परिश्रमः खेदः क्षणमात्रमेव लघु द्राक् नश्येत् क्षयमियात् ॥२॥]
गारं कोठाखण्डम्। अरे को मां वादयते। कथं प्रिया मे वसागन्धा।

राक्षसः—(आकर्ण्य) अरे कैंषा मां शब्दायते । (विलोक्य)
वसागन्धा । (उपसृत्य) वसागन्धे, कस्मान्मां शब्दायसे । [
सद्दावेदि । अहं पिआ मे वसागन्धा । वसागन्धे कीस मं सद्दावेसि

रुधिरासवपानमत्तिके रणहिण्डनसञ्चलद्गात्रिके ।
शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते ॥

[रुहिरासवपाणमत्तिए रणहिण्डणसञ्चलन्तगत्तिए ।
सद्दाअसि कीस म पिए पुलिसशहस्सं हदं सुणीअदि ॥

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, इदं खलु मया तव कारणात्प्रत्यग्रह
राजर्षेः प्रभूतवसास्नेहचिक्कणं कोष्णं नवरुधिरमग्रमांसं चानीतम् ।
[अले लुहिलप्पिआ एदं क्खु मए तुह कालणादो पच्चग्गहदस्स क
सिणो पहूदवसासिणेहचिक्कणं कोण्हं णवलुहिलं अग्गमसं अ आ
पिवाहि णम् ।]

राक्षसः—(सपरितोषम्) साधु, वसागन्धे, साधु । शोभनं त
बलवदस्मि पिपासितः । तदुपनय । [शाहु वशागन्धे शाहु । शोहणं तु
बलिअह्मि पिवाशिए । ता उवणेहि ।]

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, ईदृशे हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसात
समराङ्गणे परिभ्रमंस्त्वं पिपासितोऽसीत्याश्चर्यमाश्चर्यम् । [अले लु
एदिशे हदणलगअतुलङ्गमशोणिअवशाशमुद्दुश्शंचले शमलङ्गणे पडि
पिवाशिएशि त्ति अच्चलिअं अच्चलिअम् ।]

राक्षसः—अयि सुस्थिते, ननु पुत्रशोकसंतप्तहृदयां स्वामिनीं हि
प्रेक्षितुं गतोऽस्मि । [अइ शुस्थिदे, ण पुत्तशोअशन्तत्तहिअअं शामिणीं
देवीं पेक्खिदुं गदह्मि ।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्
नोपशाम्यति । [लुहिलप्पिआ अज्जवि शामिणीए हिडिम्बादेवीए घडुक्क
उपशमइ ।]

शब्दैनामुपसर्पामि । वसागन्धे किंनिमित्तं ...

राक्षस— (सुनकर) अरे ! यह कौन मुझे पुकार रही है ? (देखकर) मेरी प्यारी वसागन्धा ! (समीप जाकर) वसागन्धा, मुझे क्यों पुकार ी ?

धिर रूपी आसव के पीने से मत्त हुई, युद्ध-क्षेत्र में भ्रमण से शिथिल-वाली, हे प्यारी, तू मुझे क्यों पुकार रही है ? हजारों पुरुष मरे हुए सुने ॥३॥

क्षसी—अरे रुधिरप्रिय, मैं यह तेरे लिये ताजे मरे हुए किसी राजर्षि यधिक चर्बी की चिकनाई से चिकना, कुछ गर्म ताजा रुधिर और हृदय मांस (कलेजी) लाई हूँ । इसे पी ले ।

राक्षस—(सन्तोष के साथ) शाबास ! वसागन्धा, शाबास ! तूने बड़ा छा किया । मैं बहुत ही प्यासा हूँ । तो मेरे पास लाओ ।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, बड़ा आश्चर्य है कि तुम ऐसी युद्ध-भूमि में, जो गये पुरुषों, हाथियों और घोड़ों के रुधिर और चर्बी के समुद्र से दुर्गम है, ते हुए भी प्यासे हो !

राक्षस – अरी, निश्चिन्त बैठी हुई, मैं पुत्र-शोक से व्याकुल हृदय वाली मिनी हिडिम्बा देवी को देखने गया था ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, तो अभी स्वामिनी हिडिम्बा देवी का घटोत्कच की से उत्पन्न शोक शान्त नहीं हुआ ?

रुधिरासवपानमत्ते रणभ्रमणस्खलद्गात्रि । वादयसे किमिति सुन्दरि मां शतं हतमिति श्रूयते ॥३॥

प्रभूतवसाशोणितं मस्तिष्कचिक्कणमग्रमांसं चानीतम् । तत्स्वादय । पिब ुतासवम् । अत्र प्रत्यग्रं नवम् । प्रभूतमुपचितम् । मस्तिष्कं गोदीति दम् । अग्रं प्रथमभागमुत्तमं वा । [बलवत् अत्यन्तं] पिपासितः [पिपासा संजाता स तथा । अत्र सुष्ठु मनोहरम् । बलितोऽतिशयितः । ननु पुत्र-शक्तां देवीमन्वेष्टुं गतोऽस्मि । हे सुस्थिते । ननु भणामि । अरे रुधिरप्रिय मद्यान्यस्याः स्वामिन्या हिडिम्बादेव्याः पुत्रस्य घटोत्कचस्य शोको हृदया-ाम्यति ।

[illegible]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, [illegible]
[रुहिरप्पिअ, [illegible]

राक्षसः—वसागन्धे, [illegible]
[illegible]

राक्षसी—(सहर्षम्) साधु, रुधिरप्रिय, साधु । सुपरितोषितो मे [illegible]
हतः । [साहु रुहिरप्पिअ साहु । सुपरितोसिदो मे [illegible] किदे ।]

(नेपथ्ये महान्कलकलः उभावाकर्णयतः)

राक्षसी—(आकर्ण्य ससंभ्रमम्) अरे रुधिरप्रिय, किं नु खल्वेष महान्
श्रूयते । [अरे रुहिरप्पिआ, किं णु क्खु एसो महन्ते कलअले सुणीअदि ।]

राक्षसः—(दृष्ट्वा) वसागन्धे, एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्य
व्यापाद्यते । [वसागन्धे, एसो क्खु धिट्ठज्जुण्णेण दोणो केसेसु आकड्ढिअ
वत्तेण वावादीअदि ।]

राक्षसी—(सहर्षम्) रुधिरप्रिय, एहि । गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबाव
[रुहिरप्पिआ, एहि । गच्छिअ दोणस्स रुहिरं पिबम्ह

राक्षसः—(सभयम्) वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितमेतत् । गलं दहद्
दहति । तत्किमेतेन । [वसागन्धे, बह्मणसोणिअं क्खु एदं । गलअं दहन्तं
पविशदि । ता किं एदिणा ।]

(नेपथ्ये पुनः कलकलः)

पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते ।
[सुहिरप्पिआ पुणोवि एसे महन्ते कलअले सुणीअदि ।]

..—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) वसागन्धे, एष खलु अश्वत्थामा आ

राक्षसी—रुधिरप्रिय, कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे किस कारण घूमते हो?

राक्षस—वसागन्धा, स्वामी वृकोदर (भीमसेन) ने दुःशासन का रुधिर
की प्रतिज्ञा कर रखी है। वह (कुमार भीमसेन के शरीर मे) प्रविष्ट
हम राक्षसों को ही पीना होगा।

राक्षसी—(हर्ष के साथ) धन्य हो, स्वामिनी, धन्य हो। आपने मेरे पति
के अच्छी व्यवस्था कर दी है।

(नेपथ्य मे तीव्र कलकल ध्वनि होती है। दोनों सुनते हैं)

राक्षसी—(सुनकर घबराहट के साथ) अरे रुधिरप्रिय, यह कैसा तीव्र
र शब्द सुनाई दे रहा है?

राक्षस—(देखकर) वसागन्धा, यह द्रोण धृष्टद्युम्न द्वारा केश खींच कर
ः से मारा जा रहा है।

राक्षसी—(हर्ष मे) रुधिरप्रिय, आओ। चलकर द्रोण का रुधिर पीयेंगे।

राक्षस—(भय से) वसागन्धा, यह ब्राह्मण का रुधिर है। गले को जलाता
न्दर जाता है। इसलिये इससे क्या (लाभ)?

(नेपथ्य मे फिर कलकल ध्वनि होती है)

राक्षसी—रुधिरप्रिय, यह पुन तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) वसागन्धा, यह अश्वत्थामा तलवार

तनकेन। एतत्कालीनैरैश्वर्यैः। अरे रुधिरप्रिय कीदृश स्वामिन्या हिडिम्बा-
ा सविभागः कृतः। पुत्र रुधिरप्रिय अद्यप्रभृति त्वया नाथभीमसेनस्य
ात्समर आहिण्डितव्यमिति। ततस्तस्य मार्गानुगामिनो हतमानुषशोणितनदी-
तेन प्रणष्टा मे बुभुक्षा पिपासा च। त्वमपि विश्वस्ता भूत्वा रुधिर वसा
 च संचेष्यसीतीहैव सुरलोको भविष्यतीति अत्र। बुभुक्षा भोक्तुमिच्छा।
स्ता विश्वासवती। सुसंविभागो मम भर्ता कृत। अरे रुधिरप्रिय रुधिर-
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। कुतः खल्वेष महान्कलकल श्रूयते। वदल मर्मतेन। अरे
रप्रिय रुधिरप्रिय उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते। वसागन्धे
त्वश्वत्थामाकृष्टासिपत्र इतः समरभूमिमवतरति। कदाचिद् द्रुपदसुतरोषेणा-
राक्षसान्प्रेक्ष्य व्यापादयिष्यति। तदेहि। पलायावहे। अत्रासिपत्रः खड्ग.।

हिडिम्बादेवीए सायहुमाणं सद्दाविअ आणत्तो अहं सुहिलप्पिआ
अज्जउत्तस्स भीमसेणस्स पिट्ठदोणुपिट्ठ समरे आहिण्डिदव्वं ति।
अनुमग्गगामिणो हअमाणुससोणिअणईदंसणप्पणट्ठबुभुक्खापिवासस्स
मे णग्गलोओ हुवीअदि । तुमं वि वीसद्धा भविअ सुहिलदसाहिं
संचेहि ।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, किंनिमित्तं कुमारभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठम्
[सुहिलप्पिआ, किंणिमित्त कुमालभीमसेणस्स पिट्ठदोणुपिट्ठं आहिण्डी

राक्षसः—वसागन्धे, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य
प्रतिज्ञातम् । तदास्माभी राक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यमिति । [वशागन्धे,
शामिणा विओदलेण दुस्साशणस्स लुहिलं पादुं पडिण्णादम् । तं च
लक्कशेहिं अणुप्पविशिअ पादव्वंत्ति ।]

राक्षसी—(सहर्षम्) साधु, स्वामिनि, साधु । सुसंविधानो मे
कृतः । [शाहु शामिणीए शाहु । सुसंविहाणे मे भत्ता तुए किदे ।]

(नेपथ्ये महान्कलकलः उभावाकर्णयतः)

राक्षसी—(आकर्ण्य ससंभ्रमम्) अरे रुधिरप्रिय, किं नु खल्वेष महान्
श्रूयते । [अले लुहिलप्पिआ, किं णु क्खु एशे महन्ते कलअले सुणीअदि।]

राक्षसः—(दृष्ट्वा) वसागन्धे, एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्य
व्यापाद्यते । [वशागन्धे, एशे क्खु धिट्ठज्जुण्णेण दोणे केशेसु आकड्ढि
वत्तेण वावादीअदि ।]

राक्षसी—(सहर्षम्) रुधिरप्रिय, एहि । गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबा
[लुहिलप्पिआ, एहि । गच्छिअ दोणस्स लुहिलं पि

राक्षसः—(सभयम्) वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद् । गलं दह
इति । तत्किमेतेन । [वशागन्धे, बह्मणशोणिअं क्खु एदं । गलअं दहन्दे
पविशदि । ता किं एदिणा ।]

(नेपथ्ये पुनः कलकलः)

राक्षसी—रुधिरप्रिय, पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते ।
[लुहिलप्पिआ पुणोवि एशे महन्ते कलअले शुणीअदि ।]

—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) वसागन्धे, एष अश्वत्थामा

राक्षसी—रुधिरप्रिय, कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे किस कारण घूमते हो?

राक्षस—वसागन्धा, स्वामी वृकोदर (भीमसेन) ने दुःशासन का रुधिर ने की प्रतिज्ञा कर रखी है। वह (कुमार भीमसेन के शरीर में) प्रविष्ट कर हम राक्षसों को ही पीना होगा।

राक्षसी—(हर्ष के साथ) धन्य हो, स्वामिनी, धन्य हो। आपने मेरे पति लिये अच्छी व्यवस्था कर दी है।

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। दोनो सुनते हैं)

राक्षसी—(सुनकर घबराहट के साथ) अरे रुधिरप्रिय, यह कैसा तीव्र कल शब्द सुनाई दे रहा है ?

राक्षस—(देखकर) वसागन्धा, यह द्रोण धृष्टद्युम्न द्वारा केश खींच कर वार से मारा जा रहा है।

राक्षसी—(हर्ष से) रुधिरप्रिय, आओ। चलकर द्रोण का रुधिर पीयेंगे।

राक्षस—(भय से) वसागन्धा, यह ब्राह्मण का रुधिर है। गले को जलाता अन्दर जाता है। इसलिये इससे क्या (लाभ) ?

(नेपथ्य में फिर कलकल ध्वनि होती है)

राक्षसी—रुधिरप्रिय, यह पुनः तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) वसागन्धा, यह अश्वत्थामा तलवार

नकेन। एतत्कालीनेनेत्यर्थः। अरे रुधिरप्रिय कीदृशः स्वामिन्या हिडिम्बा-देव्या संविभागः कृतः। पुत्र रुधिरप्रिय अद्यप्रभृति त्वया नाथभीमसेनस्य समरसमरं आहिण्डितव्यमिति। ततस्तस्य मार्गानुगामिनो हतमानुषशोणितनदी-दर्शनेन प्रणष्टा मे बुभुक्षा पिपासा च। त्वमपि विश्वस्ता भूत्वा रुधिरं वसां मांसं च सेवेव्यसीतीहैव पुरलोको भविष्यतीति अत्र। बुभुक्षा भोक्तुमिच्छा। विश्वस्ता विश्वासवती। शुभविभागो मम भर्ता कृतः। अरे रुधिरप्रिय रुधिर-प्रिय उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। कुतः खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते। सकलं समर्तेन। अरे रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते। वसागन्धे एष शस्त्रभरत्थामाकृष्टासिपत्र इतः समरभूमिमवतरति। कदाचिद् द्रुपदसुतरोषेणा-स्मान् राक्षसानप्येष व्यापादयिष्यति। तदेहि। पलायावहे। अत्रासितयः सहृगः।

[illegible] ।]

[illegible]

अनुरूप है, शत्रुओं के भञ्जक पिता ने निश्चित रूप से (आज) वही कर्म प्रारम्भ कर दिया है ॥५॥

(पीछे की ओर देखकर) यहाँ कौन है ? रथ लाओ । अथवा अब मुझे यह रथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये । जल से भरे मेघ की कान्ति के समान चमकने वाले और अच्छी प्रकार पकड़ने योग्य तथा निर्मल सुवर्ण निर्मित मूठ वाले इस खड्ग से शस्त्र-सज्जित हूँ ही । तब युद्ध-क्षेत्र में उतरता हूँ । (घूमकर और बायें नेत्र के फड़कन को सूचित करके) ओह ! मुझ अश्वत्थामा के लिये भी, जिसे युद्ध-रूपी महोत्सव का अत्यधिक हर्ष है और जिसे पिता के पराक्रम को देखने की तीव्र अभिलाषा है, ये अपशकुन युद्ध में जाने में विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं । अच्छा, जाता हूँ । (अकड़ के साथ घूमकर और देखकर) आश्चर्य की उपेक्षा करने वाली, सज्जनोचित लज्जा के आवरण को त्याग देने वाली, स्वामी द्वारा किये गए सत्कार को भुला देने के कारण क्षुद्र चित्त वाली, कुल एवं ख्याति के अनुरूप पराक्रम-व्रत की चिन्ता न करने वाली, युद्ध-क्षेत्र से चारो ओर भाग खड़ी होने वाली और हाथी, घोड़ों तथा पदातियों की सेनाओं का यह महान् कोलाहल क्यों है ? (देखकर) ओह ! धिक्कार है ! ये कर्ण आदि महारथी भी युद्ध से क्यों भाग रहे हैं ? पिता से संचालित होने पर भी सेनाओं की यह दशा कैसे हो सकती है ? अच्छा, मैं (इन्हें) रोकता हूँ । हे कौरव-सेना रूपी समुद्र के तट की रक्षा के कार्य में विशाल पर्वतों के समान, राजा लोगों, युद्ध से पलायन के इस दुष्कृत्य से बस करो ।

द्विरदैः तुरंगमैश्चरणैश्च चरन्तीति तच्छीलानाम् । चारीति ताच्छीलिको णिनिः । [अगणितं कुलस्य यशः तस्य सदृशं पराक्रम एव व्रतं यैः तेषाम् ।] अपक्रामतां पलायमानानाम् । अपक्रमोऽपयानं स्यात् इत्यमरः । हा हा शोकेऽपि निन्दायाम् इति । [कौरवसेना एव समुद्रस्तस्य वेला मर्यादास्थितस्तस्याः परिपालने महामहीधराः ।] वेला तत्तीरनीरयोः इत्यमरः । महीधरो गिरिः । कृतं निष्फलम् । कृतं नीरं तु निष्फले इति विश्वः । [कृतमलं मा कुरुतेत्यर्थः ।]

अश्वत्थामा—(विचिन्त्य) अये कथं तातस्य [illegible]। जामदग्न्यास्त्रसर्वस्व [illegible]। किं मतः [illegible]।

सूतः—(सास्रं सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तातः।

अश्वत्थामा—(सावेगम्) किं तात एव नास्ति।

सूतः—अथ किम्।

अश्वत्थामा—हा तात। (इति मोहमुपगतः)।

सूतः—कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

अश्वत्थामा—(लब्धसंज्ञः सास्रम्) हा तात, हा पुत्रवत्सल, हा लोक[त्रयैक]धनुर्धर, हा जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन्, क्वासि। प्रयच्छ मे प्रति[वचनम्]

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन। वीरपुरुषोचितां विपत्ति[मुपगते] पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव।

अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमृज्य) आर्य, कथय कथय कथं तादृगु[ण]सागरस्तातोऽपि नामास्तमुपगतः।

किं भीमाद्गुरुदक्षिणां गुरुगदाद्भीमप्रियः प्राप्तवान्

सूतः—शान्तं पापम्। शान्तं पापम्।

अश्वत्थामा—

अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना।

सूतः—कथमेवं भविष्यति।

अश्वत्थामा—

गोविन्देन सुदर्शनस्य नियतं धारापथं प्रापितः

[जमदग्नेरपत्यं पुमान् जामदग्न्यः परशुरामस्तस्यास्त्राण्येव सर्वस्वं तस्य प्रतिग्रहे स्वीकारे प्रणयो विद्यते अस्य तत्संबुद्धिः। विपत्ति मरणम्। तत्[illegible] रूपेण सदृशेन।] प्रतिग्रहो ग्रहणम्।

ह भीमादिति। शिष्याद्भीमात्। गुरुगदामेव गुरुदक्षिणाम्। [गुरुगदादिति भीषणा महती वा गदा यस्य तस्मात्।] भीमः प्रियो मित्रं यस्य [illegible] — शिष्यः। तद्विषये दयालुर्दयायुक्तः। [उज्झितस्त्यक्तः नयो[illegible]

: अश्वत्थामा—(देखकर) अरे ! कैसे ? पिता का सारथि अश्वसेन ? आर्य,
ीं लोकों की रक्षा करने में समर्थ (मेरे पिता) के सारथि हो। क्या मुझसे
। चाहते हो ?

सूत—(उठकर करुणापूर्वक) अब तुम्हारे पिता कहाँ ?

अश्वत्थामा—(आवेग के साथ) क्या पिता ही नहीं रहे ?

सूत—और क्या ?

अश्वत्थामा—हाय ! तात ! (यह कहकर मूर्छित हो जाता है)।

सूत—कुमार, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

अश्वत्थामा— (चेतना प्राप्त करके आंसू भरकर) हाय तात ! हाय पुत्र-
सल ! हाय तीनों लोकों में अद्वितीय धनुर्धर ! हाय परशुराम के अस्त्र-रूपी
के लेने में प्रेम रखने वाले ! तुम कहां हो ? मुझे प्रत्युत्तर दीजिये।

सूत—कुमार, अत्यन्त शोक के आवेग से बस करो। पिता के वीर पुरुष
ोग्य मृत्यु पाने पर तुम भी उनके अनुरूप ही पराक्रम से शोक-सागर को
कर सुखी होओ।

अश्वत्थामा—(आंसू बहाकर) आर्य, बतलाओ, बतलाओ—वैसे (अधिक)
-बल का सागर, पिता भी कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गया ?

क्या भीम से प्रेम करने वाले (पिता) ने भारी गदा वाले भीम से गुरु-
णा पा ली है ?

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो।

अश्वत्थामा—

(तो) उचित आचार का परित्याग करके जिष्णु (अर्जुन) ने शिष्य पर
ु (पिता) को अभिभूत कर दिया है ?

सूत—ऐसा कैसे होगा ?

अश्वत्थामा—

(तो) निश्चय ही गोविन्द (कृष्ण) ने सुदर्शन की धारा के पथ को प्राप्त
दिया ?

मार्गो गुरौ भक्तिरेवोचिता न तु नृशंसत्वमित्येतद्रूपः येन।] जिष्णुना

सूतः—एतदपि नास्ति।

शङ्के नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥

सूतः—कुमार,

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये ।
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं
त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणाऽतिघोरम् ॥१०॥

अश्वत्थामा—किं पुनः कारणं शोकस्याऽस्त्रपरित्यागस्य वा ।

सूतः—ननु कुमार एव कारणम् ।

अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ।

सूतः—श्रूयताम् । (अश्रूणि विमुच्य) ।

अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा
स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।
तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः
शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ॥११॥

अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रवत्सल, हा वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित, हा शौर्यराशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् । (इति रोदिति)

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन ।

अर्जुनेन । आमाश्रिनः मारिन इत्यर्थः । नियतं निश्चितम् । गुरुशंसो हरिवक्ष । पक्ष गुरुशंसः इत्यर्थः । अन्यतोऽन्यस्मात् । खलु निश्चये ॥९॥

एतेऽपीति । एते भीमार्जुनप्रभृतयः । संख्ये संग्रामे धूर्जटेर्हरस्य [इव कुपितस्य तुलामुपयान्ति किम् । नैवेत्यर्थः] इत्यनेनाचार्यविशेषणं । [यदा शोकोपरुद्धं व्याप्तमिति यावत् हृदयं यस्य तेन आचार्येण शस्त्रं त्यक्तं तदा पुनरस्य अतिघोरं विहितम् ।] अस्याचार्यस्य । अतिघोरं विनाशः । अतं ... शस्त्रं अधृष्टादि । ... विशेषः । अमु क्षेपणे । मुचु हिंसायाम् । ... ॥१०॥

सूत—यह भी नहीं है।

अश्वत्थामा—

इनसे अतिरिक्त किसी चौथे से मैं पिता की विपत्ति की आशङ्का नहीं
रता ॥९॥

सूत—कुमार,

क्या ये सब लोग भी, शिव के समान हाथ में महान् अस्त्र धारण करने
ले, कुपित हुए उसका युद्ध में सामना कर सकते हैं ? लेकिन जब शोक से
आक्रान्त हृदय वाले (आपके पिता) ने शस्त्र त्याग दिया, तब शत्रु ने इसके
नि अतिदारुण कर्म किया ॥१०॥

अश्वत्थामा—लेकिन शोक अथवा शस्त्र-त्याग का क्या कारण था ?

सूत—बस, कुमार ही कारण थे।

अश्वत्थामा—मैं ही कैसे ?

सूत—सुनिये। (आँसू बहाकर)

सत्यवादी पृथा के पुत्र (युधिष्ठिर) ने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह स्पष्ट
हकर (वाक्य के) शेष (भाग) में 'गज' यह पद धीरे से कहा। उसे सुनकर
राजा (युधिष्ठिर) के विश्वास से पुत्र को प्रेम करने वाले इसने युद्ध-भूमि
शस्त्र गिरा दिये और साथ ही आँसू भी गिराये ॥११॥

अश्वत्थामा—हाय तात ! हाय पुत्रवत्सल, हाय ! व्यर्थ ही मेरे कारण
त्यागने वाले, हाय शौर्य-राशि ! हाय युधिष्ठिर का पक्षपात करने वाले !
प्रकार विलाप करके रोता है)।

सूत—कुमार, अत्यधिक विलाप और कातरता से बस करो।

अश्वत्थामेति। पृथासूनुना युधिष्ठिरेण। स्वैरमल्पं [अस्पष्टमित्यर्थः]। शेषे
त्येति शेषः। किल निश्चये। व्याहृतमुक्तम्। असावाचार्यः। दयितः प्रियः
पुत्रो यस्य स तथा। प्रत्ययात्प्रतीतेः। आजौ संग्रामे। शस्त्राणि मुमोच
तुल्यं धनुःसमकालं नयनसलिलं च मुमोचेत्यन्वयः। इहाभूताहरणरूपः
विः। यदाह—उक्तं युक्तं तु यद्वाक्यमभूताहरणं तु तत्। इति। अश्वत्थामा
त ॥११॥

अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन
तात त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः ।
जीवाम्यहं पुनरयं भवता वियुक्तः
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ॥१२॥

(इति मोहमुपगतः)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु कुमारः ।

(ततः प्रविशति कृपः)

कृपः—(सोद्वेगं निःश्वस्य)

धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग् भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥१३॥

तत्कथं नु खलु वत्सं द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् । अथवा हिमवत्सारगुरुचेतसि ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशङ्के । किं तु पितुः परिभवमिदामुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति । अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते ।
केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन्नूनं निःशेषिताः प्रजाः ॥१४॥

[युधिष्ठिरे पक्षपातो विद्यते अस्य । कार्पण्येन वैक्लव्येन । प्राकृतवत्... यतो मा भूरित्यर्थः ।]

श्रुत्वेति । [मृषा मिथ्या मम वधं श्रुत्वा ।] असवः प्राणाः ॥१२॥

ततः प्रविशति कृप इति । अत्र सूचनातिरेकेणैव प्रवेश इति प्रवेशे ... व्यभिचरतीत्यवधेयम् ।

धिक्सानुजमिति । सानुजमिति धिग्योगे द्वितीया । अजातशत्रुं युधिष्ठिरं

अश्वत्थामा—

हे तात, पुत्र को प्रेम करने वाले आपने मेरे वध की झूठी बात सुनकर
सों के साथ (ही) प्राण (भी) त्याग दिये। लेकिन यह मैं आपसे वियुक्त हो-
: भी जीवित हूँ। इसलिये मुझ निर्दयी पर आपका पक्षपात व्यर्थ ही था ॥१२
है पड़कर मूर्छित हो जाता है)।

सूत—कुमार धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

(तत्पश्चात् कृप प्रवेश करता है)

कृप—(उद्वेगपूर्वक लम्बी सांस लेकर)

शत्रुओं सहित दुष्कृति को धिक्कार है; अजातशत्रु (युधिष्ठिर) को धिक्कार
राजाओं को धिक्कार है; निरर्थक शस्त्र धारण करने वाले हमको धिक्कार
जिन्होंने चित्र-लिखित के समान तब द्रुपद की पुत्री के और आज द्रोण के
ग्रहण को देखा है ॥१३॥

तो पुत्र अश्वत्थामा को कैसे देख सकूँगा? अथवा हिमालय के समान
वाली और उदार चित्त वाले तथा लोक-मर्यादा को जानने वाले उस
त्थामा)' में मुझे शोक के आवेग की आशङ्का नहीं करनी चाहिये। किन्तु
नहीं कि पिता के अनुचित अपमान को सुनकर यह क्या कर डाले?

था—

एक (केश-ग्रहण) का तो पृथ्वी पर यह (महाभारत रूप) भयङ्कर
णाम है। इस द्वितीय केश-ग्रहण होने पर निश्चय ही समस्त प्रजा नष्ट
जायेगी ॥१४॥

स्तानि शस्त्राणि बिभ्रतीति तान्।] वस्तु प्रतिष्ठो निश्चये वा। द्रौपद्याः
ग्रहस्तस्य द्रोणस्य च यैः [लिखितैश्चित्रगतैरिव] वीक्षित इत्यन्वयः ॥१३॥
[हिमवतः सारः] हिमवत्सारो हिमालयवलम्। [तद्द् गुरु स्थिरं चेतो
।] स्थितिः स्थैर्यम्। [मर्यादा व्यवस्था वा।] तस्मिन्नश्वत्थामनि।
यति करोति।

एकस्येति। एकस्य [द्रौपद्याः] केशग्रहस्य। तावच्छब्द उपक्रमे। निःशेषिता
ः। इहाक्षिप्तमन्तो गर्भसंधिः। यदाह—बीजस्योच्छेदन यत्तु तदाक्षिप्तमुदा-
॥१४॥

([illegible]) [illegible] । [illegible] । ([illegible]
[illegible], [illegible] [illegible] ।

अश्वत्थामा— ([illegible]) हा [illegible], हा [illegible]
([illegible]) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं
न द्वेक्षि यज्जनमतश्च भवानजातशत्रुः ।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषा-
त्सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥१५॥

सूतः—कुमार, एष ते मातुल शारद्वत पार्श्वे तिष्ठति ।

अश्वत्थामा—(पार्श्वे विलोक्य [illegible]) मातुल, मातुल,

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना
य एकः शूराणां गुरुसमरसम्पत्तिनिपुणः ।
परीहासाश्चित्राः सततमभवन्येन भवतः
स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल गतः ॥[illegible]

कृपः—परिगतपरिगन्तव्य एव भवान् । तदलमत्यन्तशोकावेगेन ।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवनम् । एषोऽहं [illegible]
तातमेवानुगच्छामि ।

कृपः—वत्स, अनुपपन्नं भवद्विधानामिदम् ।

सूतः—कुमार, अलमतिसाहसेन ।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

आजन्मन इति । आजन्मनो जननादारभ्य । वितथमसत्यम् । [illegible]
प्रसिद्धौ । यस्त्वं जनं न द्वेक्षि [द्वेषविषयं करोषि, तत्सर्वं मम भाग्य-
[illegible] । त्वयेति शेषः । कथं निरस्तं दूरीकृतम् ।] ॥१५॥

[शरद्वतः पुत्रः] शारद्वतः कृपः ।

(देखकर) तो यह वत्स अश्वत्थामा खड़ा है। समीप जाता हूँ। (समीप र घबराहट के साथ) वत्स, धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो।

अश्वत्थामा—(चेतना पाकर आँसू भरे हुए) हाय तात! हाय सम्पूर्ण र के प्रधान गुरु! (आकाश की ओर देखकर) युधिष्ठिर! युधिष्ठिर, जन्म से लेकर आपने (कभी) झूठ नहीं बोला, क्योंकि तुम लोगों से द्वेष रते हो, इसलिये तुम अजातशत्रु (कहलाते हो); लेकिन मेरे भाग्य के े (तुमने) आचार्य और श्रेष्ठ ब्राह्मण (मेरे) पिता के विषय में यह सब एकदम कैसे छोड़ दिये? ॥१५॥

त—कुमार, यह तुम्हारे मामा शारद्वत समीप में खड़े हैं।

श्वत्थामा—(पार्श्व में देखकर आँसुओं के साथ) मामा, मामा? ज सेनापति के साथ आप आज युद्ध-भूमि में गये थे; जो अकेला ही े युद्ध की सारी खुजली को मिटा देने वाला था; जिसके साथ हमेशा — अनोखे हँसी-मजाक हुआ करते थे; आपकी बहन का प्रशंसनीय पति वह, मामा, कहाँ चला गया? ॥१६॥

कृप—आप सब आतम्य जानते ही हैं। इसलिये बहुत शोक के आवेग से र दीजिये।

अश्वत्थामा—मातुल, मैंने विलाप छोड़ ही दिया। अब मैं भी पुत्र-प्रेमी ा का ही अनुगमन करता हूँ।

कृप—वत्स, आप जैसों के लिये यह उचित नहीं है।

सूत—कुमार, दुःसाहस न करो।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

गत इति। [येन सैन्यपतिना सह अद्य त्वं रणभुवं गतः। यः एकः शूराणां। या समरस्य युद्धस्य कण्डूः भुजयोः कण्डूतिस्तस्याः निकषणः]। कण्डूनिक-कण्डूनिवारणः। [येन सह भवतः चित्राः। परीहासा नर्मभाषणानि सततम् र।] हे मातुल सः ते स्वसुर्भगिन्याः श्लाघ्यो भर्ता। क नु कुत्र नु खलु । खलु प्रश्ने ॥१६॥

परिगतं ज्ञातं परिगन्तव्यं ज्ञातव्यं येन स तया। परिदेवितं विलापः।

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ।
करोमि विरहं तस्य वत्सलस्य कथं पितुः ॥१७

कृपः—वत्स, यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । पश्य—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूतः—आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा ।

अश्वत्थामा—आर्य, सत्यमेवेदम् । किं त्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न श... तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम् । तद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथा... मपि पितरं द्रक्ष्यामि । (उत्तिष्ठन् खड्गमालोक्य विचिन्त्य) कृतमद्यापि श... ग्रहणविडम्बनया । भगवन् शस्त्र,

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः ।
परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भया-
द्विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ॥१९॥

(इति उत्सृजति)

(नेपथ्ये)

भो भो राजानः, कथमिह भवन्तः सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवमु... नृशंसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते ।

मदिति । अविरहं समाजं [सान्निध्यमित्यर्थः ।] ॥१७॥

लोकद्वये इहलोके परलोके च [अनुवर्तनीया आनुकूल्येनानुसर्तव्याः । इ... लोकस्थिते पितरि सद्व्यवहारेण परलोकगते श्राद्धादिकर्मणेत्यर्थः ।]

निवापेति । निवाप. पितृदान स्यात् इत्यमरः । निवापाञ्जलिर्जलाञ्जलि... [तस्य मरणादिषु दानेन] केतनैः [केतनैः ब्रह्मभोजैरित्यर्थः, साधीनस... कथ केतनं कृत्ये । इत्यमरः । श्राद्धकर्मभिः च तस्योपकारे त्वं किं जीव... शक्तः ।] किमुतान्यथा जीवन्ना शक्तः । अपि तु जीवता अशक्तिरनयो...

मेरे विरह के भय के कारण पिता यहाँ से परलोक चले गये। (तब) मैं स प्रणयी पिता का वियोग कैसे उत्पन्न कर सकता हूँ ॥१७॥

कृप—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक यह लोक-व्यवहार भी रहेगा क—पुत्र दोनों लोकों में ही पितरों के अनुकूल आचरण करें। देखो—

तुम जलाञ्जलि-दान, ब्राह्मण-भोज और श्राद्ध-कर्म द्वारा उसके उपकार में जीवित रहते हुए समर्थ हो सकते हो अथवा अन्यथा (अनुगमन करके) ॥१८॥

सूत—आयुष्मन्, तुम्हारे मामा शारद्वत जैसा कह रहे हैं, वह ठीक है।

अश्वत्थामा—आर्य, यह सच ही है। परन्तु दुःख-भार के अत्यधिक असह्य होने के कारण पिता से वियुक्त मैं क्षण भर भी प्राण-धारण नहीं कर सकता। व उस ही जगह जाता हूँ जहाँ उस दशा में वर्तमान (मृत) भी पिता को देख सकूँ। (उठते हुए तलवार को देखकर और सोचकर) अब शस्त्र धारण करने के उपहास से बस करना चाहिये। भगवन् शस्त्र,

जिसने उचित न होते हुए भी अपमान के भय से तुम्हें धारण किया था और जिसके प्रभाव से कोई तुम्हारा विषय नहीं हुआ, यह बात नहीं थी, क्योंकि उसने पुत्र के शोक के कारण, न कि भय के कारण, तुम्हें छोड़ दिया है, इसलिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोड़ रहा हूँ। आपका कल्याण हो ॥१९॥

(यह कहकर छोड़ देता है)

(नेपथ्य में)

हे राजा लोगों, यहाँ खड़े आप लोग इस क्रूर द्वारा किये गये आचार्य भारद्वाज (द्रोण) के अपमान की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं?

म्रियस्व इति भावः ॥१८॥

गृहीतमिति। येनाचार्येण। [परिभवो विमानना तस्य भयात्। नोचितमपि गृहीतमासीः। यतः शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रावरुध्यते इति स्मरणात्।] यस्याचार्यस्य प्रभावात्। तव विषयः कश्चिन्नाभूदेवं न खलु। सर्व एव विषयो-ऽभूदित्यर्थः। तेन त्वं, सुतशोकात्परित्यक्तमसि न तु भयात्। हे शस्त्र यतः अहमपि] विसृष्टये त्यक्ष्यामि। अतो भवते स्वस्त्यस्तु। स्वस्तियोगे नमः-स्वस्ति-इत्यादिना चतुर्थी ॥१९॥

मद्वियोगभयात्तात परलोकमितो गतः ।
कर्णोऽसि विरह तस्य यत्मनस्य नयं पितुः ॥१७॥

कृप.—वत्स, मावमेवं संसारस्थावप्रतिबुद्धैव लोकयात्रा सर्वं हि लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । यतः—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूत.—आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा ।

अश्वत्थामा—आर्य सम्यगुक्तमिदम् । किं त्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम् । तद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तातो ऽपि पितरं द्रक्ष्यामि । (उत्तिष्ठन् शस्त्रमालोक्य विचिन्त्य) इत्थं [illegible]

. मेरे विरह के भय के कारण पिता यहाँ से परलोक चले गये। (तब) मैं
र अभागा पिता का वियोग कैसे उत्पन्न कर सकता हूँ ॥१७॥

कृप—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक यह लोक-व्यवहार भी रहेगा
:—पुत्र दोनों लोकों में ही पितरों के अनुकूल आचरण करें। देखो—

तुम जलाञ्जलि-दान, ब्राह्मण-भोज और श्राद्ध-कर्म द्वारा उसके उपकार में
वित रहते हुए समर्थ हो सकते हो अथवा अन्यथा (अनुगमन करके) ॥१८॥

सूत—आयुष्मन्, तुम्हारे मामा शारद्वत जैसा कह रहे हैं, वह ठीक है।

अश्वत्थामा—आर्य, यह सब ठीक है। परन्तु दुःख-भार के अत्यधिक असह्य
ने के कारण पिता से वियुक्त मैं क्षण भर भी प्राण-धारण नहीं कर सकता।
व उस ही जगह जाता हूँ जहाँ उस दशा में वर्तमान (मृत) भी पिता को
ख सकूँ। (उठते हुए तलवार को देखकर और सोचकर) अब शस्त्र धारण
रने के उपहास से बस करना चाहिये। भगवन् शस्त्र,

जिसने उचित न होते हुए भी अपमान के भय से तुम्हें धारण किया था
गैर जिसके प्रभाव से कोई तुम्हारा विषय नहीं हुआ, यह बात नहीं थी,
योंकि उसने पुत्र के शोक के कारण, न कि भय के कारण, तुम्हें छोड़ दिया है,
सलिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोड़ रहा हूँ। आपका कल्याण हो ॥१९॥

(यह कहकर छोड़ देता है)

(नेपथ्य में)

हे राजा लोगों, यहाँ खड़े आप लोग इस क्रूर द्वारा किये गये आचार्य
भारद्वाज (द्रोण) के अपमान की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं?

कियन् इति भावः ॥१८॥

गृहीतमिति। येनाचार्येण। [परिभवो विमाननं तस्य भयात्। नोचितमर्
गृहीतवानसि। यतः शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रावरुध्यते इति स्मरणात्।
यस्याचार्यस्य प्रभावात्। तव विषयः कश्चिन्नाभूदेवं न खलु। सर्व एव विषयो
भूदित्यर्थः। तेन त्वं सुतशोकात्त्यक्तमसि न तु भयात्। हे शस्त्र यत
अहमपि] विमोक्ष्ये त्यक्ष्यामि। अतो भवते स्वस्त्यस्तु। स्वस्तियोगे नम
स्वस्ति-इत्यादिना चतुर्थी ॥१९॥

स्फुरद्भिसामोघत्रितामदमतस्य न शिरो-
संनिहाय पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ॥२२॥

[illegible],

तातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य
त्यक्त्वा शङ्कां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमाङ्गे ।
अश्वत्थामा करधृतधनुः पाण्डुपाञ्चालसेना-
तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य किमनेनापकृतम् । अथ वा किमनेनालोकप्रकृतिनिष्ठुरचेतसा । अर्जुन, सख्ये बाहुशालिन्वृकोदर माधव, युक्तं नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना कुलकलङ्केन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमाङ्गमुपेक्षितुम् । अथ वा सर्व एवैते पातकिनः किमेतैः ।

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥२४॥

दो गर्वस्तेन मत्तस्य । अथ पितुः शिरसि करो न निहितः । किंतु ममैव शिरसि दौ निहित इत्यन्वयः ॥२२॥

तातमिति । उपलभ्य ज्ञात्वा । शङ्कां शत्रुकृतमारणादिशङ्काम् । बहु सदौ । उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम् इत्यमरः [विदधतो व्यापारयतः । पाण्डूनां पाञ्चालानां च सेना एव तूलः तस्य उत्क्षेपे प्रलयपवनः कल्पान्तमारुतः । सीतस्य च्छेदकारी इत्यर्थः ।] अश्वत्थामा तव स्मृतिं किं न यातः ॥२३॥

अजातशत्रुणा किम्, अपि तु न किमपि । कीदृशेन । अलोकेनामस्तेन

व्य शस्त्र-समूह रूपी धन के मद से मत्त हुए शत्रु का पैर हो मेरे सिर पर रखा गया, उसके (पिता के) सिर पर हाथ नहीं ॥२२॥

अरे ! दुष्ट, अधम पाञ्चाल,

पिता को निश्चित रूप से शस्त्र-ग्रहण से पराङ्मुख जानकर, (इसलिये) रथ छोड़कर इसके सिर पर हाथ डालते हुए तुझे क्या हाथ मे धनुष धारण करने वाला और पाण्डु तथा पाञ्चाल सेना रूपी रुई को उड़ा देने में प्रलय-काल का पवन, अश्वत्थामा याद नहीं आया ॥२३॥

युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर ! अजातशत्रु ! सत्यवादी ! धर्मपुत्र ! अनुज सहित तेरा इसने क्या बिगाड़ा था ? अथवा इस झूठे और स्वभाव से कुटिल चित्त वाले से क्या (अपेक्षा की जा सकती थी) ? अर्जुन ! सात्यकि ! बाहुशाली भीम ! माधव ! क्या, आप लोगों को इस द्रुपद-कुल के कलङ्क, मनुष्य-पशु द्वारा छुए जाते, सुर, असुर और मनुष्य लोक मे अद्वितीय धनुर्धर, ब्राह्मण, वृद्ध, सब के गुरु और विशेषकर मेरे पिता के सिर की उपेक्षा करना उचित था ? अथवा ये सब के सब पातकी हैं । इनसे क्या (अपेक्षा) ?

जिन मर्यादाहीन, शस्त्र धारण करने वाले मनुष्य रूप में वर्तमान पशु, आप लोगों ने यह महान् पातक किया है, अथवा उसकी अनुमति दी है, अथवा इसे होते देखा है, नरक-रिपु (कृष्ण) के साथ साथ भीम और अर्जुन सहित इन सब के रुधिर, चर्बी और मांस से मैं दिशाओं को बलि दिये देता हूँ ॥२४

प्रकृतिवन्] इनरजलधरकुटिल चेतो यस्य तेन । [अलीका या प्रकृतिस्तया महां चेतो यस्येति वा । सुरासुरमनुजानां लोकास्तेषु एकधनुर्धरस्तस्य ।]

कृतमिति । [यैः निर्गता मर्यादा येभ्यस्तैः निर्मर्यादैः उद्धतानि आयुधानि या तैः उद्धतायुधैः । प्रतिकर्तुं समर्थैरपीति यावत् । मनुजपशुभिः भवद्भिः इद पातक कृतमनुमतं दृष्टं वा । नरकरिपुणा सार्धं सभीमकिरीटिना तेषा सृङ्मेदोमांसैः अयमहं दिशा बलि करोमि इत्यन्वयः ।] गुरु महच्च तत्पातकं च । नरकरिपुः कृष्णः । असृग्रक्तं । मेदो मज्जा । बलिमुपहारम् । बलिः पूजोपहारयोः ति शाश्वतः ॥२४॥

कृपः—वत्स, किं न संभाव्यते भारद्वाजसुते शस्त्रग्राम[illegible]
कोविदे भवति ।

अश्वत्थामा—भो मा, [illegible]

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना
कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम् ।
किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविषमं
न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे ॥२५॥

सूत, गच्छ त्वं सर्वोपकरणैः साङ्ग्रामिकैः सर्वायुधैश्च महता नानास्त्रसस्यन्दनमुपनय ।

• सूतः—यदाज्ञापयति कुमारः । (इति निष्क्रान्तः) ।

कृपः—वत्स, अवश्यमभिषेक्तव्येऽस्मिन्काले परिभवतो सर्वेऽन्ये कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् । किं तु—

अश्वत्थामा—किमतः परम् ।

कृपः—सैनापत्ये ऽभिषिक्तं भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिंचित्करं च ।

कृपः—वत्स, न खलु परतन्त्रं नाकिंचित्करं च । पश्य —

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम् ।
यदि तत्तुल्यकर्मात्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

ग्रामः संघः । कोविदः पण्डितः ।

पितुरिति । [पितुर्जमदग्नेर्मूर्ध्नि कार्तवीर्यस्य पुत्रैः स्पृष्टे सति ।] [ज्वलन् योऽनलस्तद्वद्भास्वान् परशुर्यस्य तेन] रामेण परशुरामेण कृतं [illegible] जनघातादिकं तद्भवतां किं श्रुतिपथं न गतम् । पितुर्मूर्ध्नि द्रुपदेन स्पृष्टे [illegible] अश्वत्थामा किमद्यापि तत्कर्म विधातुं न प्रभवति अपि तु प्रभवत्ये[illegible] [illegible] एव] विघसो भोजनविशेषः [यस्मिन् तत्] । [illegible]
। इत्यमरः ॥२५॥

कृप—वत्स, भारद्वाज के समान, बाहुशाली, दिव्य अस्त्र-समूह से चतुर
में क्या सम्भव नहीं है ?

अश्वत्थामा—हे पाण्डव, मत्स्य, सोमक और मागध आदि अधम क्षत्रियो,
पिता के सिर के छुये जाने पर जलती हुई अग्नि के समान चमकते हुये
धु वाले राम (परशुराम) ने जो कर्म किया था, क्या वह आप लोगों के
में नहीं पहुंचा है ? क्या आज क्रोध से अन्धा हुआ अश्वत्थामा युद्ध के
पर उस कर्म को, जिसमें शत्रुओं के रुधिर की वर्षा हो विघस (पितरों
दिया जाने वाला अन्न) है, करने में समर्थ नहीं है ॥२५॥

सूत, तुम जाओ और सब साधनों तथा युद्ध के अस्त्रों से युक्त हमारे
'हृदलक्षण' नाम के रथ को लाओ।

सूत—कुमार की आज्ञा है। (यह कहकर बाहर जाता है)।

कृप—वत्स, इस असमान क्रोधाग्नि का, जिसका अवश्य ही प्रतिकार
चाहिये, हम सब में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन प्रतिकार कर सकता
किन्तु—

अश्वत्थामा—तो इससे अधिक क्या ?

कृप—सेनापति के पद पर अभिषिक्त हुये ही आपको युद्धभूमि में उतारना
हूँ।

अश्वत्थामा—मातुल, यह दूसरे के अधीन है और महत्त्वपूर्ण भी नहीं है।

कृप—वत्स, (यह) न पराधीन है और न ही अमहत्त्वपूर्ण। देखो,
यदि उन (भीष्म और द्रोण) के समान कर्म करने वाले आपको यहाँ धुरी
-संचालन के पद) पर न लगाया जायेगा तो भीष्म और द्रोण से रहित
के पुत्र की सेना कैसे रह सकेगी ॥२६॥

सांग्रामिकैः [संग्रामाः प्रभवन्ति सांग्रामिकाणि। तस्मै प्रभवति सन्तापा-
इति ठञ्। निकारैरिति पाठे] निकारस्य परिभवस्य। निकारः स्यात्परिभवः
श्च.। सेनापतेरर्थः सैनापत्यम्।

भवेदिति। धार्तराष्ट्रबलं कथं भवेदिति भवेदित्यर्थः। [तयोः तुल्यं कर्म यस्य।
स इति पाठे कदा पराक्रमावकाशः यस्य।] अत्र धुरि धुरायाम् ॥२६॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं । स्थिरबलम् । तदेवं मन्ये परिकल्पिताभिषेकोपकरणः कौरवराजो ... दाम्मपेक्षमाणस्तिष्ठतीति ।

अश्वत्थामा—यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्त... जलावगाहनाय । तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं संनाह्य... प्रणयसमाश्वासनया मन्दसंतापं करोमि ।

कृपः—वत्स, एवमिदम् । अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः ।

(इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधनः—अङ्गराज,

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ॥२७॥

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यतः शोक... विमुच्य क्षात्रधर्मकार्कश्यं द्विजातिधर्मसुलभो मार्दवपरिग्रहः कृतः

कर्णः—राजन् कौरवेश्वर, न खल्विदमेवम् ।

दुर्योधनः—कथं तर्हि ।

कर्णः— एवं किलास्याभिप्रायो यथा अश्वत्थामा मया अभिषेक्तव्य इति । तस्याभावाद्वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणम् ।

दुर्योधनः—(सशिरःकम्पम्) एवमिदम् ।

परिकरः पुरस्कारः । [परिपन्थीभवितुम् । प्रतियोद्धुमित्यर्थः । ... अभिषेचनस्य] उपकरणानि सामग्री [येन] । संनाह्य ... सान्त्वना ... तथा ।

उद्देशं प्रदेशम् ।

... दुःख पारं [दुःखसागरस्य परतीरं । ततः ...

दृढ निश्चय किये हुए आप जैसे का तीनों लोक भी सामना नहीं कर सकते, युधिष्ठिर की सेना तो क्या ? इसलिये मैं तो ऐसा समझता हूँ कि अभिषेक सामग्री तैयार करके कौरव-राज अब तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा है।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है, तो अपमान के अनल से जलता हुआ, यह मेरा मन भी प्रतिशोध के जल में प्रवेश करने के लिये उतावला हो रहा है। इसलिये चलकर पिता के वध से दुःखित चित्त वाले कुरुराज को स्वयं सेनापति-पद स्वीकार करने की प्रार्थना से सान्त्वना देकर उसके सन्ताप को दूर करूँ।

कृप—वत्स, ऐसा ही होना चाहिये। इसलिये उस ही स्थान पर चलें।

(दोनो घूमते है)

(तत्पश्चात् कर्ण और दुर्योधन प्रवेश करते है)

दुर्योधन—अङ्गराज,

तेजस्वी (पुरुष) आयुध रूपी नौका धारण की हुई भुजाओं से शत्रु द्वारा मारे गये प्रिय जन के शोक को पार किया करता है। आचार्य पुत्र की मृत्यु को सुनकर युद्ध में शस्त्र-ग्रहण के समय शस्त्र हीन क्यों हो गये ॥२७॥

अथवा स्याने लोगों ने ठीक कहा है— 'स्वभाव नहीं छोड़ा जा सकता।' क्योंकि शोक से आक्रान्त हृदय वाले उस (आचार्य) ने क्षात्रधर्म की कठोरता को छोड़कर ब्राह्मण-धर्म सुलभ मृदुलता अपना ली।

कर्ण—राजन्, कौरवाधिपति, यह बात नहीं थी।

दुर्योधन—तब फिर क्यों ?

कर्ण—उसका आशय यह था— 'मैं पृथ्वी के राज्य पर अश्वत्थामा को अभिषिक्त करूँगा।' उसके न रहने पर 'मुझ वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र धारण करना व्यर्थ है,' यह विचार कर उसने वैसा किया है।

दुर्योधन—(सिर हिलाते हुए) ऐसा ही है।

याभ्यां ताभ्याम्] बाहुभ्यां तरतीत्यन्वयः। प्लवः कोलः। उडुपं तु प्लवः इत्यमरः। निशम्य श्रुत्वा। संख्ये संग्रामे ॥२७॥

युक्तं शोभनमुक्तमभियुक्तैर्नीतिज्ञैः। [शोकेनान्धं युक्तायुक्तविवेकासमर्थं मनो यस्य तेन। क्षत्रस्याय\क्षात्रो धर्मस्तस्य तत्सम्बन्धि कार्कश्यं कठिन-

कर्णः — हृदयं स [illegible] । परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन बाल्यात्प्रभृत्येव उपेक्षा कृता ।

दुर्योधनः — उपपन्नमिदम् ।

कर्णः — अन्यच्च, राजन्, [illegible] राज्ये धातो वत्स. ।

दुर्योधनः — साधु, अङ्गराज, साधु । निपुणमभिहितम् ।

कर्णः — न खलु मर्मज्ञस्याभिप्रायः । अन्येऽपि निपुणा अपि नैवेत्थं मन्यन्ते ।

दुर्योधनः — एवमेतत् । कः सन्देहः ।

दत्त्वाभयं सोऽतिरथो वध्यमानं किरीटिना ।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा ॥२८॥

कृपः — (विलोक्य) वत्स, एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायामुपविष्टस्तिष्ठति । तदुपसर्पावः ।

(तथा कृत्वा)

उभौ — विजयतां कौरवेश्वरः ।

दुर्योधनः — (दृष्ट्वा) अये कथं कृपोऽश्वत्थामा च । (आसनादवतीर्य [illegible] प्रति) गुरो अभिवादये । (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र,

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व
क्लान्तैरिदं मम निरन्तरमङ्गमङ्गैः ।
स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते
शोकेऽपि यो महति निर्वृतिमादधाति ॥२९॥

हृदयताम् ।] न खल्विति । इदमेव न वाच्यमित्यर्थः । किल प्रसिद्धौ । [illegible] शस्त्रत्यागम् । [परस्परेण क्षयमपेक्षमाणेन । उपेक्षा कृता उदासीनेन स्थितम्।] बाल्यात्प्रभृति शैशवादारभ्य ।

दत्त्वेति । सोऽतिरथः महारथः द्रोणोऽभयं दत्त्वा कथमन्यथार्जुनेन वध्यमानं ... । शेषेवं नेरयन्वयः ॥२८॥

कर्ण—और इसी कारण कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति पक्षपात होने के ारण महायुद्ध में प्रवृत्त हुए राज-समूह के परस्पर नाश की अपेक्षा करते हुए सने प्रधान पुरुषों के वध की उपेक्षा की।

दुर्योधन—यह ठीक है।

कर्ण—और राजन्, बचपन से ही इसके अभिप्राय को जानने वाले द्रुपद ने इसे राज्य में वासस्थान नहीं दिया था।

दुर्योधन—ठीक, अङ्गराज, ठीक। (आपने) बुद्धि की बात कही है।

कर्ण—और यह एक मेरा ही विचार नहीं है। दूसरे चतुर लोग भी इसे यथा नहीं समझते हैं।

दुर्योधन—ऐसा ही है। (इसमें) क्या सन्देह है ?

यदि ऐसा न होता तो वह महारथी अभय देकर अर्जुन द्वारा वध किये ते हुए सिन्धुराज की अन्य किस कारण उपेक्षा करता ॥२८॥

कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सूत-पुत्र (कर्ण) के साथ वट-वृक्ष की ा में बैठा हुआ है। तो पास चलें।

(वैसा करके)

दोनों—कौरवों के अधिपति की जय हो।

दुर्योधन — (देखकर) अरे ! कैसे ! कृप और अश्वत्थामा। (आसन से ःकर कृप से) आचार्य, मैं प्रणाम करता हूँ। (अश्वत्थामा को लक्ष्य करके) र्यपुत्र,

हमारे प्रयोजन से मारे गये पिता वाले, आओ; (अपने) थान्त अङ्गों से स शरीर का गाढ आलिङ्गन करो। तुम्हारी भुजाओं का यह स्पर्श रे पिता (के स्पर्श) के समान है, जो महान् शोक में भी (हमें) शान्ति ा है ॥२९॥

तपुत्रेण सारथिसुतेन कर्णेन। सूतः क्षत्ता च सारथिः॥ इत्यमर। शो वट्टवाटः इत्यमरः। दिजवरादिरयन्न विपराभ्या जे. इति तद्॥ रहीति। एह्यागच्छ। [क्लान्तैरङ्गैःविकलैरङ्गैःमदङ्गम्। निर्वनमन्तर इवर्पेति तदा। गाढमित्यर्थः। [परिष्वजस्वालिङ्ग] तवाङ्गहेतु मानम्। [तव भुजयोः एव स्पर्शः ते पितुः सदृशः। यः स्पर्शो महति शोके वि निर्वृति शान्तिमादधाति करोतीत्यर्थः] ॥२९॥

(आलिङ्ग्य पार्श्वे उपवेशयति)।

(अश्वत्थामा बाष्पमुत्सृजति)

कर्णः—द्रौणायन, अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षिप्य।

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसनमहार्णवे। पश्य।

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे
शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं
जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३०॥

कृपः—वत्स, यथाह कुरुपतिस्तथैवैतत्।

अश्वत्थामा—राजन्, एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोकभारं लघू[कर्तुम्]। किन्तु

मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान्।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ॥३१॥

कर्णः—द्रौणायन किमत्र क्रियते यदा तेनैव सर्वपरिभवत्राणहेतुना [...] गृहीता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, किमाह भवान् किमत्र क्रियत इति। [...] क्रियते।

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।

नाम इति। स तव तातो मे पितुः सखा मित्रमित्यन्वयः [अत्र हेतुर्निर्दे-शीकृतो हेतुः निदर्शनेन। यन्मम दुःखं तत् किं कथयामि। अत्र यत् [...] [...]स्यापि प्रतीतेः। गाम्भीर्यम्। यथाह विश्वनाथः—अविकृत्यात्मीय(चलनं) अपि गाम्भीर्यम्। इति।] त्वमेव [गुर्वी गुरु [...] गुरुशुचा तव मनसा] जानीहीत्यन्वयः। [यथा तव मनो गुरुशोकाकुलं [...] [...]मिति जानीहीत्यर्थः।] शुचा शोकेन ॥३०॥

है)

(अश्वत्थामा आँसू बहाता है)

कर्ण—द्रोण के पुत्र, अपने को अत्यधिक शोक रूपी अग्नि में डालने से बस
।

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, इस विपत्ति के महासागर में हम दोनों में क्या भेद देखो—

वह तुम्हारे प्रणयी पिता मेरे पिता के मित्र थे। शस्त्र-विद्या में वह जैसे रे गुरु थे, वैसे ही मेरे भी। उनके शरीर का अन्त हो जाने पर (होने) दुःख को क्या बतलाऊँ? महान् दुःख वाले (अपने) मन से तुम ही समझ लो ॥१०॥

कृप—वत्स, कुरुपति जैसा कह रहे हैं, वह ठीक ही है।

अश्वत्थामा—राजन्, (हमारे प्रति) प्रेम रखने वाले आपका इस प्रकार रा) शोक-भार हल्का करना ठीक ही है। किन्तु—

रे जीवित रहते मेरे पिता ने केश-ग्रहण प्राप्त किया, तब अन्य पुत्र वाले ी कामना कैसे करेंगे ॥११॥

र्ण—द्रौणायन, इसमें क्या किया जाय, जब सब को अपमान से बचाने में उसने ही शस्त्र-त्याग करते हुए अपनी ऐसी दशा कराई है।

श्वत्थामा—अङ्गराज, क्या कहा आपने 'इसमें क्या किया जाय।' जो गयेगा, सुनिये—

ण्डवों की सेनाओं में से अपने भुजबल के अतिदर्प वाला जो भी शस्त्र- करता है, पाञ्चाल कुल में जो भी अधिक बड़ा या छोटा या गर्भ रूपी ी भी शिशु है; जो भी उस कर्म का साक्षी है और जो भी मेरे

रीति। पुत्रेभ्यः इत्यत्र स्पृहेरीप्सितः इति चतुर्थी ॥११॥

य इति। पाण्डवीनां पाण्डवसम्बन्धिनीनां चमूनां सेनानाम्। मध्ये ने। स्वभुजवीर्यस्य दर्पः। गुरुमंदो यस्य तथाभूतः यः यः शस्त्र भिकबालतरुणो वृद्धश्च। तत्कर्मसाक्षी तानकर्मसाक्षादृष्टा। तारतद्- नाम् इति माशीति तिष्ठति। [अपि रणे चरति कुटकर्मोपरति

यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीप
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्॥३२

अपि च, भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण,

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिता
क्षत्रादेव तथाविध परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनः क्रोधनः ॥३३

दुर्योधनः — आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीर किमन्यत्सदृशम् ।

कृपः — राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभार । मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुद्वेष्टुं लोकत्रयमपि समर्थः किं पुनर्युधिष्ठिर अतोऽभिषिच्यतां सैनापत्ये ।

दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः । किं तु प्राक्प्रतिपन्नोऽङ्गराजस्य ।

कृपः—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमङ्गराज नैवोपेक्षितुं युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अतः किमस्य न भविष्यति ।

अश्वत्थामा—राजन् कौरवेश्वर, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया ।

यः य.] प्रतीपो विपरीतकारी [स्यात् । प्रतीपमिति पाठे यश्च यश्च रणे प्रतीपं चरति इति योज्यम् ।] तस्य जगतामन्तकस्य विनाशकस्य अन्तको विनाशको वा ॥३२॥

जामदग्न्यः परशुरामः ।

देश इति । [सोऽयं कुरुक्षेत्रम् ।] शोणितं रक्तं [तदेव जलम् । पूरि [illegible] ।येन:] । क्षत्रात् क्षत्रियकृतात्परिभवः सर्वत्र जात इति दै

भूमि में संचरण करने पर विरुद्ध होगा, क्रोध से अन्धा हुआ मैं उन नष्ट
–स्वयं जगत् के संहारक (यमराज) का भी नाश करने वाला होऊंगा ॥३२॥
और भी, हे जमदग्नि-पुत्र के शिष्य कर्ण,

यह वही देश है, जिसमें शत्रुओं के रुधिर रूपी जल से तालाब भर गये थे,
ला का केश-ग्रहण क्षत्रिय से ही होने वाला वैसा ही अपमान है, मेरे वे ही
त्रुओं के शस्त्रों के भक्षक और बलवान् चमकते हुए अस्त्र हैं, जो (पहले)
रशुराम ने किया था, कुपित द्रोण-पुत्र (भी आज) वही करेगा ॥३३॥

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, तेरे ऐसे प्रसिद्ध असाधारण पराक्रम के अनुरूप
र क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, द्रोण-पुत्र ने युद्ध का महान् भार वहन करने का निश्चय
या है। इससे मैं समझता हूँ कि आप से पुरस्कृत होकर यह तीनों लोकों
विध्वंस कर डालने में समर्थ है, फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या है ? इस
ये इसे सेनापति-पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—आपने ठीक युक्तियुक्त कहा है। परन्तु यह बोझ तो पहले ही
राधेय (कर्ण) के लिये स्वीकृत कर ली है।

कृप—राजन्, अङ्गराज के कारण असाधारण अपमान से जनित शोक
र में डूबे हुए इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। इसे भी उस ही शत्रु
को दण्ड देना है। क्या इससे इसे पीड़ा नहीं होगी ?

अश्वत्थामा—राजन् कौरवाधिपते, अब उचित-अनुचित का विचार करने
या (प्रयोजन रहा) ?

त्रा उपस्थिता ये (यत्र अहिताः) शत्रवस्तेषां (यानि तानि देशा)
राणि पक्षकाणि। अत एव गुरूणि। भास्वन्ति दीप्यमानानि। रामेण
रामेण कृतं क्षत्रियनाशनम् ॥३३॥

धुमहाभारतादिना.। वोढुं धर्तुम्। [अध्यवसित निश्चयपूर्वमङ्गीकृतम्।]
सोऽभिषेक्तव्य। [अमहतोऽनुरूप। यत्र नाति नामतो दण्ड अनूर्य।]

यो गम्नान्तमंगाशी चरति मति रणे यत्र यत्र प्रतीप
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्

अपि च, भो भागीरथीपुत्र कर्ण,

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिता
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ॥३३॥

दुर्योधनः – आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वै किमन्यत्सदृशम् ।

कृपः – राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभारः । मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः किं पुनर्युधिष्ठि… अतोऽभिषिच्यतां सैनापत्ये ।

दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः । किं तु प्रागप्रतिपन्नोऽ… ङ्गराजस्य ।

कृपः—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमङ्गराज… नैवोपेक्षितुं युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अतः किमस्य न भविष्यति ।

अश्वत्थामा—राजन् कौरवेश्वर, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया ।

यः यः] प्रतीपो विपरीतकारी [स्यात् । प्रतीपमिति पाठे यत्र यत्र रणे प्रतीपं चरति इति योज्यम् ।] तस्य जगतामन्तकस्य विनाशकस्य अन्तको विनाशको वा ॥३२॥

जामदग्न्यः परशुरामः ।

देश इति । [सोऽयं कुरुक्षेत्रम् ।] शोणितं रक्तं [तदेव जलम् । पूरि… परशुरामेणेति शेषः] । क्षत्रात् क्षत्रियात् तातपरिभवः मर्मेव जात इति शे…

भूमि में संचरण करने पर विरुद्ध होगा, क्रोध से अन्धा हुआ मैं उन सब
–स्वयं जगत् के संहारक (यमराज) का भी नाश करने वाला होऊँगा ॥३२
और भी, हे जमदग्नि-पुत्र के शिष्य कर्ण,

यह वही देश है, जिसमें शत्रुओं के रुधिर रूपी जल से तालाब भर गये थे;
ा का केश-ग्रहण क्षत्रिय से ही होने वाला वैसा ही अपमान है; मेरे वे ही
ओं के शस्त्रों के भक्षक और बलवान् चमकते हुए अस्त्र हैं, जो (पहले)
ुराम ने किया था, कुपित द्रोण-पुत्र (भी आज) वही करेगा ॥३३॥

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, तेरे ऐसे प्रसिद्ध असाधारण पराक्रम के अनुरूप
क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, द्रोण-पुत्र ने युद्ध का महान् भार वहन करने का निश्चय
ा है। इससे मैं समझता हूँ कि आप से पुरस्कृत होकर यह तीनों लोकों का
विध्वंस कर डालने में समर्थ है, फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या है ? इ
इसे सेनापति-पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—आपने ठीक युक्तियुक्त कहा है। परन्तु यह चीज तो पहले
राज (कर्ण) के लिये स्वीकृत कर ली है।

कृप—राजन्, अङ्गराज के कारण असाधारण अपमान से जनित शोक
में डूबे हुए इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। इसे भी उस ही शत्रु
को दण्ड देना है। क्या इससे इसे पीड़ा नहीं होगी ?

अश्वत्थामा—राजन् कौरवाधिपति, अब उचित-अनुचित का विचार

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा-
मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम्।
इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिना
व्यपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः ॥३

कर्णः—(विहस्य) वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसातुम्। बहव कौरव
कर्मणः शक्ताः।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, एवमिदम्। बहवः कौरवबलेऽत्र शक्ताः।
दुःखोपहतः शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण।

कर्णः—मूढ, दुःखितस्याश्रुपाताः कुपितस्य चायुधद्वितीयस्य
तरणमुचितं नैवंविधाः प्रलापाः।

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत सूतापसद
नामाश्वत्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण। पश्य—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवायुधं
संप्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा।
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत् ॥३

प्रयत्नेत्यादि। [हे राजन्, अद्य त्वं निशां शेषे शयिष्यसे। वर्तमानस
लट्। कथंभूतः। निःशेषोच्छिन्नशत्रुत्वाद्गाढनिद्रामग्नः सन्]। कीदृश
स्तुतिभिर्मागधादिकृतस्तवैरद्य प्रयत्नेन परिबोधितः प्रबोधितः तथा
सवादिनापि परिहृतभगिनीपतिशोकः समस्तां निशां व्याप्य शयन विशे
भावः। शेषे इति शीङ् स्वप्ने लटि मध्यमपुरुषैकवचने साधु। निशाम्
कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वितीया। अद्य पुनर्भुवनमेतादृशमस्तु। कीदृश
केशवशून्यं पाण्डवशून्यं सोमकशून्यं च। दोःशालिना बाहुबलशालिना वीरद
मपि रणकथा युद्धवार्तापि [पाठान्तरे दोःशालिना] मया परिसमाप्यते। अ
भुवो भारोऽपैतु दूरं यातु। कीदृशः। नृपा एव काननानि वनानि तैरतिगुरु
उपचित इत्यर्थः। दोषा भुजा भुजः इत्यमरः। [अत्र त्रोटकं नाम गर्भसन्ध्य

आज रात्रि में (ऐसे सुख से) सोओगे कि (प्रातः) मङ्गल-स्तुतियों से यत्न से जागोगे। आज संसार केशव, पाण्डवों तथा सोमक-वंशियों से रहित हो जायेगा। आज मुझ भुजशाली द्वारा यह युद्ध की चर्चा समाप्त कर दी जाएगी। आज राजाओं रूपी वनों के कारण अत्यधिक भारी पृथ्वी का भार दूर हो जायेगा ॥३४॥

कर्ण—(जोर से हँसकर) यह कहना सरल है, लेकिन पूरा करना बड़ा कठिन है। कौरव-सेना में इस कार्य में समर्थ बहुत हैं।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, यह सच है। कौरव सेना में इस कार्य में बहुत से समर्थ हैं। किन्तु दुःख से अभिभूत हुआ मैं शोक के आवेग के कारण ही ऐसा कह रहा हूँ, न कि वीर पुरुषों की निन्दा करने के लिये।

कर्ण—मूर्ख, दुःखी पुरुष को आँसू बहाना और कुपित को शस्त्र लेकर समर-भूमि में उतर जाना उचित होता है, इस तरह की बकवाद नहीं।

अश्वत्थामा—(क्रोध से) अरे रे! राधा के गर्भ के भारभूत! अधम सूत! अश्वत्थामा को भी दुःखित हुए को आँसुओं द्वारा प्रतिकार का उपदेश है, न कि शस्त्र से। देख—

क्या मेरे शस्त्र तेरे समान गुरु के शाप के प्रभाव से बलहीन हैं; क्या मैं तेरे समान के कारण युद्ध-भूमि छोड़कर आया हूँ, क्या मैं स्तुति और वंश-गान करने वाले सूतों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ? जो नीच शत्रु द्वारा किये अप्रिय का आँसुओं से प्रतिकार करूँ, न कि अस्त्रों से ॥३५॥

। संरब्धं शोटकं वचः इति तल्लक्षणात्] ॥३४॥

वीरजनाधिक्षेपेण [वीरजननिन्दनेच्छया।] ननु रे राधागर्भभारभूत इति। गर्भस्य गर्भे वा भारभूतः। राधा नाम सूतपत्नी तस्याः। निर्वीर्यमिति। [गुरोः परशुरामस्य शापप्रभावस्य वशात्]। कर्णः किल ब्राह्मणवेषमास्थाय सर्वोऽप्यस्त्रविद्यातिशायं परशुरामस्थाने लब्ध। विद्या तस्मै दत्ता। ततः कर्णोऽयं क्षत्रिय इति तेन ज्ञातम्। अथ ...विद्या वीर्यवती न भवतु मम वचनादिति परशुरामस्य शापात्—इति श्रुतम्। तवेव यथा त्वमेव। स्तुतिं च वंशकीर्तनं च [विदन्तीति तेषां]। स्तुतिरूपं वंशकीर्तनम्। [यत् येन क्षुद्रशत्रुणा अप्रियं तेन कृतं तस्य] प्रतिकरोमि प्रतीकारविषयं करोमि। अस्त्रेण नेत्राम्बुना ॥३५॥

कर्णः—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध ब्राह्मण।

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम्।
यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ॥३६॥

अपि च

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥३७॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलङ्क राधागर्भभारभूत आयुधानभिज्ञ, तातमप्यधिक्षिपसि। अथवा

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने
कृतं यत्तेनाजौ प्रतिदिनमियं वेत्ति वसुधा।
परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः
पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ॥३८॥

कर्णः—(विहस्य) एष भीरुरहम्। त्वं पुनर्विप्रसंकरसं [illegible] दर्पितगर्भो [illegible] महाहवे सशस्त्रो जातः। अपि च रे मूढ,

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान्।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं
सुचिरं शिशेव नृपचक्रमनिधौ ॥३९॥

निर्वीर्यं [illegible]। उत्सृष्टं त्यक्तम् ॥३६॥

[illegible] ॥३७॥

[illegible]

[illegible]

कर्ण—(क्रोध से) अरे रे बकवादी, व्यर्थ ही शस्त्र धारण करने के अभिमानी, ब्राह्मण के लड़के,

चाहे बलहीन हो, या बलवान् हो, मैंने पाञ्चाल से डरे हुए तेरे भुज शाली पिता के समान शस्त्र-त्याग नहीं किया ॥३६॥

और भी,

मैं, चाहे सारथि होऊँ, चाहे सारथि-पुत्र होऊँ या चाहे अन्य कोई होऊँ। किसी कुल मे जन्म तो भाग्य के अधीन है, मेरे अधीन तो पुरुषकार है ॥३७॥

अश्वत्थामा—(क्रोध से) अरे रे! रथकार के कुल के कलङ्क, राधा के गर्भ के भारभूत, अरे शस्त्रों के प्रयोग से अपरिचित, तू मेरे पिता पर भी आक्षेप कर रहा है। अथवा

वह डरपोक था या शूर था, लेकिन तीनों लोकों मे प्रसिद्ध भुजबल वाला ; जो उसने प्रतिदिन युद्ध में किया है, उसे यह पृथ्वी जानती है; उसने शस्त्र क्यों छोड़ा, इसमें वह सत्यवादी पृथा का पुत्र साक्षी है; लेकिन, हे युद्ध से डरने वाले, तू उस समय कहाँ था ॥३८॥

कर्ण—(जोर से हँसकर) हाँ, मैं ऐसा ही डरपोक हूँ। लेकिन तू एकमात्र पराक्रम मे आनन्द लेने वाले अपने पिता को याद करके क्या कर डालेगा, यह मुझे बड़ा सन्देह है। और भी, अरे मूर्ख,

यदि शस्त्र छोड़ भी दिया था, तो क्या शस्त्र से रहित (खाली) हाथ वाले शस्त्र उठाये शत्रुओं को रोकते नहीं हैं, जो वह राज-समूह के समीप मे काफी काल तक स्त्री के समान मौलि-दलन के प्रति उदास बैठा रहा ॥३९॥

...तं तत्र स [सत्यमेव व्रतं सत्यव्रतं तस्य धरं पृथासूनुं] युधिष्ठिर साक्षी ॥३८॥

यदीति [शस्त्रपाणयो न भवन्ति इति] अशस्त्रपाणयस्त्यक्तास्त्रा। उदायुधानु-... शस्त्रान्। किं न निवारयन्ति। किं तु निवारयन्त्येव। अनेन द्रोणेन। दलने ...हने। उदासितमुदासीनीभूतम्। स्त्रियेवेति यथा स्त्रियोदास्यते इत्यर्थः। चक्र... परयाद्वयोः इति विश्वः ॥३९॥

अश्वत्थामा – (सक्रोधं सकम्पं च) दुरात्मन् राजवल्लभ, प्रगल्भ मु[illegible] वाचिकप्रभाषिन्,

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य ।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वाम.
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ॥४०॥

(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति) ।

कृपदुर्योधनौ – गुरुपुत्र, मर्षय । (इति निवारयतः) ।

(अश्वत्थामा चरणप्रहारं नाटयति)

कर्णः—(सक्रोधमुत्थाय खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन्, वाचाल ब्रह्मबन्धो आत्मश्लाघ,

जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धृतम् ।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥४१॥

अश्वत्थामा – अरे मूढ, किं नाम जात्या काममवध्योऽहम् । इयं सा जा[illegible]त्यक्ता । (इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति । पुनश्च सक्रोधम्) ।

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया ।
शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ॥४[illegible]

कथमपीति । तव शिरस्येष वामश्चरणो वामपादो मया न्यस्यते इत्यन्वयः [illegible] योर्बलं तस्य दर्पस्तेन ।] आध्मायमानस्याध्मातस्य [न दक्षिण. पाणिः [illegible] पादः दीयते] ॥४०॥

वाचाल बहुभाषक । ब्रह्मबन्धो अब्राह्मनामन् । [ब्राह्मणाधम] ब्रह्मबन्धुर[illegible] निर्देश्येऽपि निगद्यते इत्यमरः ।

[illegible] । [अकामानुमतौ कामम् इत्यमरः । जात्या ब्राह्मणस्यावध्यत्वात् ।
[illegible] । एष हि ब्रह्मबन्धुर[illegible]

अश्वत्थामा—(क्रोध से काँपते हुए) दुष्ट, राजा के मुँह लगे, उच्छृङ्खल, ...श्वर सारथि, अटपटांग बकने वाले,

आज मेरे पिता ने, दुःखी ने या डरपोक ने, चाहे किसी भी कारण द्रुपद के पुत्र के हाथ को नहीं रोका। भुजाओं के बल के अभिमान से फूले हुए तेरे सिर पर यह मेरा बाया चरण रक्खा जा रहा है, इसे रोक ले ॥४०॥

(यह कहकर वैसा करने के लिए उठता है)

कृप और दुर्योधन—आचार्यपुत्र, क्षमा करो। (दोनो रोकते हैं)।

(अश्वत्थामा पाद से प्रहार का नाट्य करता है)

कर्ण—(क्रोध से उठकर और तलवार खींचकर) अरे दुष्ट, बकवादी, नीच ब्राह्मण, अपनी शेखी मारने वाले,

यद्यपि तू (ब्राह्मण) जाति के कारण वध्य नहीं है लेकिन तू उठे हुए (अपने) इस पैर को (मेरी) इस तलवार से कटने पर पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखेगा ॥४१॥

अश्वत्थामा—मूर्ख, क्या कहा— 'मैं जाति के कारण अवध्य हूं। ले, यह जाति छोड़ दी।' (यह कहकर यज्ञोपवीत काटता है और फिर क्रोध से),

आज मैं (तुझे मारकर) अर्जुन को असत्य-सन्ध किये देता हूँ। या तो शस्त्र उठा ले या फिर (शस्त्र) छोड़कर हाथ जोड़कर सिर पर रख ॥४२॥

...नो नान्यास्ति दैहिकः ॥] चरण लूनं संछिन्नौ। पतित द्रक्ष्यसीत्यन्वय। ...ऽस्त्रियाम् इत्यमरः ॥४१॥

...द्येति। [असूयितारं द्वेष्टारं प्रवक्तार विकत्थनम्। भीमसेन नियोगात्ते ...न्ताह कर्णमाहवे ॥ अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रियकाम्यया। कर्णं कर्णानु- ...र्वं रणे हन्तास्मि पत्रिभिः ॥ इति सभापर्वणि अर्जुनेन कर्णवधः प्रतिज्ञातः। ...नुरोधादाह वध ममासौ किरीटी] मिथ्याप्रतिज्ञो [मिथ्या असत्या प्रतिज्ञा ...स्य] मया तव वधात्तेन च तदकरणादिति भावः। [स्वकरवा शस्त्रमिति ...] ॥४२॥

(उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ । कृपदुर्योधनौ वार

दुर्योधनः—सखे, आचार्यपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

कृपः—वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, किं निवारयसि । अयमपि तातनिन्द

प्रगल्भतो दर्पमुत्सारयत्येव ।

कर्णः—राजन्, न खल्वहं निवारयितव्यः ।

उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया ।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥४३॥

अश्वत्थामा—राजन्, मुञ्च मुञ्चैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तर
सुलभमयुनामवसानम् । अन्यच्च, राजन्, स्नेहेन कार्येण वा दयमेनं का
पकारिणं दुरात्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव । पश्य—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सहायः
सूतान्वयः शशधरान्वयसंभवस्य ।
हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्यां
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति)

कर्णः—(खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट ब्राह्मणाधम, अयं न भवसि । रा
मुञ्च मुञ्च । न खल्वहं वारयितव्यः । (हन्तुमिच्छति) ।

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः)

[तातस्य निन्दायां प्रगल्भः] ।

उपेक्षितानामिति । अवज्ञया (प्रलपत्वयं क्षुद्रो नास्माकं कापि क्षतिरित्यव
लया ।) धीरसत्त्वैः सुभटैरुपेक्षितानामित्यन्वयः । [क्रोधान्धैः कोपमूर्छितैरत्रा
तानामशासितानां] मन्दानामेषा विकत्थना भवति । अतोऽत्र मया नोपेक्षा कर्त
भावः । अत्रासितानां गेहवासिनाम् ॥४३॥

निष्पेषो यन्त्रणं [तेन सुलभं सुप्रापम् । अवसानं विनाशम् ।] अस्मत
मत्सकाशात् ।

(दोनों तलवार खींचकर एक दूसरे पर प्रहार करने को उद्यत होते हैं। कृप और दुर्योधन रोकते हैं)

दुर्योधन—मित्र, आचार्यपुत्र, शस्त्र-ग्रहण रहने दीजिये।

कृप—पुत्र, सूतपुत्र, शस्त्र-ग्रहण रहने दीजिये।

अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, आप क्यों रोकते हैं ? पिता की निन्दा करने वाला यह अधम सूत भी धृष्टद्युम्न का पक्षपाती ही है।

कर्ण—राजन्, मुझे न रोकिये।

...विवाली हृदय वाले पुरुषों द्वारा तिरस्कार-भाव से उपेक्षा किये गये ...ही क्रोध से अभिभूत हुए पुरुषों द्वारा भयभीत न किये जाने पर ऐसी ही ...लाधा (डींग) हुआ करती है ॥४३॥

अश्वत्थामा—राजन्, छोड़ दीजिये, इसे छोड़ दीजिये। यह मेरी भुजाओं ...में कुचले जाने से सुलभ प्राण-नाश प्राप्त करले। और राजन्, स्नेह के अथवा प्रयोजन के कारण जो आप पिता के निन्दक इस दुष्ट को मुझसे ...रना चाहते हैं, यह दोनों ही व्यर्थ हैं।

...भी और चन्द्र वंश में उत्पन्न हुए आपका पाप से प्रेम करने वाला और ...कुल में उत्पन्न यह कैसे सहायक हो सकता है ? अर्जुन को मैं मार ...। हे राजा, छोड़ दो। क्रोध के कारण मैं आज संसार को कर्ण और ...पुत्र (अर्जुन) से रहित कर दूँगा ॥४४॥

(यह कहकर प्रहार करना चाहता है)

...—(तलवार उठाता है) अरे बकवादी, नीच ब्राह्मण, (अब) यह तू ...। राजन्, छोड़ो, छोड़ो। मुझे न रोको। (मारना चाहता है)।

(दुर्योधन और कृप रोकते हैं)

...प्रिय इति। अयं पापस्तव कथं सखेत्यन्वयः। कीदृशः। प्रियः प्रिय-...ः। अन्वयो वंशः। अहं किरीटिनं हन्ता हनिष्यामि। ततो हे नृप मां ...अहं लोकं कर्णरहितमर्जुनरहितं च कुर्यां करिष्ये ॥४४॥

दुर्योधनः—कर्ण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः ।

कृपः—वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यत्रावेग इति कोऽयं व्यामोहः । स्वबल[illegible] चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वामः पन्थाः ।

अश्वत्थामा—मातुल, न लभ्यतेऽस्य वटुप्रलापिनो रथकारकुल[illegible] दर्पः शातयितुम् ।

कृपः—वत्स, अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

अश्वत्थामा—मातुल, यद्येवम्,

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः
परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे ।
बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये
समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति खड्गमुत्सृजति) ।

कर्णः—(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद्भवादृशां यदस्त्रपरित्यागो नाम ।

अश्वत्थामा—ननु रे, अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात् ।

कर्णः—अरे मूढ

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥

व्यामोहो मतिविभ्रमः । कर्तव्याकर्तव्यविवेकशून्यतेत्यर्थः । अन्यत् [illegible] परिभवनिवारणम् । अन्यत्र स्वार्थविनाशहेतौ द्वन्द्वे आवेगः साग्रहा प्रवृत्तिः । [illegible] पन्थाः अनीतिमार्गाश्रयणम् । अपमोक्षकारित्वेऽयमर्थः ।] रथकारः सारथिः [illegible] [illegible] । [स्वबलप्रधानः सेनापतिः कर्णः । तस्य सेनापतित्वो[illegible]] ।

अयमिति । [illegible] (प्रिय सखा [illegible] बलम् । अस्य प्रभाव[illegible] इति आकाङ्क्षितार्थः । [illegible] इति पाठे अपि [illegible] ।) ॥४५॥

धृतायुध इति । ममास्त्रेण यत् सिद्धं [illegible] । इह श्लोके [illegible] । [illegible] इति भावः । [illegible]

दुर्योधन—कर्ण, आचार्यपुत्र, तुम दोनों को आज यह क्या पागलपन (उन्माद) हो गया है।

कृप—पुत्र, प्रस्तुत कुछ अन्य था, और यह आवेश किसी अन्य पर है। यह कैसा मति-विभ्रम है। और ऐसे समय पर इस राजवंश की अपनी शक्ति का क्षय तुम से ही हो रहा है, यह कैसा उल्टा मार्ग है।

अश्वत्थामा—मातुल, तो इस कटु प्रलाप करने वाले सारथि-कुल के कलङ्क के अभिमान को शिथिल करने का अवसर नहीं मिलेगा।

कृप—वत्स, अब अपनी सेना के प्रधान का विरोध करने का अवसर नहीं है।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है तो—

जब तक यह पापी (कर्ण) शत्रु के बाणों से मृत्यु को प्राप्त न हो जायेगा, तब तक मैंने युद्ध-भूमि में प्रिय होते हुए भी शस्त्र का परित्याग कर दिया। इसके सेनापति हो जाने पर क्रुद्ध हुए भीम और अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर राजा अपने प्रिय मित्र के बल को जान लेगा ॥४५॥

(यह कहकर तलवार छोड़ देता है)

कर्ण—(ज़ोर से हँसकर) शस्त्र त्याग तो आप जैसों के लिये कुल की परम्परा से प्राप्त है।

अश्वत्थामा—अरे, आप जैसों द्वारा न छोड़ने पर भी निष्फल होने के कारण अस्त्र छोड़ा हुआ ही है।

कर्ण—अरे मूर्ख,

जब तक मैंने आयुध धारण किया हुआ है, तब तक अन्य आयुधों से क्या (प्रयोजन) ? अथवा, जो (कार्य) मेरे शस्त्र से सिद्ध नहीं हुआ, वह और किस से सिद्ध होगा ॥४६॥

इत्यादिना धृतायुध...इत्यन्तेनान्योन्य कर्णाश्वत्थाम्नोः संरब्धवचसा सेनाभेदकारिणा पाण्डवविजयप्राप्त्याशान्वितं तोटकमिति दशरूपकम्। संरब्धं तोटक वदति तल्लक्षणम् ॥८६॥

.कर्षणमेव महापातकमस्य विद्यते कर्षणेन वा महापातकी। सौबलो ...भेदः (शकुनिः)।

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, [illegible] खलु [illegible] मम भुजान्तरमागतोऽसि । कुरवो, कौरवाः श्रृण्वन्तु । अयि भो भो राधेयदुर्योधनशौबलप्रमुख पाण्डवविद्वेषिणः [illegible] भवन्तः ।

> स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपपशुना पाञ्चालराजात्मजा
> येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः ।
> यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवा-
> न्सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥४७॥

(सर्वे आकर्णयन्ति)

अश्वत्थामा—(सोत्प्रासम्) अङ्गराज, सेनापते, आचार्यमधिक्षिप्य, [illegible] हासिन्, भुजबलपरिरक्षितसकललोक । (धृतायुधः इति पठित्वा) इदं [illegible] तरमेव संवृत्तम् । रक्षेनं सांप्रतं भीमाद् दुःशासनम् ।

कर्णः—आः का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्या[क्र]मितुम् । युवराज, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि । (इति निष्क्रान्तः) ।

अश्वत्थामा—राजन्कौरवनाथ, अभीष्मद्रोणं संप्रति कौरवबलमालोक्य भीमार्जुनौ राधेयेनैवंविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम् । अतः स्वयं भ्रातुः प्रतीकारपरो भव ।

दुर्योधनः—आः शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् । वत्स, न भेतव्यं न भेतव्यम् । क कोऽत्र भोः । रथमुपनय । (इति निष्क्रान्तः) ।

स्पृष्टेति । आसवो मद्यम् । भुजपञ्जरे बाहुमध्ये । वयं कौरवा इति कच्छादिपाठान्मनुष्यतत्स्थयोरिति वुञ्प्रसक्तः । अत्रामनुष्यत्वेन विवक्षणाद् कुरोस्तस्येदम् इत्यण् । जनपदविवक्षायां वाण् ॥४७॥

समनाक्स्मितम् इत्यमरः । बाढं निश्चितम् । [illegible]

(नेपथ्य में)

ओ दुष्ट, द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचने का महापातक करने वाले, अधम धृतराष्ट्र के पुत्र, आज बहुत समय बाद मेरे सामने आया है। ऐ नीच पशु, अब कहाँ जायेगा ? और भी, हे राधापुत्र (कर्ण), दुर्योधन और सौबल (शकुनि) आदि मानी, धनुर्धारी, पाण्डवों के शत्रुओं, आप सब लोग सुनें—

जिस नर-पशु ने पाञ्चाल के राजा की पुत्री के केश छुए थे; जिसने राजाओं और बड़े जनों के सामने इसके वस्त्रों को खींचा था; मैंने जिसके वक्षःस्थल के रुधिर रूपी आसव के पान की प्रतिज्ञा की थी, मेरी भुजाओं के पंजरे में पड़े हुए उस इस कौरव की रक्षा करो ॥४७॥

(सब सुनते हैं)

अश्वत्थामा—(व्यङ्ग्य के साथ) अङ्गराज, सेनापति, परशुराम के शिष्य, द्रोण का उपहास करने वाले, अपने बाहुबल से सकल संसार की रक्षा करने वाले, (धृतायुधः इत्यादि ३।४६ श्लोक का पाठ करके) यह तो बहुत जल्दी हो हो गया। अब भीम से इस दुःशासन की रक्षा करो।

कर्ण—आह ! मेरे जीवित रहते भीम की क्या शक्ति है कि वह दुःशासन की छाया भी छू सके। युवराज, डरो नहीं, डरो नहीं। मैं यह आया। (यह कहकर निकल जाता है)।

अश्वत्थामा—राजन्, कौरवनाथ, अब भीष्म और द्रोण से हीन कौरव-सेना को मथते हुए भीम और अर्जुन को कर्ण अथवा ऐसा ही कोई अन्य नहीं रोक सकता है। इसलिये आप स्वयं ही भाई के (भय के) निवारण का उपाय करें।

दुर्योधन—आह ! हाथ में शस्त्र लिये मेरे जीवित रहते भीम या किसी अन्य की क्या शक्ति है कि वत्स की छाया का भी अतिक्रमण कर सके। वत्स, डरो नहीं, डरो नहीं। अरे, यहाँ कौन है ? रथ लाओ। (वह कहकर निकल जाता है)।

भवन्तो । समयेऽस्तैव । अहं विपदे सोढुं पारयामि । अद्य निशामङ्गलम् ।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रहारमूर्च्छितं रथस्थं दुर्योधनमपहरन् सूतः)

(सूतः ससंभ्रमं परिक्रामति)

(नेपथ्ये)

भो भोः बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः, कौरवपक्षपातपक्षपातिनो द्रविणसंचया नरपतयः, संस्तभ्यन्तां संस्तभ्यन्तां निहतदुःशासनपीताव स्नपितबीभत्सवेषवृकोदरदर्शनभयपरिस्खलत्प्रहरणानि रणात्प्रवर्तन्ति

सूतः–(विलोक्य) कथमेष धवलचपरलामरचुम्बितकनककमण्डलु ववदवर्जयन्तीमूर्च्छितेन हतगजवाजिनरकलेवरसहस्रसंमर्दविषमोद्घात किङ्किणीजालमालिना रथेन शरवर्षस्तम्भितपरबलपराक्रमप्रसरः प्र मारवासयन्कृपः किरीटिनाभियुक्तमङ्गराजमनुसरति । हन्त जातमम वलम्बनम् ।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भोः अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तयः कौर पाण्डवपक्षपातिनश्च योधाः, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहं निह

अवलेपः स्मृतो गर्व इति विश्वः । दोहदो दोहद इति प्रसिद्धः । महासमरमेव दोहदो येषाम् ।] प्राणा एव द्रविणमिति रूपकम् । [प्राणद्रविणसंचयो यैः ।] संस्तभ्यन्तां स्थिरीक्रियन्ताम् । [पीतावशेषेण स्नपितः अत एव बीभत्सो वेषो यस्य तस्य वृकोदरस्य दर्शनाद परिस्खलन्ति प्रहरणानि येषां तानि ।] बीभत्सो भयानकः । प्रहरण चर्म च खड्गम् । चुम्बितः संबद्धः । शिखरमग्रम् । वैजयन्ती पताका । शरीरम् । [कलेवराणां सहस्राणि तेषां संमर्दः निबिडावस्थानं संघट्टो यः उद्घातोऽभिघातस्तस्य क्षोभणेन कृतः कलकलो यस्य । क्षुद्रघण्टिकासमूहस्तस्य माला विद्यतेऽस्य तेन धावते धोरं हन्त हर्षे । कृपाणः खड्गः ।] तोमरोऽस्त्रभेदः । [निहतः च]

चतुर्थ अङ्क

(तदनन्तर प्रहार से मूच्छित और रथ मे स्थित दुर्योधन क
। आता हुआ सारथि प्रवेश करता है)

(सारथि घबराहट के साथ घूमता है)

(नेपथ्य मे)

ज-बल के दर्प से महासमर की अभिलाषा करने वाले, कौर
। के कारण प्राणरूपी धन-राशि को दाँव पर लगाने वाले
रण-क्षेत्र से भागती हुई सेनाओं को, जिनके शस्त्र मारे गये
से बचे रुधिर में स्नान करने से बीभत्स वेष वाले भीम
कारण गिर रहे हैं, रोको, रोको।

सूत—(देखकर) कैसे ! श्वेत चञ्चल चामर से चुम्बित स्वर्ण-क
र पर लगी ध्वजा से पहचाने गये और मरे हुए सहस्रों हाथि
। मनुष्यों के शरीरों की भीड़ से ऊँची नीची भूमि पर प्रतिघात
र ध्वनि करने वाले छोटे २ घुंघरुओं के समूह की माला वाले
, बाणों की वर्षा से शत्रु-सेना के पराक्रम की गति को रोक
। भागती हुई सेना को सान्त्वना देते हुए कृपाचार्य अर्जुन द्वारा
गये कर्ण की ओर आ रहे हैं। आहा ! (अब) हमारी सेनाओं क
या।

(नेपथ्य मे कलकल ध्वनि के पश्चात्)

हमें देखकर भय से गिरे हुए धनुष, तलवार तोमर और शक्ति
सेना के वीरों और पाण्डवों के पक्षपाती योद्धाओं, डरो नहीं,
ने दुःशासन के पीन वक्षःस्थल का रुधिर रूपी आसव पीने

विरपुर.स्थलं नस्य यत्सलग्नं रक्तं तदेवा स वस्तस्य पानेन यो
] पीवरं मागलम्। [रभस: वेगस्तेन गन्तुं शील यस्य स
ो शिनिस्तात्पर्यीत्ये इति शिनि:। स्तोकमवशिष्ट:

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] दुर्योधनो [illegible] [illegible]
[illegible] ।

राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः
प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य मिषतः कर्णस्य शल्यस्य च।
पीतं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः
कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ॥१॥

सूतः—(श्रुत्वा ससंभ्रमम्) अये आगत एव दुरात्मा कौरवराजपुत्र[illegible] [illegible] मारुतिः । अदृश्यशरीरस्य तावदत्र महाराजः । भवतु । [illegible] प्रहरामि स्यन्दनम् । कदाचिद् दुःशासन इवाभिप्रायमनार्योऽनार्य[illegible] (त्वरिततरं परिक्रम्यावलोक्य च) अये अयमसौ सरसीसरोजविलेपन[illegible] शीतलमानरिवसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः । उचिता विश्रा[illegible] समरव्यापारखिन्नस्य वीरजनस्य । अत्र स्थितस्यावाधिनवातनुरेव हरिचन्द[illegible] कल्पशीतलेनाप्रयत्नसुरभिणा दक्षानिलेनाश्वयोगेन सरसीसलिलेनानुना [illegible] भविष्यति महाराजः । सूनसेनुश्वायं रथो निवारित एव प्रवेशनि [illegible] (इति प्रवेशं रूपयित्वा) कः कोऽत्र भोः । (समन्तादवलोक्य) कथं न कश्चि[illegible] परिजनः । नूनं तथाविधस्य वृकोदरस्य दर्शनादेवंविधस्य च स्वामिन[illegible]

यस्य ।] पृथायाः पुत्राः पार्थास्तेषु मध्यमः ।

राज्ञ इति । [मिषतः पश्यतः ।] मृषतः सहिष्णोः । कोष्णमीषदुष्णं [illegible] कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णम् इत्यमरः । तस्य दुःशासनस्य । कराज्जातैः [illegible] करजानि नखानि तैः क्षुण्णात् ।] वक्षसो हृदयात् । असृङ् मया पीतमित्यन्वयः । करजो नखः ॥१॥

[कौरवराजस्य पुत्राः कौरवाश्च ते राजपुत्रा वा त एव महावन तस्यां[illegible] मारुतः प्रभञ्जनः । मारुतिर्भीमः । सरसी सरः तस्याः सरोजानां कमल[illegible] विलोलनं विलोडनं परिमलनमित्यर्थः । तेन सुरभिश्चासौ शीतलश्च [illegible] [illegible] [वायु.] तेन संवाहितास्संचालिताः सान्द्राः किसलया यस्य ।] न्यग्रो[illegible]

मत, वेगपूर्ण गति वाला, थोड़ी ही शेष बची प्रतिज्ञा रूपी महोत्सव वाला, कौरवों के राजा का जूए में जीता हुआ दास, पृथा के पुत्रों में मझला, मैं भीमसेन आप सब लोगों को साक्षी करता हूँ। सुनिये—

मान को ही धन समझने वाले, धनुर्धारी राजा दुर्योधन के सामने, कुरुओं के मित्रों की उपस्थिति में और कर्ण तथा शल्य के देखते देखते, आज मैंने पाण्डवों की वधू के केश एवं वस्त्रों को खींचने वाले, उस जीवित ही (दुःशासन) के पैने नखों से विदीर्ण वक्षःस्थल से गरम रुधिर का पान किया है ॥१॥

सूत—(सुनकर भय से) अरे! कौरव राजकुमारों रूपी महान् वन के लिये उत्पात-वायु दुष्ट भीम (मरुत् का पुत्र) समीप ही है और यहाँ अभी महाराज की चेतना नहीं लौटी है। अच्छा, रथ को बहुत दूर ले जाता हूँ। कभी वह दुष्ट दुःशासन के समान इनके साथ भी दुष्कृत्य करे। (और तेजी से घूमकर और देखकर) अरे! यहाँ (सामने) यह जलाशय के कमलों को छूने से सुगन्धित और शीतल वायु द्वारा हिलाये जाते हुए घने पत्तों वाला वट-वृक्ष है। यह युद्ध-कर्म से श्रान्त वीर पुरुष के योग्य विश्राम-स्थान है। इस जलाशय के वायु से, जो बिना मांगे (प्राप्त) पंखे के समान है, जो लाल चन्दन की राशि के समान शीतल है, जो बिना प्रयास के ही सुगन्धित है और जो वर्तमान दशा में उचित है, यहाँ स्थित महाराज श्रम-विहीन हो जायेंगे। कटी हुई ध्वजा वाला यह रथ बाधा के बिना ही छाया में चला जायेगा। (प्रवेश का नाट्य करके) अरे! यहाँ कोई है? (चारों ओर देखकर) यहाँ कोई सेवक क्यों नहीं है? अवश्य ही, उस प्रकार (रुधिर में लिपटे) भीम को और इस प्रकार (मूर्छित) महाराज को देखकर भय के कारण पड़ाव में ही

वटुपाढट: इत्यमरः। अयाचिततालवृन्तं स्वयमुपस्थितव्यजनम्। हरिचन्दनं चन्दनभेदः। [तस्य -घट्टावच्छीतलेन। दशा मूर्च्छावस्था तस्याः परिणामः परिवर्तः। निवर्तनमिति यावत्। तस्य योग्येन। परिणामो विपाकः। [अनिवारितः। अनिरुद्धः।] प्रवेक्ष्यति प्रवेशं करिष्यति। छत्रमित्याद्यानीयमानमिति दीपः।

शिबिरसंनिवेशमेव प्रविष्टः । कष्टं भोः कष्टम् ।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः
क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म ।
दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां
नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ॥३॥

(राजानमवलोक्य) कथमद्यापि न चेतनां लभते महाराजः । भोः क
(निःश्वस्य) ।

मदकलितकरेणुभज्यमाने विपिन इव प्रकटैकशालशेषे ।
हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिंस्त्वमपि विधेरवलोकितः कटाक्षैः

ननु भो हतविधे, भरतकुलविमुख ।

अक्षतस्य गदापाणेरनारूढस्य संशयम् ।
एषापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ॥४॥

दुर्योधनः—(शनैरुपलब्धसंज्ञः) आः शक्तिरस्ति दुरात्मनो वृकोदरहत[क]स्य
[अ]पि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञां पूरयितुम् । वत्स दुःशासन, न भेतव्यं न भेतव्य[म्]
[अ]यमहमागतोऽस्मि । ननु सूत, प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वत्सो मे दुःशासनः ।

सूतः— आयुष्मन् अक्षमाः संप्रति वाहास्ते रथमुद्वोढुम् । (आत्मगतं)
मौरथं च ।

दत्त्वेति । पार्थादभयं दत्त्वापि द्रोणेन सिन्धुराजो न रक्षित इत्यन्वयः ।
[भी]मसेनेन प्रतिज्ञां पूरयित्वा कर्म कृतमित्यन्वयः । समरे अरीणां दुःसाध्यां दु[ः]
[सा]ध्याम् [अपि प्रतिज्ञां लघुमिव पूरयित्वा कुरुकुलविमुखं दैवं एतावतापि
[सका]मं न मन्ये इत्यन्वयः ।] दुर्गमिव कर्मातिशीघ्रं कृतमित्यर्थः । लघुम् इ[ति]
[प]्रतिज्ञाविशेषणम् । वस्तुतो गुर्वीमपि लघ्वीमिवेत्यर्थः । एतावतापि दै[वं]
[कु]रुकुलविमुखं नाहं मन्ये । अपि त्वद्वशमपि करिष्यतीति भावः । कुरुकुलविमु[खं]
... कुरुकुलनाशे सकामं पूर्णमनोरथं दैवं नाहं मन्य इत्यर्थः ॥३॥

मदेति । मदेन मत्तया कलितः गृहीतः करेणुर्हस्तिनी [तेन भज्यमाने]।

ले गये हैं। ओह ! बड़े दुःख की बात है।

अर्जुन से अभय देकर द्रोण सिन्धु-राज (जयद्रथ) की रक्षा न कर सका; भीमसेन ने इस दुःशासन के प्रति हरिण के समान क्रूर कर्म किया। मैं समझता हूँ कि कुरु-कुल का प्रतिकूल दुर्दैव युद्ध में शत्रुओं की असाध्य प्रतिज्ञा को भी क्षुद्र के समान पूरी करा कर अभी इतने से सन्तुष्ट नहीं हुआ है ॥२॥

(राजा को देखकर) कैसे अब भी महाराज होश में नहीं आ रहे हैं? ओह ! दुःख है। (गहरा सांस लेकर)

उस वन के समान, जो मदयुक्त हाथी से तोड़ा जा रहा है और जिसमें केवल एक बचा हुआ साल का पेड़ ही दीख पड़ रहा है, इस कुल मे, जिसके सब कुमार मार दिये गये हैं, तुझे भी दैव की तिरछी दृष्टि ने देख लिया है ॥३॥

हे भरत कुल से पराङ्मुख, अधम भाग्य,
विना घायल हुए और विना संशय में पड़े हुए ही, गदाधारी भीमसेन की यह प्रतिज्ञा भी तुम्हारे द्वारा पूरी की जा रही है ॥४॥

दुर्योधन—(धीरे धीरे चेतना प्राप्त करके) आह ! मुझ दुर्योधन के जीवित रहते दुष्ट भीमसेन में क्या शक्ति है? वत्स दुःशासन, न डरो, न डरो। मैं यह आ पहुँचा। सारथि, मेरे रथ को उस ही जगह ले चलो, जहाँ मेरा वत्स दुःशासन है।

सूत—आयुष्मन्, अब घोड़े आपके रथ का वहन करने में असमर्थ हैं। (एक ओर को होकर) और मनोरथ का भी।

...टः स्फुटः एकः शालः शाखाकुतरुशेषमात्रं वा शेषोऽवशेषो यत्र तस्मिन्। ...लः शाखुतरुमंतः इति विश्वः। अनोकहः कुटः शालः इत्यमरः। हे ...जंस्त्वमपि ॥३॥

अक्षतस्येति। [सदापं दुर्योधनस्य गदायुद्धनैपुण्यात्कदाचिदात्मनः पराभवः ...दिति शाङ्काम्] अनाहतस्य अगतस्य ॥४॥

स्वैरं मन्द यथा स्यादेवं। वाहोऽश्वः। वाजिवाहार्वगन्धर्वं इत्यमरः।

दुर्योधनः—(रथादवतीर्य सगर्वं गाढम् च) कृतं स्यन्दनगमनकालातिपा

सूतः—(सवैलक्ष्यं सकरुणं च) मर्षयतु मर्षयत्वायुष्मान् ।

दुर्योधनः—धिक् सूत किं रथेन । केवलमरातिविमर्दसंघट्टसंचारी दुर्यो
वल्यहम् । तद्वदाशाप्रहारः समरभुवमवतरामि ।

सूतः—आयुष्मन् एवमेतत् । कः संदेहः ?

दुर्योधनः—दत्तेयं किमेवं भाषसे । पश्य—

वालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः
पापं व्यवस्यति समक्षमुदायुधोऽसौ ।
अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां
क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्ति लज्जा ॥५॥

सूतः—(सकरुणं पादयोर्निपत्य) एतद्विज्ञापयामि । आयुष्मन् संपूर्णप्रति-
निवृत्तेन भक्षितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन । अत एवं ब्रवीमि ।

दुर्योधनः—(सहसा भूमौ पतन्) हा वत्स दुःशासन, हा मदाज्ञाविधेय
पाण्डव, हा विक्रमैकरस, हा मदङ्कदुर्ललित, हा अरातिकुलगजघटामृगेन्द्र
हा युवराज क्वासि । प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् । (इति निःश्वस्य मोहमुपगतः)

सूतः—राजन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—(संज्ञां लब्ध्वा निःश्वस्य)

भुक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन ।

मनोरथं च । मनोरथमप्युद्बोद्धुमक्षमा इति शेषः । [साकूतं साभिप्रायम्
अरातीनां विमर्दो नैरन्तर्येणावस्थानं तेन संघट्टो यस्य तथा संचरितुं शीलमस्य ।]
बालस्येति । [प्रकृतिदुर्ललितस्य स्वभावचपलस्य ।] पापं नाशरूपम् । अत्र
संभावनायाम् । क्रोधस्ते नास्ति । करुणापि न । लज्जापि न । इत्यन्वयः ।
करुणापि नेत्यत्र नकारस्यावृत्तिः । यद्वा क्रोधो न नापि करुणा इति पाठः ॥५॥
अरातीनां कुलं समूह एव गजघटा तस्याः सिंहः ।

दुर्योधन—(रथ से उतरकर गर्व और व्यङ्ग्य के साथ) रथ में चल कर समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

सूत—(लज्जा और करुणा से) क्षमा कीजिये, आयुष्मान्, क्षमा कीजिये।

दुर्योधन—ओह ! सूत, रथ से क्या होगा ? मैं केवल शत्रुओं की भीड़ से टकराकर चलने वाला दुर्योधन हूँ। इसलिये केवलमात्र गदा साथ लेकर युद्ध-भूमि में उतरता हूँ।

सूत—आयुष्मन्, ऐसा ही है। इसमें क्या सन्देह है ?

दुर्योधन—यदि ऐसा है तो फिर इस तरह क्यों कह रहे हो ? देखो—

आयुध उठाये वह पापी (भीमसेन) सामने स्वभाव से हठी मेरे वत्स पर दुष्कर्म करने का प्रयत्न कर रहा है, (तब) इस विषय में व्यवसाय (प्रयत्न) करने वाले मुझे तुम क्यों रोक रहे हो ? तुम्हें क्रोध, करुणा और लज्जा नहीं आती ? ॥५॥

सूत—(करुणापूर्वक पैरों मे पड़कर) आयुष्मन्, मेरा यह निवेदन है कि वह दुष्ट, नीच भीमसेन प्रतिज्ञा पूर्ण करके निवृत्त हो चुका होगा। इसीलिये ऐसा कह रहा हूँ।

दुर्योधन—(वेग से भूमि पर गिरते हुए) हाय, वत्स दुःशासन ! हाय, मेरी आज्ञा से पाण्डवों को विरुद्ध करने वाले ! हाय, पराक्रम में एकमात्र आनन्द लेने वाले ! हाय, मेरे अङ्क के आग्रही ! हाय, शत्रु-समूह रूप हाथियों के मुंड के लिये सिंह समान ! हाय, युवराज ! तुम कहाँ हो ? मुझे प्रत्युत्तर दो (यह कहकर लम्बा सांस लेकर मूच्छित हो जाता है)।

सूत—राजन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

दुर्योधन—(चेतना पाकर और गहरा सांस लेकर)।

व्यर्थ ही बड़े भाई (बने हुए) मैंने न तो (तुम्हें) यथेच्छ भोग के सुखों मे छोड़ा, और न ही (तुम्हें यथेच्छ) क्या। परन्तु, हे वत्स, मैं तुम्हारी इस विपत्ति का कारण

युक्त इति। युक्तो योजितः। हिरवधारणे। मया नैव त्वं न लालितो (?) ...म नीतः। कीदृशेन मया। वृथा [निष्फल लालनादिकर्मतरत्वाद्]

अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्ते-

र्यत्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ॥६॥

(इति पतति)

सूतः—आयुष्मन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—सूत, किमाश्वसिमि मन्दः ।

रक्षणीयेन सततं बालेनाज्ञानुवर्तिना ।

दुःशासनेन भ्राताहमुपहारेण रक्षितः ॥७॥

सूतः—महाराज, मर्मभेदिभिरिपुतोमरशक्तिप्रासवर्षैर्महारथानाम् त्वामिरचेष्टः कृतो महाराज इत्यपहृतो मया रथः ।

दुर्योधनः—सूत, विरूपं कृतवानसि ।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे

क्षोदैर्गदाशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि ।

तामेव नाधिशयितो रुधिरार्द्रशय्यां

दौःशासनीं यदहमाशु वृकोदरो वा ॥८॥

(निःश्वस्य नभो विलोक्य) ननु भो हतविधे कृपाविरहित भरतकुलवि

अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः ।

सूतः—शान्तं पापं शान्तं पापम् । महाराज, किमिदम् ।

दुर्योधनः—

जायतेऽस्मौ तेन] कृपाग्रजेन निष्फलज्येष्ठेन । [मदस्मारकारणात्] ॥६॥

रक्षणीयेनेति । रक्षणीयेन रक्षणार्हेण । दुःशासनेनोपहारेण [दुःशासनस्य पदादानेनेत्यर्थः ।] रक्षितस्त्वयेति शेषः ॥७॥

[महारथानां महारथकृतैः । मर्माणि भेत्तुं शीलं येषां तैः मर्मभेदिभि रिपुतोमराविनर्पैः । निरचेष्टः प्रतीकाराक्षम इत्यर्थः । विरूपमयोग्यम् ।

तस्यैवेति [यद् यस्मात् मे अनुजं द्वेष्टीति अनुजद्विट् तस्य । पाण्डवं

न गया, क्योंकि मैंने तुमसे मर्यादा-हीन आचरण तो कराया, पर तुम्हारी
.. रा नहीं की ॥६॥

(यह कहकर गिर गिर पड़ता है) ।

सूत—आयुष्मन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

दुर्योधन—सूत, धिक्कार है ! आपने क्या कर दिया ?

रक्षा किये जाने योग्य, हमेशा आज्ञा-पालक बालक, भाई दुःशासन को
ति देकर (हमें) बचाया ॥७॥

सूत—महाराज, महारथियों की मर्म-भेदी बाण, तोमर, शक्ति और भालों
ी वर्षा ने महाराज की चेतना अपहरण करके निश्चेष्ट कर दिया था, इसलिये
रथ को दूर ले आया ।

दुर्योधन—सूत, तुमने अनुचित किया—

कि मैं मेरे छोटे भाई के शत्रु उस पशु-तुल्य पाण्डव की गदा रूपी वज्र
ारा किये गये प्रहारों से न जगाया गया; अथवा, जो मैं या भीम
-शासन की उस ही रुधिर से गीली शय्या पर नहीं सोया ॥८॥

(लम्बा साँस लेकर आकाश की ओर देखकर) ओ निर्दय, भरत-कुल-
ाद्पुत्र, दुर्भाग्य,

क्या यह सम्भव है कि (अब) मेरी मृत्यु हो जाय, परन्तु मारने वाला
ोदर (भीम) न हो ।

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । महाराज, यह क्या ?

दुर्योधन—

चितकर्मत्वात्पशुरिव पाण्डवपशुः तस्य गदा एव अशनिः वज्रं गदाशनिस्तेन
. धोरैः पेषणैः प्रहारैरिति यावत् । विबोधितोऽस्मि प्रत्याहृतचेतनोऽस्मि ।
ासनीं दुःशासनसम्बन्धिनीम् । तामेव शय्यां नाधिशयितोऽहं तत्रैव न शयितः ।
चोऽस्यासा कर्म इत्याधारे कर्म । वृकोदरो वा नाधिशयितस्तामेव शय्याम् ।
ाविरूप हतवानसीति पूर्वेण सम्बन्धः] ॥८॥
अपि नामेति । नाम संभावनायाम् । मृत्युरपि मे भवेन्न च वृकोदरो हन्ता

घातितानेपबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा ॥९॥

(ततः प्रविशति शरप्रहारव्रणबद्धपट्टिकालंकृतकायः सुन्दरकः)

सुन्दरकः – आर्याः, अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युष्माभिर्महा-
राजदुर्योधनो न वेति। (निरूप्य) कथं न कोऽपि मन्त्रयते। भवतु। एते
बद्धपरिकराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यते। अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (परिक्र-
विलोक्य च) कथमेते खलु स्वस्वामिनो गाढप्रहारहतस्य घनसंनाहजालदुर्भेद्य-
कङ्कटवलेह्य बयाच्छल्यान्युद्धरन्ति। तन्न खल्वेते जानन्ति। भवतु। अन्य-
विचेष्यामि। (अग्रतोऽवलोक्य किंचित्परिक्रम्य) इमे खल्वपरे प्रभूततराः सं-
वीरमनुष्या दृश्यन्ते। तदत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (उपगम्य) हंहो आर्याः
कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति। (दृष्ट्वा) कथमेतेऽपि मां प्रेक्ष्याधिक-
रुदन्ति। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। हा अतिकरुणं खल्वत्र वर्तते। एषा वीर-
माता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया समप्रभूषणया व-
सहानुम्रियते। (सश्लाघम्) साधु, वीरमातः, साधु। अन्यस्मिन्नपि जन्मनि
अनिहतपुत्रका भविष्यसि। भवतु। अन्यतो विचेष्यामि। (अन्यतो विलोक्य)
अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इमं शून्यासनं तुरङ्ग-
मुपालभ्य रोदिति। नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादितः। तन्न खल्वेतेऽपि
जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा प्रक्ष्यामि। (सर्वतो विलोक्य कथं ह्ता

भवेदिति प्रार्थनायां लिङ्। [मरणं ममेष्टं किंतु न वृकोदरहस्तादिति
भावः] ॥९॥

व्रणेषु क्षतेषु बद्धा या पट्टिका पाटी इति प्रसिद्धा तयालंकृतकायः। आर्याः
अपि नामेति प्रश्ने। अस्मिन्नुद्देशे प्रदेशे दृष्टो न हि वा। कथं वा प्रेक्ष्याधिकम्
रुदन्ति। तन्नखल्वेतेऽपि जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा पृच्छामि। एते
बद्धपरिमण्डलानां पुरुषाणां समूहो दृश्यते भवतु। अत्र गत्वा पृच्छामि।
कथमेते खलु स्वामिनो गाढप्रहारहतस्य घनसंनाहजालदुर्भेद्यमुखैः [घनः
संनाहः कवचस्तस्य जालं तेन दुर्भेद्यं मुखं येषां तैः कङ्कमुखैः शस्त्रविशेषैः]
एते बहुतराः संमिलिता वीरमनुष्या दृश्यन्ते। हा हा अतिकरुणं खल्वत्र वर्तते।
कथमेषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रं प्रेक्ष्य रक्तांशुकयुगनेपथ्यया सर्वाङ्गभूषणया

(क्योंकि अब) मुझे, जिसके सब के सब बन्धु मार डाले गये हैं, राज्य से या विजय से क्या (लाभ है) ॥६॥

(तत्पश्चात् बाणों के प्रहार से हुए घावों पर बंधी पट्टियों से सुशोभित शरीर वाला सुन्दरक प्रवेश करता है)

सुन्दरक—आर्य लोगों, क्या आप लोगों ने इस जगह सारथि-सहित महाराज दुर्योधन को (कहीं) देखा है या नहीं ? (ध्यान से देखकर) कैसे ? कोई भी नहीं बोल रहा है ? अच्छा, यह कमर कसे हुये लोगों का समूह दिखलाई दे रहा है। वहाँ चलकर पूछूँगा। (घूमकर और देखकर) कैसे ? ये सब गाढ़ प्रहारों से हत हुये अपने २ स्वामी के वक्ष स्थल से चिमटियों द्वारा, जिनके मुख दृढ़ कवच के जाल से भी नहीं टूट सकते हैं, काँटे निकाल रहे हैं। तब यह नहीं जानते होंगे। अच्छा, अन्यत्र खोजता हूँ। (आगे देखकर और कुछ चलकर) ये और दूसरे और भी अधिक एकत्र हुये वीर पुरुष दीख रहे हैं। तो वहाँ चलकर पूछता हूँ। (समीप जाकर) क्यों, आप लोग जानते हैं कि कौरव-राज किस जगह हैं ? (देखकर) कैसे ? यह भी मुझे देखकर और अ रोने लगे ! तब यह भी नहीं जानते। ओह ! यहाँ तो बड़ा ही करुणाज (दृश्य) है। यह वीर पुरुष की माता युद्ध में मारे गये पुत्र की बात सुन लाल रेशमी वस्त्रों से ढकी हुई और सम्पूर्ण आभूषण धारण किये वधू के स अनुमरण कर रही है। (प्रशंसा के साथ) धन्य हो वीर-माता, धन्य हो। अ जन्म में न मारे गये पुत्र वाली होगी। अच्छा, अन्यत्र खोजूँगा। (दूसरी अ देखकर) यह योद्धाओं का दूसरा समूह है, जो अनेक प्रहारों से शरीर के घा होने पर घावों को बाँधे बिना ही इस खाली काठी वाले घोड़े को उपाल कर रो रहा है। अवश्य इनका स्वामी यहीं मार दिया गया है। तब यह नहीं जानते हैं। अच्छा, दूसरी जगह चलकर पूछता हूँ। (चारो ओर देखकर

ध्वा समनुम्रियते। अयि वीरमातः मा त्वमन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरे विनिहत त्रका भविष्यसि। [अन्यत् जन्म जन्मान्तरं तस्मिन्। प्रस्तुतजन्मान्तरादप स्मिन्नित्यर्थः।] अयमपरो बहुप्रहारव्रणितकायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इम

एवास्यानुरूपं व्यसनमनुभवन्भागधेयविमुखतया पर्याकुलो जनः। [illegible] प्रक्ष्यामि। कं वोपालप्स्ये। भवतु। स्वयमेवात्र विचेष्यामि। (परिक्रम्य) दैवमिदानीमुपालप्स्ये। हंहो दैव, एकादशानामक्षौहिणीनां नायो जातस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्यकृपकृतवर्माश्वत्थामप्रमुखस्य सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते। न ज्ञायते कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति। (विचिन्त्य नि:श्वस्य च) अथ वैयमुपालभे। तस्य खल्विदं निर्भर्त्सितविदुरवचनबीजस्यावधीरितपितृ पदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनादिविरूढमूलस्य जतुगृहद्यूतविषदानादि चिरकालसंबद्धवैरालवालस्य पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परि(णमति।) (अन्यतो विलोक्य) यथायं विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसर सहस्रसंपूरितदशदिशामुखो लूनकेतुवंशो रथो दृश्यते तथाहं तर्कयामि महाराजदुर्योधनस्य विश्रामोद्देशेन भवितव्यमिति। यावन्निरूपयामि। (दृष्ट्वा नि:श्वस्य च) कथमेकादशानामक्षौहिणीनां नायको भूत्वा महाराजो [illegible] मातृपुरुष इवाश्लाघनीयायां भूमावुपविष्टस्तिष्ठति। अथ वा तस्य पाञ्चालीकेशग्रहकुसुमस्य फलं परिणमति।

(अवस्था [illegible] णाम इयम्भि उद्देसे सारहिदुइओ दिट्ठो तुम्हेहिं [illegible] अहुरओदुण्णो ण वेमि। कह ण को वि मन्तेदि। होदु। एदाणं [illegible] दुरिसाणं समूहो दीसइ। [illegible] पुच्छिस्सम्। [illegible] एदे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हिअआदो [illegible] [illegible]। [illegible] आअच्छन्ति। होदु। अण्णदो विचिणइस्सं। [illegible] दीसन्ति। ता एत्थ [illegible] पुच्छिस्सं। [illegible] [illegible] कुमारो [illegible]। [illegible] एदे वि [illegible] [illegible]। [illegible] आअच्छन्ति। हा [illegible] एत्थ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] ([illegible]) [illegible]। [illegible]
[illegible]। [illegible]

ते सब ही लोग भाग्य के विपरीत होने के कारण अपनी अवस्था के अनुरूप
नीति भोगते हुये व्याकुल हो रहे हैं। इसलिये यहाँ किससे पूछूँ या किसे
उपालम्भ दूँ ? अच्छा, यहाँ मैं स्वयं ही पता लगाऊँगा। (घूमकर) अच्छा अब
मैं भाग्य को ही उपालम्भ देना चाहिये। वाह रे भाग्य, ग्यारह अक्षौहिणी
सेनाओं के ईश्वर, सौ भाइयों में सबसे बड़े, भीष्म, द्रोण, कर्ण शल्य, कृप,
कृतवर्मा और अश्वत्थामा प्रमुख राज-समूह के स्वामी, सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल के
एकछत्र अधिपति महाराज दुर्योधन को भी खोजा जा रहा है ! और खोजने
पर भी पता नहीं लग रहा कि किस जगह है। (सोचकर और लम्बा साँस
लेकर) अथवा इसके लिये भाग्य को भी क्या दोष दूँ ? क्योंकि यह तो उस
लाक्षागृह-द्यूत-विष रूप वृक्ष का फल है, निरस्कृत विदुर का वचन जिसका
बीज है, अवहेलना किया गया पितामह का हितकारी उपदेश जिसका अंकुर
है, शकुनि के प्रोत्साहन आदि से जिसकी जड़ मजबूत हुई है, उत्पन्न हुआ और
बहुत काल से बँधा हुआ वैर जिसका थाँवला है और द्रौपदी का केश-ग्रहण
जिसका कुसुम है। (दूसरी ओर देखकर) जैसे कि यहाँ एक कटे हुए ध्वज-
दण्ड वाला रथ दीख रहा है, जो अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से मिश्रित
सूर्य की किरणों से उत्पन्न सहस्रों इन्द्र-धनुषों द्वारा दसों दिशाओं के भागों
को भर रहा है, इससे अनुमान करता हूँ कि यही महाराज दुर्योधन का
विश्राम-स्थल होगा। तब ध्यान से देखता हूँ। (समीप जाकर देखकर और
लम्बा साँस लेकर) कैसे ग्यारह हजार अक्षौहिणी सेनाओं का स्वामी होकर
महाराज दुर्योधन सामान्य पुरुष के समान यहाँ अप्रशस्त भूमि पर बैठा हुआ
है। अथवा यह द्रौपदी के केश-ग्रहण रूपी कुसुम का फल पक रहा है।

...नया बाष्पपर्याकुलो जनो दृश्यते। [अवस्थानुरूप स्वस्वावस्थासदृशम्।]
...मिदानीमत्र पृच्छामि। कं वोपालभे। भवतु। दैवमुपालभे। दतस्तस्य
...र्शिनि निर्भर्त्सितं तिरस्कृत यद्विदुरवाक्यं तत्। विदुरवाक्यनिर्भर्त्सनमित्यर्थः
...यस्य तथोक्तस्य। अवधीरितः पितामहस्य हितः उपदेश एवाङ्कुरो यस्य
... अनुनः इह जतुगृहं च द्यूतं च विष भीमाय विषदानं चैव शाखा विद्यन्ते
...तस्य। सम्भूतं च तच्चिरकाल संवद्धं यद्वैरं तदेवालवालं जलावापप्रदेशो यस्य]

हुविस्ससि । होदु । अण्णदो विचिणइस्सम् । अअं अवरो बहुप्पहारणिहद... अकिदव्वणप्पडिआरो एव्व जोहसमूहो इम सुण्णासणं तुरङ्गमं उवालहिअ रोदि... णूण एदाण एत्थ एव्व सामी वावादिदो । ता ण हु एदे वि जाणन्दि । होदु । अण्णदो गदुअ पुच्छिस्सम् । कह सव्वो एव्व अवत्थाणुरूवं व्वसण अणुहवन्तो भाअधेअविमुक्कदाए पज्जाउलो जणो । ता क एत्थ पुच्छिस्सम् । कं वा उवा... हिस्सम् । होदु । सअ एव्व एत्थ विचिणइस्सम् । होदु । देव्वं दाणी उवालहिस्स... हहो देव्व एआदसाण अक्खोहिणीणं णाहो जेट्ठो भादुसदस्स भत्ता गङ्गेअद्दोण... राअसल्लकिवकिदवम्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअचक्कस्स सअलप्पुहवीमण्डलेक्कणाहो महाराअदुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि । अण्णेसीअन्तो वि ण जाणीअदि कस्सिं उद्देसे वट्टइ त्ति । अह वा किं एत्थ देव्व उवालहामि । तस्स क्खु एदं णिक्क... च्छिअविउरवअणबीअस्स अवहीरिदपिदामहहिदोवदेसङ्कुरस्स सउणिप्पोत्स... हणादिविरूढमूलस्स जदुगेहज्जूदविसदाहिणो सम्भूदचिरआलसंबद्धवेरालवाल... पञ्चालीकेसग्गहणकुसुमस्स फल परिणमदि । ऊहा एत्थ एसो विविहरअणप्पहाजालि... लिदसूरकिरणप्पसूदसक्कचावसहस्सपूरिददसदिसामुहो सूणकेदुवंसो रहो दीसइ । अहं तक्केमि अवस्स एदिणा महाराअदुज्जोहणस्स विस्सामुद्देसेण होदव्वम् । ... णिरूवेमि । कध एआदसाण अक्खोहिणीण णाअको भविअ महाराओ दुज्जोहणो पदपुरिसो विअ असमाहदाणीए भूमिए उवविट्ठो चिट्ठदि । अध वा तस्स क्खु एदं पञ्चालीकेसग्गहकुसुमस्स फल परिणमदि ।]

(उपसृत्य सून मयथा पृच्छति)

सूत:—(दृष्ट्वा) अये कथं सङ्ग्रामात्सुन्दरकः प्राप्तः ।

सुन्दरकः—(उपगम्य) जयतु जयतु महाराजः । [जअदु जअदु महाराओ ।]

दुर्योधनः—(विलोक्य) अये सुन्दरक. । सुन्दरक, कच्चित्कुशलमङ्गराजस्य ।

सुन्दरकः—देव, कुशलं शरीरमात्रेण । [देव कुसलं सरीरमेत्तेण ।]

दुर्योधनः—(ससंभ्रमम्) सुन्दरक, किं किरीटिनास्य निहता धौरेया हयाः सारथिर्भग्नो वा रथः ।

सुन्दरकः—देव, न भग्नो रथः । भग्न मनोरथोऽपि । [देव ण भग्गो रहो । ... मणोरहो वि ।]

... । ... अस्मां दया येन विविधरत्नप्रभाजालज्वलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचापसहस्रपूरितदश... [निपि...

(समीप जाकर सारथि से संकेत द्वारा पूछता है)

सूत—(देखकर) अरे क्या ? युद्ध-भूमि से सुन्दरक आया है ?

सुन्दरक—(समीप आकर) जय हो, महाराज की जय हो ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे सुन्दरक है ! सुन्दरक, अङ्गराज कुशल से हैं ?

सुन्दरक—देव, केवल देह मात्र से कुशल हैं ।

दुर्योधन—(घबराहट से) सुन्दरक, क्या अर्जुन ने इसके घोड़े मार डाले, मार दिया या रथ तोड़ दिया ?

सुन्दरक—देव, रथ ही नहीं तोड़ दिया, प्रत्युत इसका मनोरथ भी ।

रत्नानां प्रभा विविधा वा रत्नप्रभाः ताभिः सवलिता मिश्रिता ये सूर्य-रश्मयः प्रभूतं शक्रचापसहस्रं तेन सपूरितानि दशाना दिशां मुखानि येन ...दिङ्मुखो...तथा तर्कयामि...रयोद्देशेन भवितव्यम् । भवतु । उपसर्पामि ...देव एकादशानामक्षौहिणीनां नाथो महाराजदुर्योधनोऽश्लाघनीय. ...पुरुष इव भूमावुपविष्टस्तिष्ठति । नून तस्य सत्वेऽश्लाघानीयेऽपग्रह-...परिणमति । अत्र परिमण्डलं मण्डली । कङ्कुवदनं सदसिका । ...इति पाठे रणबन्धः सङ्ग्रामानुबन्ध. । नैपथ्यं प्रसाधनम् । ...प्रतिकर्म प्रसाधनम् इत्यमरः । वत्सा पुत्रवत्सा । भागधेयं ...नामन्यो धेनः इति वैश्वरूपः । शीलतया कालावस्थानुरूपमित्यन्वय । ...दम्भो । पितामहो भीष्मः । बालघातं पलम् इति प्रसिद्धम् । अम्बो ...देवी मातारौ इर्षातो वा । भास्वरः परप्रकाशकः । संगलितः ...सः सूर्यकिरण आदित्यतेज. । उत्तमरत्नतेजोभिरिन्द्रधनूंरारम्भत इति ...। प्रदेशः प्रदेश. । प्राकृतः पामरः । स्वागतं सुस्वागतम् । सारथे सूतः ...निवेदय ममागमनं देवस्य । जयति देवः । कविरत्नामप्रवेदने ...। देव कथवेत्यर्थः । देव कुशलं स्वामिनः शरीरमात्रेणैव । धौरेया ...। धुरं वहन्तीत्यर्थे धुरो यड्ढौ इति ढकि धौरेय इति साधु ॥ देव न हि

दुर्योधनः—(सरोषम्) किमर्धोक्तस्तिष्ठसि पर्याकुलः
हृदयम् । तदशेषतो विस्पष्टं कथ्यताम् ।

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति । अये देवस्य मुकुटमणिप्रभावेणापनीत
रणप्रहारवेदना । (इति साटोपं परिक्रम्य) शृणोतु देवः । अस्तीदानीं कु
दुःशासनवध—(इत्यर्धोक्ते मुखमाच्छाद्य शङ्कां नाटयति ।) [जं देवो आणवे
अए देवस्स मउडमणिप्पहावेण अवणीदा मे रणप्पहारवेअणा । सु
देवो । अत्थि दाणीं कुमालदुस्सासणवह—

सूतः—सुन्दरक, कथय । कथितमेव दैवेन ।

दुर्योधनः—कथ्यताम् । श्रुतमस्माभिः ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्षितेन स
नाङ्गराजेन कुटिलभ्रुकुटीभङ्गभीषणनिटिलपट्टेनाविज्ञातसंधानमोक्षनि
संधातवर्षिणा अभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवो भीमसेनहतकः । [सु
देवो । अज्ज दाव कुमारदुस्सासणवहामरिसिदेण सामिणा अङ्गराएण कु
भिउडीभङ्गभीसणणिडलवट्टेण अविण्णादसंधाणमोक्खसिलीमुहसंघादवरि
अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो भीमसेणहदओ ।]

उभौ—ततस्ततः

सुन्दरकः—ततो देव, उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्भूत
निकरेण पर्यस्तगजघटासंघातेन च विस्तीर्यमाणेनान्धकारेणान्धीकृतमुभयबल
न खलु गगनतलं लक्ष्यते । [तदो देव उहअबलमिलन्तदीप्पन्तकरितुरअपदा
समुब्भूदधूलिणिअरेण पल्लत्थगअघडासघादेण अ वित्थरन्तेण अन्धआरे
अन्धीकिदं उहअबलम् । ण हु गअणतलं लक्खीअदि ।]

उभौ—ततस्ततः

रथो भग्नोऽस्यास्माकं स्वामिनो मनोरथः । [कथितैः कथनैः नपुंसके भावे
मुखमाच्छाद्य अप्रियकथनजातलज्जावशादिति भावः ।] यद्देव आज्ञापयति ।
अपनीय दूरीकृत्य । दिष्ट्या महाराजस्य मुकुटमहामणिप्रभावेणापगता मे रण
। शृणोतु देवः शृणोतु सारथिश्च । श्रुतः स्वामिना दुःशासनवध ।

दुर्योधन—(क्रोध से) अस्पष्ट वचनों से मेरे पहले ही आकुल हृदय को अधिक व्याकुल क्यों करते हो ? इसलिये सब स्पष्ट कह डालो।

सुन्दरक—जैसी देव आज्ञा दें। अरे ! देव की मुकुट-मणि के प्रभाव ने युद्ध में हुए प्रहारों की पीड़ा दूर कर दी ! यह कहकर गर्व से चलकर) राज सुनिये। 'आज कुमार दुःशासन के वध···' (यह आधा कहकर मुन र भय का नाट्य करता है)।

सूत—सुन्दरक, कह डालो। भाग्य ने कह ही दिया।

दुर्योधन—कहिये। हमने सुन लिया है।

सुन्दरक—महाराज सुनिये। आज कुमार दुःशासन के वध से क्रुद्ध हुए, भ्रुकुटि चढ़ने से भयानक मस्तक-पटल वाले स्वामी अङ्गराज ने, जिनके और छोड़ने का पता नहीं लग रहा था, ऐसे बाणों के समूह की वर्षा हुये उस दुराचारी मध्यम पाण्डव, अधम भीम पर आक्रमण किया।

दोनों—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद दोनों सेनाओं के परस्पर संघर्ष करते हुये और हुये हाथी, घोड़े और पैदल सिपाहियों द्वारा उठे हुए धूलि-समूह तथा हुये हाथियों के मुण्ड से बढ़ते हुये अन्धकार ने दोनों सेनाओं को अन्ध- र से आच्छन्न कर दिया। आकाश-तल दिखलाई न देता था।

दोनों—इसके बाद ?

कि स्वीक्रियार्थकमिति भरतः। कृतकुटिलभ्रुकुटीभङ्गभीषणेन ललाटपट्टेना- ातसंधानतीक्ष्णमोक्षनिक्षिप्तशरसंपातवर्षिणाभियुक्तोऽसौ दुराचार. दुःशासन- ।। अत्र संपात आसारः। दुराचारेत्यत्र द्वन्द्वसमासः। [दुःशासनवधेन र्षितः तेन। अमर्षः क्रोधः अस्य संजातः असौ अमर्षितः। तारकादिस्वादितच्। यः कुटिल भ्रुकुट्याः भङ्गस्तेन भीषणः निटिलपट्टः यस्य तेन। न विज्ञातौ ज्ञातौ. स धानमोक्षौ येषां ते, तयोक्ताः शिलीमुखा बाणास्तेषां संघात ीति तेन।] ०पदातिपदसमुद्भूतबहलधूलि० ०तेनोत्थितेन० घनान्धकारे-

सुन्दरकः—ततो देव, दूराकृष्टधनुर्गुणास्फोटनटङ्कारेण गम्भीर...
शायते गर्जितं प्रसमजलधरेणेति । [तदो देव, दूराकड्ढिअधणुगुणा...
टङ्कारेण गम्भीरभीसणेण आणीअदि गज्जिदं णवजलहरेण त्ति ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, द्वयोरपि तयोरन्योन्यसिंहनादगर्जितपिशुनं विवि...
परिमुक्तप्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युच्छटाभासुरं गम्भीरस्तनितजल...
प्रसरच्छरधारासहस्रवर्षि जातं समरदुर्दिनम् ।

[तदो देव दोह्णिं वि ताणं अण्णोण्णसिंहणादगज्जिदपिसुणं विवि...
परिमुक्कप्पहरणाहदकवअसंगलिदजलणविज्जुच्छडाभासुरं गम्भीरत्थणिअज...
हरं प्पसरन्तसरधारासहस्सवरिसि जादं समरदुद्दिणम् ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे ज्येष्ठस्य भ्रातुः पराभवश...
धनंजयेन वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाप्रस्थितमहावानरः तुरङ्गमसंह...
व्यापृतवासुदेवशङ्खचक्रासिगदालाञ्छितचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शन आपूरितपाञ्चजन्य...
दत्ततारररसितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरो धावितस्तमुद्देशं रथवरः ।

[तदो अ देव, एदस्सि अन्तरे जेट्ठस्स भादुणो पराभवसङ्किणा धणंज...
वज्जणिग्घादणिग्घोसविसमरसिदधअअग्गट्ठिदमहावाणरो तुरङ्गमसंगह...
दवासुदेवसङ्खचक्कासिगदालञ्छिदचउब्बाहुदण्डदुद्दंसणो आपूरिअपञ्चजण्णदेव...
तारररसिदप्पडिरवभरिददसदिसामुहकुहरो धाविदो तं उद्देसं रहवरो ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

...णान्धी० । प्रनष्टं गगनाङ्गनम् । कुत्रापि किमपि न दृश्यते । [दूराकृष्टधनुर्गुण...
यदास्फोटनं तेन यः टंकारस्तेन ।] गभीरभीषणेन अन्योन्यस्य सिंहनाद...
गर्जितं तत्पिशुनं यस्य । पिशुनो खलसूचको इत्यमरः । विविधानि यानि...
मुक्तानि प्रहरणानि तैराहतं यत्कवचं तस्मात्संगलितः स्फुरितो यो ज्वलन...
एव विद्युच्छटा तया भासुरम् । गम्भीरं स्तनितं गर्जितं यस्यासौ...
जलधरः यस्मिन् । प्रसरन्तः शरा एव धारास्तासां सहस्राणि वर्षितुं शीलं...
... धारासंपात आसारः । मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम् । इति चामरः ।

सुन्दरक—देव, तत्पश्चात् गम्भीर और भयङ्कर, दूर तक खींची हुई
डोरी के छोड़ने की टंकार से प्रतीत होता था कि, मानो, प्रलय काल
गरज रहा था।

दुर्योधन इसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, इसके पश्चात् उन दोनों का युद्ध रूपी दुर्दिन हुआ, प
सिंहनाद रूपी गर्जन जिसका सूचक था, जो अनेक प्रकार के छोड़े हुये अ
टकराये कवचों से निकली हुई ज्वाला रूपी विद्युत् की चमक से चमक
, जिसमें गम्भीर गर्जन वाली धनुष ही मेघ था और जो तीव्र गति से
ये सहस्रों तीर रूपी (जल) धाराओं को बरसा रहा था।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद इसी बीच बड़े भाई के पराजय की आ
करने वाले धनञ्जय (अर्जुन) ने अपना उत्तम रथ, जिसके ध्वज के अग्र
र वज्र की कड़क के शब्द के समान भीषण ध्वनि करने वाला मह
(हनुमान्) स्थित था, जो घोड़ों को हाँकने में लगे हुये वसुदेव-पुत्र (कृष्ण
शङ्ख, चक्र, असि और गदा से लाञ्छित चारों भुजाओं से दुर्निरीक्ष्य
जिसने बजाये गये (कृष्ण के) पाञ्चजन्य और (अर्जुन के) देवदत्त नामक
के तीव्र शब्द की प्रतिध्वनि से दसों दिशाओं के मुख रूपी गुहाओं को
दिया था, उसी स्थल की ओर दौड़ाया।

दुर्योधन—इसके बाद ?

गीरवशङ्किना ध्वजयष्टिस्थित.. प्रतिरवोद्धुरितदशदिङ्मुखकुहरः प्राणि
देवोऽपि धनञ्जयस्यैव रथवरः। अथ वज्रस्य निर्घातवत् उद्घोषः उच्चैःशब्द
दिग्धं रसितं यस्य स तथा। [ध्वजाग्रस्थितः महावानरो यस्य। तुरङ्ग
वाहने व्यापृतः वासुदेवः तस्य शंखश्च चक्रं च असिश्च गदा च ताभिः लाञ्छि
ते चत्वारः बाहुदण्डास्तैर्दुर्दर्शनः दुष्प्रेक्ष्यः। आपूरितौ यौ पाञ्चजन्यदे
स्तयोरारसितस्य यः प्रतिरवस्तेन भरितानि दशदिशामुखकुहराणि ये

सुन्दरकः—ततो [illegible] भिन्नं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुमारवृषसेनेन ।

[ततो धीरदेवस्य [illegible] [illegible] भिन्नं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न देव [illegible] कुमारविमेनो ।]

दुर्योधनः—(साशङ्कम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तेनाकर्णाकृष्टेन कुमारवृषसेनेन [illegible] मर्मभिन्नाघट्टनैः कठिनकङ्कपत्रैः [illegible] शाणशिलानिशितश्यामलैः कुसुमित इव सर्वाङ्गेण शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनंजयस्य रथवरः ।

[ततो अ देव तेण आअण्णाहृदेण एव्व कुमारविसेणेण [illegible] मम्मभिण्णघट्टणेहिं कठिणकङ्कवत्तेहिं [illegible] साणसिलाणिसिदसामलेहिं कुसुमिदो विअ सव्वङ्गेण सिलीमुहेहिं पच्छादिदो धणंजअस्स रह[वरो]

उभौ—(सहर्षम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, लोकपरिक्षिप्तनिशितभल्लबाणवर्षिणा धनंजयेन भणितम्—अरे रे वृषसेन, पितुरपि तावत्ते न युक्तं मम दुर्वचनं स्थातुम् । किं पुनर्भवतो बालस्य । तद्गच्छ । अपरैः कुमारैः सहायुध्यस्वेति । वाचं निशम्य गुरुजनाधिक्षेपेणोद्दीपितकोपोपरक्तमुखमण्डलविजृम्भितभ्रुकुटी भीषणेन चापधारिणा कुमारवृषसेनेनापि मर्मभेदकैः परुषविषमैः कृतिपय प्रणयनिर्भर्त्सितो गाण्डीवी बाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः । [ततो देव तिक्खविक्खि

भरितेति तारकादित्वादितच् । [रत्नशीर्षकं रत्नमयशिरस्त्राणम् । आकर्णमा कठिनस्य कोदण्डस्य जीवा येन । दक्षिणहस्तेन उत्क्षिप्ता ये शरास्तैर्या यद्विघट्टनं तेन त्वरितः सारथिर्यस्य तथाभूतः ।] ममभ्रमामुक्तविगलितवर्षू अनामुक्तः परिहितः । शीर्षकं टोप्पर इति ख्यातम् । शीर्षकं शीर्षण्यं च शिर इत्यमरः । जीवा पतञ्चिका । [विदलिता विपाटिता या असिलता तद्वच्छ्याम ःश्र पुंखा येषां तैः । कठिनानि कंकस्य कंकस्येव वा पत्राणि पुंखा येषां तैः निकषपाषाणे निशिताः श्यामलाः शल्यबन्धा येषां तैः । शितं

सुन्दरक— तब भीमसेन और अर्जुन द्वारा आक्रान्त पिता को देखकर जल्दी गिरे हुये रत्नजटित मुकुट की उपेक्षा करके कठोर धनुष की डोरी को कान खींचता हुआ और दाहिने हाथ से निकाले गये बाण के पिछले भाग से थि को उकसाता हुआ कुमार वृषसेन उस जगह पहुँच गया।

दुर्योधन—(संभलकर) तब क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, तब कुमार वृषसेन ने आते ही टूटी हुई तलवार के समान र और स्निग्ध पूँछ वाले, कठोर कङ्कु-पंख वाले, काले वर्ण वाले और पर पंने किये हुये श्यामल फलक वाले बाणों से मुहूर्त भर में अर्जुन के रथ को (ऐसे) ढक दिया, मानो पुष्पों से लदा हुआ वृक्ष हो।

दोनों—(हर्षपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके पश्चात् तीव्र फेंके गये पैने भल्ल नामक बाणों की करने वाले अर्जुन ने मुस्कराते हुये कहा—'अरे वृषसेन, मुझ युद्ध के तुम्हारे पिता को भी खड़ा होना उचित नहीं है, फिर तुम बालक का ? इसलिये जाओ, अन्य कुमारों के साथ युद्ध करो। इस प्रकार के सुनकर पिता की निन्दा से भड़के हुये क्रोध से लाल मुख-मण्डल पर हुये भ्रुकुटि-भङ्ग से भीषण, धनुर्धारी, कुमार वृषसेन ने भी मर्मभेदी तथा भीषण एवं श्रुति-रव से प्रेम करने वाले (अर्थात् कान तक खींच छोड़े गये) बाणों से अर्जुन की ताडना की, न कि बुरे वचनों से।

बाणैः भ्रमरैश्च।] ततो देव स्वागतेनैव कुमारवृषसेनेन महदाश्चर्यं कृतम्। सारश्यामलसुस्निग्धशल्यबन्धैः कठिनकङ्कुपत्रङ्कपत्रानने शिलानिशित-ज्जवसंपन्ना कुसुमितस्तवर शिलीमुखैस्तथा प्रच्छादितो धनञ्जयस्य। अत्र बर्हपंक्तिशिला मणिविशेष। शल्यबन्धो बाणभेदः। कङ्कुः कङ्कुरो सिद्धः पक्षी। शिलायां मर्दितेन निघर्षणेन तेन मांसलं शिथर्षेण रचितैः। शिलीमुखो बाणभृङ्गो द्रुमधर। तीक्ष्णं यथा तथा विक्षिप्ता भल्लसंज्ञा बाणास्तान् अपितु तीक्ष्ण दश्य तेन।] कोदण्डमोक्षनिक्षिप्त-रसंतानाभिधानवाणमन्युना धनंजयेन.. परिकुपितस्य पुत्रः स्थातुम् है गच्छ। अपरैः कुमारकैः सह गत्वा योध्य इति। गुरुजनाधिक्षे-

सिदमल्लवाणवरिगिणा धणजएण ईसि विहसिअ भणिदम्— अरे रे विन्ति रिदुणो वि दाव दे ण जुत्तं मह कुविदस्स अभिमुहं ठादुम्। किं उण बालस्स। ता गच्छ। अवरेहिं कुमारेहि सह आओधेहित्ति। एव्व वाअं णिन्दि गुरुअणाहिक्खेवेण उद्दीविअकोवोपरत्तमुहमण्डलविअम्भिअभिउडीभङ्गभीसणेण चावधारिणा कुमालविससेण वि मम्मभेदएहिं पहसविससेहिं मुदिवहिदमवि णिब्भज्जिदो गण्डीवी वाणेहि ण उण दुट्ठवअणेहिं।]

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु। सुन्दरक, ततस्ततः।

सुन्दरकः— ततो देव, निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना किरीटिना चण्डगाण्डीवजीवाशब्दनिर्जितवज्रनिर्घातघोषेण बाणनिपतनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरं प्रस्तुतं शिक्षाबलानुरूपं किमप्याश्चर्यम्। [तदो देव णिसिदसराभिघादवेअणु जादमण्णुणा किरीटिणा चण्डगण्डीवजीआसद्दाणिज्जिदणिग्घादघोसेण वाणणिव णपडिसिद्धदंसणप्पसरण पत्थुदं सिक्खाबलाणुरूवं किं दि अच्चरीअम्।]

दुर्योधनः—(साकूतम्, ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तत्तादृशं प्रेक्ष्य शत्रोः समरव्यापारचतुरत्वमवि चिततूणीरमुखधनुर्गुणगमनागमनशरसंधानमोक्षचटुलकरतलेन कुमारवृषसेनेना सविशेषं प्रस्तुतं समरकर्म। [तदो अ देव तं तारिसं पेक्खिअ सत्तु समरव्वावारचउ रत्तणं अविभाविअतूणीरमुहधणुग्गुणगमणागमणसरसन्धाण मोक्खचडुलकरअलेण कुमालविससेणेण वि सविसेसं पत्थुदं समलकम्म।]

दुर्योधनः—ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव, अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्तविस्मितसंग्र बन्धो द्वयोरपि कुरुराजपाण्डवबलयोः 'साधु, कुमारवृषसेन, साधु' इति ह बधकलो वीरलोकोऽवलोकयितुं प्रवृत्तः। [तदो देव एत्थन्तरे विमुक्कसमरवाबारो मुहुत्तविम्हिदसराबन्धो दोण्णं पि कुरुराअपण्डवबलाणं साहु कुमालविसेण साहु त्ति [illegible] वीरलोओ अवलोइदु पउत्तो।]

अविभाविततूणीरमुखसंधानम्, त्रुटीविजृम्भितनयपथधारिणा कुमारवृषसेनेन सर्वथा सुरवधूजनवशंवदनिर्भर्त्सितः। अत्र विजृम्भितं हृतम्। सुतवधोन्मुखरति -रोरंथे। निर्जृम्भितो धनि। [पुत्रमरस्य पितुः अधिभ्रंशेन निन्दा शोकि

दुर्योधन—शाबास, वृषसेन, शाबास। सुन्दरक, इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से हुई पीड़ा से क्रुद्ध हुये, ह गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा की ध्वनि से बिजली की कड़क के शब्द को ने वाले, बाणों की वर्षा से दृष्टि को रुद्ध कर देने वाले अर्जुन ने शिक्षा पराक्रम के अनुरूप अद्भुत (कर्म) प्रस्तुत किया।

दुर्योधन—(ज़ोर देते हुए) उसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, और उसके बाद शत्रु के युद्ध-कर्म में ऐसे चातुर्य को देखकर र वृषसेन ने भी, जिनका हाथ तरकश के मुख और धनुष की प्रत्यञ्चा पर जाने, बाण चढ़ाने और छोड़ने में इतना फुर्तीला था कि (ये क्रियायें) गई नहीं पड़ती थीं और अधिक (अद्भुत) पराक्रम दिखलाया।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब इसी बीच युद्ध-कर्म छोड़कर, मुहूर्त्त भर के लिये सिलसिले को शान्त करके, कौरव और पाण्डव दोनों ही सेनाओं के लोग 'शाबास, कुमार वृषसेन, शाबास' इस प्रकार तुमुल ध्वनि करते उसके युद्ध-कौशल को) देखने लगे।

नोपरक्त' यन्मुखमण्डलं तत्र विजृम्भितो य. भ्रुकुटीमङ्गस्तेन भीषणस्तेन । कर्णमार्गे कृतः प्रणयः अनुरागः यैः। आकर्णमाकृष्य मुच्यमानैः बाणैः उपयागामिभिरच वचनैरिति भावः। निशितशराभिघातैर्या वेदना पीडा उपजातो मन्युर्यस्य। चण्डं च तद्गाण्डीवं च तस्य जीवायाः शब्देन निर्जितः तस्य निर्घोषस्य च ध्वनिः येन तथाभूतेन। शिक्षाया बलस्य च अनुरूपम्।] राभिघातजातमन्युना विशातवाणनिपतनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण .. । प्रस्तुतं म्। शिक्षास्नाभ्याम: । तीक्ष्णमोक्ष...प्रस्तुतः समरकर्मारम्भः। अत्रा-विततोऽप्रकाशितः। तूणीरं तोन इति स्यातम्। चटुलं मनोज्ञं कुशलं वा। विभावितान्यलक्षितानि यानि तूणीरमुखधनुर्गुणयोः गमनागमनानि च धार-नं मोक्षश्च तेषु चटुलं मनोज्ञतया संचारि करतलं यस्य।] प्रस्तुत आरब्धः। क्रमः उपक्रमः। समरकर्मान्ति इति पाठे समर एव कर्मान्तः कौमठ इति दः। [मुहूर्तं विश्रमितः वैरस्यानुबन्धः वैरानुबन्धः विरोधानुवृत्तिर्येन स कः।] द्वयोरपि तयोः कुरुपाण्डवराजबलयोः। अत्र विश्रमित उपशान्त.।

दुर्योधनः — (सविस्मयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, अवधीरितसकलधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः [illegible] तथाविधेन समरकर्मारम्भेण हर्षरोपकरुणासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽङ्गराज निपतिता शरपद्धतिर्भीमसेने बाष्पपर्याकुला दृष्टिः कुमारवृषसेने । [तदो अ दे अवहीरिदसअलधाणुक्कचक्कपराक्कमसालिणो सुदस्स तहाविहेण समलकम्मारम्भे हरिसरोसकरुणासंकडे वट्टमाणस्स सामिणो अङ्गराअस्स णिवडिआ सरा भीमसेणे बुप्फपज्जाउला दिट्ठी कुमालविससेणे ।]

दुर्योधनः - (सभयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन शरवर्ष गाण्डीविना तुरगेषु सारथावपि रथवरे धनुष्यपि जीवायामपि [illegible] सितातपत्रेऽपि च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः । [तदो अ देव उभय उत्तसाहुक्कारामरिसिदेण सरवरिसपज्जलिदेन गण्डीविणा तुरगेसु सारहि पि र धणुं पि जीआइं पि णलिन्दलञ्छणे सिदादवत्ते वि अ व्वावारिदो समं सि मुहासारो ।]

दुर्योधनः—(सभयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः – ततो देव, विरथो लूनगुणकोदण्डः परिभ्रमणव्यापारमात्र विहतशरसंपातो मण्डलैर्विचरितुं प्रवृत्तः कुमारः । [तदो देव विरहो लूणगुण दण्डो परिब्भमणवावारमेत्तपडिहसिदसरसंपादो मण्डलेहिं विअरिदुं प कुमारो ।]

दुर्योधनः—(साशङ्कम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः— ततो देव, पुनरपि विध्वंसनामर्षोद्दीपितेन स्वामिनाङ्गराजे गणितभीमसेनाभियोगेन परिमुक्तो धनंजयस्योपरि शिलीमुखासारः । कुमारोऽपि परिजनोपनीतमन्यं रथमारुह्य पुनरपि प्रवृत्तो धनंजयेन सहायोद्धुम् । [तदो दे पुणरवि विद्धंसणामरिसुद्दीविदेण सामिणा अङ्गराएण अगणिअभीमसेणाभिओअ परिमुक्को उवरि सिलीमुहासारो । कुमारो वि परिअणोवणीद अण्णं रहं आरुहिअ पुणो धणंजएण सह आओधेदुम् ।]

. . बकमाणुक्कानां चक्रं येन तादृशेन पराक्रमेण [illegible]

दुर्योधन—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, और तब सब धनुर्धारियों के मण्डल को तिरस्कृत करने वाले पराक्रम से सम्पन्न पुत्र के ऐसे युद्ध-पराक्रम से एक साथ आनन्द, क्रोध और करुणा की अवस्था में पड़े हुए स्वामी अङ्गराज (कर्ण) की बाण-परम्परा अर्जुन पर और आँसुओं से भरी दृष्टि कुमार वृषसेन पर पड़ी।

दुर्योधन—(भयपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब दोनों सेनाओं द्वारा किये गये साधुवाद से क्रुद्ध और क्रोध से उत्तेजित हुए अर्जुन ने घोड़ों, सारथि, उत्तम रथ, धनुष, डोरी और चिह्न धवल-छत्र पर एक साथ बाणों की वृष्टि की।

दुर्योधन—(भय के साथ) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब रथ-हीन और कटी हुई डोरी तथा धनुष वाला और काटने मात्र से बाण-वृष्टि को रोकता हुआ कुमार वृषसेन मण्डल बनाकर घूमने लगा।

दुर्योधन—(आशङ्कापूर्वक) तत्पश्चात् ।

सुन्दरक—देव, तब पुत्र के रथ के नाश से उत्पन्न क्रोध से उत्तेजित हुये स्वामी अङ्गराज ने भीमसेन के आक्रमण की चिन्ता न करके धनञ्जय (अर्जुन) के ऊपर बाणों की वर्षा की। कुमार भी सेवक द्वारा लाये हुये दूसरे रथ पर चढ़कर फिर अर्जुन के साथ युद्ध करने लगा।

...मते असौ तस्य। तथाविधः समरकर्मण आरम्भस्तेन। संकटे मिश्रीभावे।] संकटे। अत्र धानुष्को धनुर्धरः। धनुःप्रहरणमस्येत्यर्थे ठक् [तस्य इसुसुक्ता-... इति कः।] सुतविक्रमदर्शनेन हर्षः। पाण्डुपराक्रमदर्शनेन रोषः। बालस्य ...वीन युद्धाकरणमिति रसत्रयमत्र। पद्धतिः पंक्तिः। उभयाभ्यां बलाभ्यां ...कृतः यः साधुकारः साधुवादः तेन अमर्षितः जातक्रोधः तेन। वृषसेनहतशर- ... प्रज्वलितेन दीप्तेन। जीवायां ज्यायाम्। 'मौर्वी जीवा गुणो गव्या' ...इति हैमः।] अत्र लाञ्छने चिन्हे। सितातपत्रे श्वेतच्छत्रे। सममेकदैव। ततो ...वृषसेनः [विनष्टो रथो यस्य स विरथः। लूनः गुणः कोदण्डं च यस्य स ...कः।] परिभ्रमणमव्यापार एव मात्रं तेन प्रतिषिद्धः निवारितः शरसंपातो

उभौ—साधु, सुन्दरक, साधु । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, भणितं च कुमारेण—'रे रे तातापितृमुखर पाण्डव, मम शरास्तव शरीरमुज्झित्वान्यस्मिन्न निपतन्ति' इति शरसहस्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादेन गर्जितुं प्रवृत्तः । [भणिदं कुमालेण रे रे तादाहिक्खेवमुहल मज्झमपण्डव मह सरा तुह सरीरं उज्झिअ अण्णस्मि ण णिवडन्ति । त्ति भणिअ सरसहस्सेहिं पण्डवसरीरं पच्छादिअ सिंहणादेण गज्जिदुं पउत्तो ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) अहो बालस्य पराक्रमो सुयोधन। ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तं शरसंपातं समवधूय निशितशराभिघातजातमन्युना किरीटिना गृहीता रथोत्सङ्गात्क्वणत्कनककिङ्किणीजालझङ्कारविराविणी मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला निशितश्यामलस्निग्धमुखी विविधरत्नप्रभाभासुररमणीयदर्शना शक्तिः सोपहासं विमुक्ता च कुमाराभिमुखी । [तदो अ देव तं सरसपादं समवधूणिअ णिसिदसराभिघादजादमण्णुणा किरीडिणा गहिदा रहुच्छङ्गादो क्कणन्तकणअकिङ्किणीजालझङ्कारविराइणी मेहोवरोहविमुक्कणहत्थलणिम्मला णिसिदसामलसिणिद्धमुही विविहरअणप्पहाभासुररमणिज्जदंसणा सत्ती सोवहासं विमुक्का अ कुमालाहिमुही ।]

दुर्योधनः—(सविषादम्) अहह । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, प्रज्वलन्तीं शक्तिं प्रेक्ष्य विगलितमहार्घहस्तात्सशरं धनुर्हृदयाद्वीरसुलभ उत्साहो नयनाद्बाष्पसलिलं वदनाद्विहसितं च धनंजयेन, सिंहनादं विनादितं वृकोदरेण, दुष्करं दुष्करमित्याक्रन्दितं दुरबलेन । [तदो अ देव पज्जलन्तीं सत्तिं पेक्खिअ विअलिअं महग्घहत्थादो ससरं धणु हिअआदो वीरसुलहो उच्छाहो णअणादो बप्पसलिलं वअणादो रमिदं । हसिदं अ धणंजएण सिंहणादं विणादिदं विओदरेण दुक्करं त्ति आक्कन्दिदं दुरबलेण ।]

येन ।] परिभ्रमणमात्रव्यापारो मण्डलाग्रेण विचरितुं प्रवृत्तः । अत्र ...
... । कौशेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत् इत्यमरः । सुन्दरकः

दोनों— वाह, वृषसेन, वाह। इसके बाद ?

सुन्दरक— देव, तब कुमार ने कहा—'अरे (मेरे) पिता की निन्दा में वाल, मध्यम पाण्डव, मेरे बाण तेरे शरीर को छोड़कर अन्य पर नहीं पड़ते ' यह कहकर (कुमार) सहस्रों बाणों से पाण्डव के शरीर को आच्छन्न करके नाद करने लगा।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) बालक का पराक्रम और मुग्ध स्वभाव बड़ा चर्यकारी है। इसके बाद ?

सुन्दरक— देव, तब उस बाण-प्रहार को रोककर तीक्ष्ण बाणों के लगने से हुये अर्जुन ने रथ के मध्य भाग से बजती हुई सुवर्णमयी घण्टियों के समूह कार के शब्द वाली, मेघों के घेरे से छुटे हुये आकाशतल के समान न, तीक्ष्ण, श्याम, एवं स्निग्ध मुख वाली, अनेक प्रकार के रत्नों की त से चमकती हुई और भयङ्कर तथा सुन्दर दिखलाई पड़ने वाली एक उठाई और हँसकर कुमार की ओर छोड़ दी।

दुर्योधन—(दुःख के साथ) आह ! इसके बाद ?

सुन्दरक—और, देव, इसके बाद जलती हुई शक्ति को देखकर अङ्गराज य से बाण-सहित धनुष, हृदय से वीर-सुलभ उत्साह आंखों से आँसू और ते चीत्कार निकल पड़ा। अर्जुन हँसा, भीम ने सिंहनाद किया और

नेन। अगणितः भीमसेनस्य अभियोगः येन।] भणितं च कुमारवृषसेनेन—अरे रे ताताधिक्षेपकारक मुखरमध्यमपाण्डव न मम शरासारास्तव शरीरमुज्झित्वान्यस्मिन्निपतन्ति इति भणित्वा शरशतसहस्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादं विचरितुं प्रवृत्तम्। अत्र प्रच्छाद्य व्याप्य। विचरितुं कर्तुम्। प्रवृत्तं वृषसेनेनेति शेषः। [निशिताश्च ते शराश्च तेषामभिघातस्तेन जात मन्युः क्रोधो यस्य तेन] क्वणन्त्यो याः किङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकास्तासां जालानि तेषां झङ्कारैर्विरौतीति विराविणी।] ०जालझङ्काररराविणी महामेघोन०। [विविधरत्नानां प्रभाभिः भासुरा चासौ भीषणं रमणीयं च दर्शनं यस्याः ...।] विविधरत्नप्रभाघटितशीर्षभीषणरमणीयदर्शना महाशक्तिर्विमुक्ता ... मुखी। अत्र क्वणच्छब्दायमानम्। भीषणता विचित्ररूपतया। रमणीयता

दुर्योधनः—(सविषादम्) ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव, कुमारवृषसेनेनाकर्णाकृष्टनिशितक्षुरप्रैश्चिरं निर्ल... र्धपथ एव भागीरथीव भगवता विषमलोचनेन त्रिधा कृता शक्तिः।

[तदो देव कुमालविससेणेण आकण्णाकिट्ठणिसिदखुरप्पेहिं चिरं णिव्व... अद्धपहे एव्व भाईरही विअ भअवदा विसमलोअणेण तिधा किदा सत्ती।]

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु। ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे कृतकलकलमुखरेण वीरलोकसाधुवादेनान्तरितः समरतूर्यरवः। सिद्धचारणगणविमुक्तकुसुमप्रकरेण प्रच्छादितं समराङ्गणम्।

[तदो अ देव एदस्सिं अन्तरे किदकलकलमुहरेण वीरलोअसाहु... अन्तरिदो समरतूररवो। सिद्धचालणगणविमुक्ककुसुमप्पअरेण पच्छ... समलाङ्गणम्।]

दुर्योधनः—अहो बालस्य पराक्रमः। ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततश्च देव, भणितं स्वामिनाङ्गराजेन—'भो वृकोदर, असमाप्तस्तव ममापि समरव्यापारः। तदनुमन्यस्व मां मुहूर्तम्। प्रेक्षे तावद्वत्सस्य तव भ्रातुश्च धनुर्वेदशिक्षानिपुणत्वम्। तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम्' इति

[तदो अ देव भणिदं सामिणा अङ्गराएण भो विओदल असमत्तो मह वि समलव्वावारो। ता अणुमण्ण मं मुहुत्तअम्। पेक्खामहे दाव वच्छस्स भादुणो अ धणुव्वेदसिक्खाणिउणत्तणम्। तुह वि एदं पेक्खणिज्जं त्ति।]

दुर्योधनः—ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव, विरतो रणव्यापारनिर्बन्धान्मुहूर्तं प्रशमितवैरौ द्वौ प्रेक्षकौ जातौ भीमसेनाङ्गराजौ।

[तदो देव विरदाआ रणव्वावारणिब्बन्धादो मुहुत्तअं पसमिदवेरा दुवे पेक्खआ जादा भीमसेणङ्गराआ।]

स्वभावादेव। तां तादृशीं प्रज्वलन्तीम्...। रसितं च सिंहनादं वृकोदरेण। दुर्... कुचर्मणि कृत्वाश्लिष्ट दुर्दर्शेन। अत्र रसितं शब्दितम्। सिंहस्येव नादो ... । कुमारेणाकर्णाकृष्टनिशितक्षुरप्रशरैर्दूरं निष्पातयाथ एकतर...

रव-सेना ने 'बुरा हुआ, बुरा हुआ' यह कहकर करुण-क्रन्दन किया।

दुर्योधन—(विषादपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब कुमार वृषसेन ने देर तक लक्ष्य साधकर कान तक ले गये तीक्ष्ण क्षुरप्र नामक बाणों से बीच रास्ते में ही शक्ति के, भगवान् लोचन ने गंगा के जैसे, तीन टुकड़े कर दिये।

दुर्योधन—शाबाश, वृषसेन, शाबाश। इसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, और तब इसी बीच कल-कल ध्वनि से बढ़े हुये वीरों साधुवाद ने युद्ध के बाजे के शब्द को छिपा दिया और सिद्ध तथा चारणों (आकाश से) बरसाये गये पुष्पों की राशि ने युद्ध-भूमि को ढक दिया।

दुर्योधन—ओह ! बालक का पराक्रम बड़ा अद्भुत था। इसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तब स्वामी अंगराज ने कहा—'हे वृकोदर, मेरा और युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है, इसलिये मुझे मुहूर्त-भर के लिये अनुमति तब तक पुत्र और तेरे भाई के धनुर्वेद की शिक्षा के चातुर्य को देख रे लिये भी यह दर्शनीय है।'

र्योधन—इसके बाद ?

न्दरक—महाराज, तब वे दोनों युद्ध-कर्म के आग्रह से विरत हो र मुहूर्त-भर के लिये वैर को शान्त करके भीमसेन और अंगराज दर्शक ।

पी... । [क्षुरप्रैः शरविशेषैः। अर्धः पन्थाः अर्धपथस्तस्मिन्। निध्याय विषमलोचनेनेत्यत्र भारतम्—सा दधार हरो राजन् गङ्गा गगन-[।. सा बभूव विसर्पन्ती त्रिधा राजन् समुद्रगा। वन० अ० १०९.] र्यापि विचिन्त्य। भागीरथी गङ्गा विषमलोचनेन हरेण। गङ्गापि हरेण कृतेति भावः। कलमुखरेण [पाठान्तरे कृतः यः कलकलरवेन मुखरो ।]॰प्रमुक्तकुसुमप्रकरेण संच्छादित समराङ्गणम्॥ भणितं च तदनु-सरणमानमेव। प्रेक्षावस्तावत्तव भ्राता समं मम पुत्रस्य धनुर्वेदशिक्षा-। तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम् इति। विश्रमित उपशान्तः। प्रेक्षको द्रष्टा।

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, गाण्डीविना तारतरशिञ्जितमौर्वीनिर्घोषविज्ञातबाण-वर्षेण समाच्छादिते पत्रिभिर्दिक्चक्रे न नभस्तलं न क्षितिः न रथो न ध्वजो न कुमारो न केतुवंशो न वाजिनो न सारथिः गुरुदुहिता न दिशो न वीरलोकश्च लक्ष्यते।

[तदो अ देव गण्डीविणा तारतरसिञ्जिआमोव्वीणिग्घोसविण्णादबाणवरिसेण पत्तिहिं आच्छादिदे दिसाचक्के ण णहअलं ण रहो ण धआ ण कुमारो ण केदुवंसो ण वाइणो ण सारही ण गुरुदुहिआ ण दिसाओ गुरुविरलोओ अ लक्खीअदि ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, अतिक्रान्ते शरवर्षे क्षणमात्रमेव सहर्षसिंहनादे पाण्डवसैन्ये सविषादमुक्ताक्रन्दे कौरवबले समुत्थितो महान्कलकलः 'हा कुमारवृषसेनः' इति ।

[तदो अ देव अदिक्कन्ते सरवरिसे खणमेत्तं एव महरिससिंहणादे पण्डवसेण्णे सविसादमुक्काक्कन्दे कोरवबले समुत्थिदो महन्तो कलअलो 'हा कुमालविससेणो' त्ति ।]

दुर्योधनः—(सवाष्परोधम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, प्रेक्षे कुमारं हतसारथितुरङ्गं लूनातपत्रचामरकेतुवंशं स्वर्गभ्रष्टमिव सुरकुमारमेकेनैव हृदयमर्मभेदिना शिलीमुखेन भिन्नदेहं रथमध्ये पर्यस्तम् ।

[तदो देव पेक्खामि कुमालं हदसारहितुलङ्गं लूणादवत्तचामरकेदुवंसं सग्गब्भट्टं विअ सुलकुमालं एक्केण ज्जेव हिअअमम्मभेदिणा सिलीमुहेण भिण्णदेहं रहमज्झे पल्लत्थं ।]

दुर्योधनः—(सास्रम्) अहह, कुमार वृषसेन । अलमतः परं श्रुत्वा । हा वत्स, हा मदङ्कदुर्ललित, हा मदाज्ञाकर, हा गदायुद्धप्रियशिष्य, हा दर्शनतर्पण, हा राधेयकुलप्ररोह, हा प्रियदर्शन, हा दुःशासननिर्विशेष, हा सर्वगुरुवत्सल, प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

[तारं रसिता निनादिता या जीवा गुणः तस्या निर्घोष एव निर्घोषमात्रं विज्ञातो बाणवर्षो यस्य तेन] । गाण्डीवताररसितमांसलनिर्भरितविज्ञात- ...न तेषां रथा.. न खलु किमपि लक्ष्यते । पाण्डवबले विमुक्तसिंहनादे

धन—इसके बाद ?

रक—देव, तब अर्जुन ने जिसका बाणो का बरसाना केवल प्रचण्ड
ाली डोरी के घोष मात्र से जाना जा रहा था, बाणों से ऐसा
र्म) किया कि न आकाश दिखलाई देता था, न स्वामी, न रथ,
न कुमार, न ध्वज-दण्ड, न सेनायें, न सारथि, न घोड़े, न दिशायें
र योद्धा ही ।

न—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

क—देव, इसके बाद क्षण-भर में बाणों की वृष्टि के शान्त होने पर
ओं के हर्ष से सिंह-नाद और कौरव सेनाओं के करुण-क्रन्दन करने
ोलाहल-ध्वनि हुई—'हाय कुमार वृषसेन मारा गया ! हाय मारा

—(आँसुओं को रोककर) इसके बाद ?

—देव, तब मैंने हृदय के मर्मस्थल को बींधने वाले एकमात्र बाण
शरीर वाले कुमार को, जिसका सारथि और घोड़े मार दिये गये
छत्र, धनुष, चामर और ध्वज-दण्ड काट दिया गया था, और जो
हुए देव-बालक के समान प्रतीत हो रहा था, रथ में पड़ा हुआ

दुर्योधन—(आँसुओं के साथ) आह ! कुमार वृषसेन ! इससे आगे सुनने से
रना चाहिये । हाय, वत्स ! हाय, मेरी गोद के हठी ! हाय, मेरी आज्ञा
ाने ! हाय, गदा-युद्ध में प्रिय शिष्य ! हाय, वीर्य के सागर ! हाय,
कुल के अंकुर ! हाय, प्रियदर्शन ! हाय, दुःशासन से अभिन्न ! हाय,
ुरुओं के प्रेमी ! मुझे प्रत्युत्तर दो ।

े कौरवबले हा हतः कुमारो वृषसेनो हा हत इति महान्कलकल उत्थितः ।
देव महत्या वेलया अहं प्रेक्ष्य हतसारथितुरङ्गम लूनातपत्रकेतुवश स्वर्गतरि-
ार सुरकुमारवमेकेनैव मर्मभेदिना बाणेन भिन्नदेह रथमध्ये परिस्थित
ागतः । अत्र वैतुभिहतम् । कुमार प्रेक्ष्याहमागत इत्यन्वयः ।
रद्र एव दुष्टं ललितं यस्य । राधेयस्य कुल तस्य प्ररोहो राधेयकुलस्य
्पर्यः । प्ररोहोऽङ्कुरः ।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त-
मुद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् ।
प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं
कर्णेन तत्कथमिवाननपङ्कजं ते ॥१०॥

सूतः—आयुष्मन्, अलमत्यन्तदुःखावेगेन ।

दुर्योधनः—सूत, पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति । अस्माकं पुनः

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना ।
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ॥११॥

(इति मोहमुपगतः) ।

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः । (इति पटान्तेन वीजयति)

दुर्योधनः—(लब्धसंज्ञः) भद्र सुन्दरक, ततो वयस्येन किं प्रतिपन्नम्...

सुन्दरकः—ततश्च देव, तथाविधस्य पुत्रस्य दर्शनेन संगलितमश्रु... अनवेक्षितपरप्रहरणाभियोगेन स्वामिनाङ्गराजेनाभियुक्तो धनंजयः । ... सुतवधामर्षोद्दीपितपराक्रमं विमुक्तजीविताशं तथा पराक्रमन्तं प्रेक्ष्य भीम... सहदेवपाञ्चालप्रमुखैरन्तरितो धनंजयस्य रथवरः ।

[तदो अ देव तहाविधस्स पुत्तस्स दंसणेण, संगलिद अस्सुवं ... अणवेक्खिदपरप्पहरणाभिजोएण सामिणा अङ्गराएण अभिजुत्तो ... त अ सुदवहामरिसुद्दीविदपरक्कम विमुक्कजीविदास तह पक्कमन्तं ... भीमणउलसहदेवपञ्चालप्पमुहेहिं अन्तरिदो धणंजअस्स रहवरो ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

पर्याप्तेति । पर्याप्तं तृप्त यथेष्ट वा नेत्रं [आयतं वा] यत्र तत्... तु यथेष्ट स्यात्तृप्ती शक्तिनिवारणे । इति विश्वः । अचिरोदितचन्द्र... रम्यम् । उद्भिद्यमानमुद्गच्छत् । एतादृशमप्याननं तव प्राणापहारे [अपहार इति पाठे निर्गमे] परिवर्तिना दृष्टियंत्र तथाभूतं विपरीतदर्श... कर्णेन दृष्टम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥१०॥

कर्ण ने तुम्हारे उस विशाल नेत्रों वाले, नव उदित चन्द्रमा के समान नर, नई प्रकट होती हुई यौवनावस्था से रमणीय शोभा वाले, कमल-सदृश मुख को प्राणों के निकल जाने के कारण पलटी हुई दृष्टि वाला हो जाने पर से देखा होगा ? ॥१०॥

सूत—आयुष्मन्, शोक के अधिक आवेग से बस कीजिये ।

दुर्योधन—सूत, पुण्यशाली लोग ही दुःख का अनुभव करते हैं । लेकिन मारा—

सामने ही जिसके बन्धु मारे गये हैं, यह हृदय अपमान की अग्नि से अधिक जल रहा है । (इसलिये हमें) शोक कहाँ ? पीड़ा कहाँ ? ॥११॥ (यह कहकर मूच्छित हो जाता है) ।

सूत—धैर्य रखिये, महाराज धैर्य रखिये । (आँचल से हवा करता है) ।

दुर्योधन—(चेतना पाकर) भद्र सुन्दरक, तब मित्र अंगराज ने क्या किया ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद इस प्रकार (दुरवस्थाग्रस्त) पुत्र को देखकर हते हुये आँसुओं को त्यागकर शत्रु के आयुधों के प्रहार की चिन्ता न करते हुए स्वामी अङ्गराज ने अर्जुन पर आक्रमण किया । पुत्र-वध के क्रोध से प्रोत्सा- हित पराक्रम वाले और प्राणों की आशा छोड़कर अत्यधिक पराक्रम दिखलाते हुए उसे (कर्ण को) देखकर भीम, नकुल, सहदेव और पाञ्चाल आदि वीरों ने अर्जुन के रथ को ओट में कर लिया ।

दुर्योधन—इसके बाद ?

प्रत्यक्षमिति । [अक्ष्णोः समीपे इति प्रत्यक्ष हतबन्धुनामरणार्ह] एतद्धृदय- रपमानः । [परिभव एव अग्निस्तेन । अत्यर्थं भृशं दह्यते । क्व इति हृदयस्य दुःखमस्यावकाशो दुःखस्य पीडायाश्चावकाशः इति भाव ॥११॥

प्रतिपक्षमङ्ग्रीकृतम् । [तथा विधा दशा स तथाविधस्तस्य ।] अश्रुजालमु० । अनपेक्षितः अगणितः परेषां प्रहरणानामभियोग आक्रमणं । तत्वम्भावार स्वर्थः ।। येन । पुत्रवधामर्षेणोद्दीपितः पराक्रमो यस्य तम् । विमुक्त- जीविताशा येन तं । जीवितनिरपेक्षं युद्धमानमित्यर्थं ।] पराक्रमवन्तं येन भीमनकुलसहदेवपाञ्चालप्रमुखैरन्तरितो व्यवहितः कृतः । अन्तरितः तिरोहितः ।

सुन्दरकः – ततो देव तेनैव भणितम्—'महाराज, हतसूतो स्य-
दूरापनीते रथः। न युक्तं भीमार्जुनाभ्यां सहायोद्धुम्।' इति भणित्वा निवर्ति-
तयोः रथोऽवतारितः स्वामी स्यन्दनाद्बहुप्रकारं च समाश्वासितः।

[तदो देव तेण भणिदम्—महाराअ हदसूदो एस दूरं रहो। ण जुत्तं भीमज्जुणेहिं सह आजुज्झिदुं। त्ति भणिअ णिवट्टिदो रहो ओदारिदो सामी सन्दणादो बहुप्पआरं अ समस्सासिदो।]

दुर्योधनः – ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततश्च स्वामिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतमन्यं रथमारु- दीर्घं निःश्वस्य मयि दृष्टिर्विनिहिता। सुन्दरक एहीति भणितं च। ततोऽहमुप- गतः स्वामिसमीपम्। ततोऽनेन शीर्षस्थानात्पट्टिकां शरीरसंगलितैः शोणि- बिन्दुभिर्लिखितमुखं बाणं कृत्वाभिलिख्य प्रेषितो देवस्य संदेशः। (इति पट्टिकाम- र्पयति)। [तदो अ सामिणा सुइरं विलविअ परिअणोवणीदं अण्णं रहं आरु- दीहं णिस्ससिअ मइ दिट्ठी णिविवेसिदा। सुन्दरअ एहि त्ति भणिदं अ। त- अहं उवगदो सामिसमीवम्। तदो अवणीअ सीसट्ठाणादो पट्टिअं सरीरसंगलिदे- सोणिअबिंदुहिं लित्तमुहं बाणं कदुअ अहिलिहिअ पेसिदो देवस्स संदेसो।]

(दुर्योधनो गृहीत्वा वाचयति यथा)

स्वस्ति। महाराजदुर्योधनं समराङ्गणात्कर्णं एतदन्तं कण्ठे गाढमालिङ्ग्य ज्ञापयति।

अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्
भ्रातृभ्योऽपि ममाधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः।
त्वत्संभावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिर्मया
त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण बाष्पेण वा ॥१२॥

राधेय स्खलिततुरङ्गमो भग्नकूबरस्ते रथो न योग्यो वोढुं भीमार्जुनाभ्यां सांप्रतमायोधितुम्। ततः परिवर्तितो रथो बहुप्रकारं च समाश्वासितः। ...मिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतमन्यं रथमारुह्य दारुणेन दीर्घं निःश्वस्य ...दृष्टिर्निहिता। सुन्दरक आगच्छेति भणितं च। तत उपगतोऽहं स्वामिस-

सुन्दरक—देव, तब शल्य ने कहा – 'अंगराज, तेरे रथ के घोड़े मर गये हैं
: कूवर (फड़, बांस) टूट गया है। इसलिये भीम और अर्जुन के साथ युद्ध
ा ठीक नहीं है।' यह कहकर उसने रथ लौटा लिया; स्वामी को रथ से
ा और अनेक प्रकार से सान्त्वना दी।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—तब स्वामी ने बहुत देर तक विलाप करके, सेवक द्वारा लाये
ो देखकर और लम्बा सांस लेकर मुझ पर दृष्टि डाली और कहा—
रक आओ।' तब मैं स्वामी के समीप गया। इसके पश्चात् सिर से पट्टी
र शरीर से निकले हुये रुधिर के बिन्दुओं से बाण को भीगा मुख करके
ो (यह) सन्देश भेजा है। (यह कहकर पट्टी देता है)।

(दुर्योधन लेकर पढ़ता है)

:वस्ति। कर्ण युद्ध-भूमि से महाराज दुर्योधन का यह अंतिम कण्ठालिङ्गन
निवेदन करता है—

ह शस्त्र-समूह के प्रयोग में चतुर है; कोई भी पुरुष युद्ध में इसके तुल्य
: यह मुझे भाइयों से भी अधिक है; यह पाण्डु के पुत्रों को जीत लेगा,
ार से आपने मेरा सम्मान किया, लेकिन मैं दुःशासन के शत्रु को न
ा, (इसलिये अब) आप स्वयं (अपने) भुजाओं के बल से अथवा
से (अपने) शोक का प्रतिकार करो' ॥१२॥

। ततः शीर्षस्थानाल्लट्टिकामपनीय स्वशरीरसगलितैः शोणितबिन्दुभि
अमुख । अत्र कूबरस्तु युगंधरः इत्यमरः । शीर्षं मस्तकम्।
नीय [दूरीकृत्य]।

मस्त्रेति। अयं कर्णः [अस्त्रग्रामस्यास्त्रसमूहस्य विधौ प्रयोगे] कृती कुशलः।
स्नेहाकारेणाहं यत्संभावितो भवता प्रसिद्धः कृतः। प्रतिकारः प्रतीकारः इति
रभेदः। स्वं प्रतिकारमेहि गच्छ। तथा च युद्ध्वा वा। रुदित्वा वा। राजन्
ाटुमं त्यजेति भावः। अहं तु सर्वथा न समर्थो मयि समर्पित कार्यभारं
ोढुमिति निर्वेदः। तदुक्तं साहित्यदर्पणे तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वाव-
ननम् इति।] ॥१२॥

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण, किमिदं भ्रातृशतवधदुःखितं मामपरेण वाक्श[illegible] घट्टयसि । भद्र सुन्दरक, अथेदानीं किमारम्भोऽङ्गराजः ।

सुन्दरकः—देव, अपनीतशरीरावरण आत्मवधकृतनिश्चयः पुनरपि पा[illegible] सह समरं मार्गयते । [देव अवणीदसरीरावरणो अप्पवहकिदणिच्चओ पुणो पत्थेण सह समलं मग्गदि ।]

दुर्योधनः—(आवेगादासनादुत्तिष्ठन्) सूत, रथमुपनय । सुन्दरक, त्वम[illegible] मद्वचनात्त्वरिततरं गत्वा वयस्यमङ्गराजं प्रतिबोधय । अलमतिसाहसेन । अस्ति एवावयोः संकल्पः । न खलु भवानेको जीवितपरित्यागाकाङ्क्षी । किं तु

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा
मुक्त्वा बाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च ।
कृत्वान्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं
संत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखितौ निर्वृतौ च ॥१३॥

अथ च शोकं प्रति मया न किंचित्संदेष्टव्यम् ।

वृषसेनो न ते पुत्रो न मे दुःशासनोऽनुजः ।
त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि ॥१४॥

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः) । [जं देवो आणवेदि ।]

दुर्योधनः—तूर्णमेव रथमुपस्थापय ।

सूतः—(रथं दत्त्वा) देव, हेषामांसलिनो [illegible] सूच्यते । [illegible] सर्वदापि सूत परिश्रमोत्तीर्णो रथः ।

दुर्योधनः—सूत, [illegible] त्वं समारोह ।

देव [illegible] वृषध्वजे । [शरीरावरणं सनाह । [illegible] . . ।] [illegible] धर्म [illegible] ।

[illegible] । अशिवम[illegible] । बाष्पं मुक्त्वा । अपुनर्भावि [न पुनर्भ[illegible] [illegible] ।] गाढोपगूढं [illegible] । इमां हततनुं [illegible] । [illegible] । [illegible] । प्रथमं तु [illegible]

दुर्योधन—मित्र कर्ण, सौ भाइयों के वध से दुःखी मुझको यह दूसरे वाणी के बाण से क्यों बींध रहे हो ? भद्र सुन्दरक, तो अब अंगराज क्या काम कर रहे हैं ?

सुन्दरक—महाराज, अपने शरीर से कवच उतारकर और आत्मघात का निश्चय करके वह फिर अर्जुन के साथ युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दुर्योधन—(जल्दी से आसन से उठकर) सूत, रथ लाओ। सुन्दरक, तुम बहुत जल्दी जाकर मेरी ओर से मित्र अंगराज को सचेत करो—आत्मघात के साहस से दस करो। हम दोनों का निश्चय एक ही है। केवल एक आप ही प्राण छोड़ने की इच्छा नहीं कर रहे, प्रत्युत—

'पृथा (कुन्ती) के पुत्रों को मारकर, बन्धु लोगों को अंजलि जल देकर (तर्पण करके), (शेष बचे हुए) कुछ मंत्रियों और शत्रुओं के साथ आँसू बहाकर और परस्पर दुबारा न होने वाला (अर्थात् अंतिम) गाढ़ आलिंगन करके दुःखी और शान्त हुये हम दोनों इस अधम शरीर को त्याग देंगे। ॥१३॥

'(पुत्र के) शोक के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि—

'वृषसेन तुम्हारा (ही) पुत्र नहीं था; दुःशासन मेरा (ही) छोटा भाई नहीं था। मैं तुम्हें क्या सान्त्वना दूँ ? तुम ही मुझे धैर्य बँधाओगे' ॥१४॥

सुन्दरक—जो महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर निकल जाता है)।

दुर्योधन—शीघ्र ही रथ लाओ।

सूत—(कान लगाकर) देव, हिलहिलाहट से मिश्रित पहिये की ध्वनि (घेरे) की आवाज सुनाई पड़ रही है। इससे सोचता हूँ कि (यह) स्वयं ही सेवक द्वारा लाया हुआ रथ है।

दुर्योधन—सूत, जाओ, तुम तैयार करो।

दुःखितौ मुमुक्षू ॥१३॥

वृषसेन इति। (वृषसेनः ते तवैव पुत्रो न। आवयोरभिन्नत्वान्ममापीति भावः। दुःशासनः मे अनुजः कनीयान् भ्राता न। तवापीति शेषः। अतोऽहं त्वां किं बोधयामि। त्वमपि मां किं संस्थापयिष्यसि। प्रत्युभयं परिदर्शितं। आवयोरभिन्नत्वात्समानदुःखत्वात्परस्परं सान्त्वनाऽनपेक्षितमिति भावः।) ॥१४॥

सूतः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

दुर्योधनः—(विलोक्य) किमिति नारूढोऽसि ।

सूतः—एष खलु तातोऽम्बा च संजयाधिष्ठितं रथमारुह्य देव-मुपगतौ ।

दुर्योधनः—किं नाम तातोऽम्बा च संप्राप्तौ । कष्टमतिबीभ-दैवेन । सूत, गच्छ त्वं स्यन्दनं तूर्णमुपहर । अहमपि तातदर्शनं परिह-तिष्ठामि ।

सूतः—देव, त्वदेकशेषबान्धवावेतौ कथमिव न समाश्वासयसि ।

दुर्योधनः—सूत, कथमिव समाश्वासयामि विमुखभागधेयः । पर-

अद्यैवावां रणमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा
घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च ।
तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां
पार्श्वं पित्रोरपगतघृणः किं नु वक्ष्यामि गत्वा ॥१

तथाप्यवश्यं वन्दनीयौ गुरू ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

हेषा अश्वशब्दः । संवलितो मिश्रः । नेमिध्वनक्रान्तः । त्वदेक-त्वमेको बान्धवो ययोरिति समासः ।

अद्येति । आवामहं दुःशासनश्च । [प्रसभं हठात् ।] तामवस्थां मरण-

सूत—जो महाराज कहें। (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश करता है)।

दुर्योधन—(देखकर) तुम (रथ पर) चढ़े क्यों नहीं हो ?

सूत—यह पिता जी और माता जी संजय द्वारा अधिष्ठित रथ पर बैठकर महाराज के समीप आये हैं।

दुर्योधन—क्या ? पिता जी और माता जी आये हैं ? बड़ा दुःख है, दैव ने बड़ा अनर्थ किया। सूत, जाओ, तुम जल्दी से रथ लाओ। मैं भी पिता की दृष्टि बचाकर एकान्त में खड़ा होता हूँ।

सूत—महाराज, आप इन्हें, जिनके आप ही एकमात्र सम्बन्धी अवशिष्ट हैं, सान्त्वना क्यों नहीं देते ?

दुर्योधन—सूत, विपरीत भाग्य वाला मैं किस प्रकार सान्त्वना दूँ ? देखो—

आज ही हम दोनों पिता जी और माता जी का दर्शन करके युद्ध में आये थे, उन दोनों ने प्रणाम करते हुये मेरा और दुःशासन का सिर सूंघा था। बालक के शत्रु द्वारा बलपूर्वक उस अवस्था (मृत्यु) को प्राप्त करा देने पर स्वयं माता-पिता के पास जाकर क्या कहूँगा ? ॥१५॥

तो भी माता-पिता की अवश्य वन्दना करनी चाहिये।

(दोनों बाहर निकल जाते हैं)

※ चतुर्थ अङ्क समाप्त ※

पितरावत्र पिता मात्रा इत्येकशेषः। घृणा करुणा जुगुप्सा वा। जुगुप्साकरुणे घृणे इत्यमरः। पित्रोः पार्श्वं गत्वा किं नु वक्ष्यामीत्यन्वयः ॥१५॥

अमूत यं रत्नधरो गुणाढ्यो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतौ व्यरंसीदङ्कश्चतुर्थो वरटिप्पनेऽत्र॥

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति रथयानेन गान्धारी संजयो धृतराष्ट्रश्च)

धृतराष्ट्रः—वत्स संजय, कथय कथय कस्मिन्नुद्देशे कुरुकुलकाननैकशेषतरुर्वत्सो मे दुर्योधनस्तिष्ठति । अपि जीवति वा न वा ।

गान्धारी—जात, यदि सत्यं जीवति मे वत्सस्तत्कथय कस्मिन्देशे वर्तते । [जाद जइ सच्चं जीवदि मे वच्छो ता कहेहि कस्सि देसे वट्टदि ।]

संजयः—नन्वेष महाराज एक एव न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति ।

गान्धारी—(सकरुणम्) जात, एकाकीति भणसि । किं नु खलु सांप्रतं भ्रातृशतमस्य पार्श्वे भविष्यति । [जाद एआइ त्ति भणासि । किं णु क्खु संपदं भादुसदं से पास्से भविस्सदि ।]

संजयः—तात, अम्ब, अवतरतं स्वैरं रथात् ।

(उभाववतरणं नाटयतः)

(ततः प्रविशति सव्रीडमुपविष्टो दुर्योधनः)

संजयः—(उपसृत्य) विजयतां महाराजः । नन्वेष तातः अम्बया सह प्राप्तः । किं न पश्यति महाराजः ।

दुर्योधनः—(वैलक्ष्यं नाटयति)

धृतराष्ट्रः—

शल्यानि व्यपनीय कङ्कवदनैरुन्मोचिते कङ्कटे
बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः ।

एकशेषोऽवशिष्टः । प्रवालोऽङ्कुरः । प्रवालमङ्कुरेऽप्यस्त्री इत्यमरः । कच्चित् कामप्रवेदने इति चामरः ।]...मे पुनस्तत्कथय कस्मिन्नुद्देशे वर्तते । सांप्रतं भ्रातृशतमस्य...। अत्र जात पुत्र [स्वैरं शनैः सुखमिति ।] सव्रीडं सलज्जं यथा स्यादेवम् ।

पञ्चम अङ्क

(पश्चात् रथ पर सवार होकर गान्धारी, संजय और धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं)

धृतराष्ट्र—वत्स संजय, बतलाओ, बतलाओ कुरु-कुल रूपी कानन का एक-मात्र अवशिष्ट अंकुर, मेरा पुत्र दुर्योधन किस जगह है ? वह जीवित है अथवा नहीं ?

गान्धारी—पुत्र, यदि मेरा वत्स सचमुच जीवित है तो बतलाओ वह किस स्थान पर है ?

संजय—यह महाराज अकेले ही वट-वृक्ष की छाया में बैठे हैं।

गान्धारी—(करुणापूर्वक) पुत्र, 'अकेला है' यह क्यों कहते हो ? इस समय उसके पास तो सौ भाई होंगे।

संजय—तात, अम्बा, धीरे २ रथ से उतरिये।

(दोनों उतरने का नाट्य करते हैं)

(तब लज्जित अवस्था में बैठा हुआ दुर्योधन प्रवेश करता है)

संजय—(पास जाकर) महाराज की जय हो। यह पिता जी माता जी के साथ आये हैं। महाराज क्यों नहीं देख रहे ?

दुर्योधन—(लज्जा का नाट्य करता है)।

धृतराष्ट्र—

कवच उतारने पर चिमटी के मुख से बाणों के अग्रभाग निकालकर घावों पर पट्टियों के बांध देने पर धीरे से कर्ण का सहारा लिये हुए और (पहले)

शल्यानीति। [कङ्कस्य पक्षिविशेषस्य वदनमिव वदनं येषां तैः कङ्कवदनैः शस्त्रविशेषैः। शल्यानि बाणाग्राणि [व्यपनीय] उद्धृत्य कङ्कटे सनाहे [उन्मोचिते] अपनीते। कर्णे कृतः अपाश्रयः आश्रयो येन तादृशः। आदौ भवता निर्जिताः पश्चाच्च सान्त्वितास्तान् शत्रुपक्ष्यान् नरपतीन् लीलया आलोकयन् [...]वान्। एष क्षत्रियाणां धर्मः यन्निर्जिता अपि शत्रवः सान्त्वनीया एवेति। हे [...]क क्षतजा पीडा सह्यते पापेन पुत्रविनाशान्मन्दभाग्येन मया न दृष्टः ॥१॥

दूरान्निर्जितसान्त्वितान्नरपतीनालोकयँल्लीलया
सह्या पुत्रक वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान् ॥१॥

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्पर्शेनोपेत्यालिङ्गतः ।)

गान्धारी—वत्स, अतिगाढप्रहारवेदनापर्याकुलस्यास्मासु संनिहितेष्वपि न प्रसरति ते वाणी । [वच्छ अदिगाढप्पहारवेअणापज्जाउलस्स अह्मेहिं सण्णिहिदेहिं वि ण प्पसरदि दे वाणी ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, किमकृतपूर्वः संप्रति मय्यप्ययमध्याहारः ।

गान्धारी—वत्स, यदि त्वमप्यस्मान्नालपसि तत्किं सांप्रतं वत्सो आलपतु दुर्मर्षणो वाथान्यो वा । [वच्छ जइ तुमं वि अह्मे ण आलवसि संपदं वच्छो दुस्सासणो आलवदु दुम्मरिसणो वा अध अण्णो वा ।] रोदिति) ।

दुर्योधनः—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य बाष्पपयसां तव चाम्ब हेतुः ।
दुर्जातमत्र विमले भरतान्ववाये
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ॥२॥

गान्धारी—जात, अलं परिदेवितेन । त्वमपि तावदेकोऽस्माकमन्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः । तच्चिरं जीव । किं मे राज्येन जयेन वा । [जाद अलं परिदेविदेण । तुमं वि दाव एक्को अम्हाणं अन्धजुअलस्स मग्गोवदेसओ । ता चिरं जीव । किं मे रज्जेण जएण वा ।]

दुर्योधनः—

स्पर्शेन [illegible] हस्तपरामर्शेन समीपमागतस्य । गान्धार्यां अपि [illegible] स्वमर्मु[illegible] [illegible] । [illegible] गान्धारी [illegible] पुत्रानुमतमप्युग्रम् । . [illegible]

गोते गये और (पश्चात्) सान्त्वना दिये गये राजाओं को दूर से ही शान से देखने ले आप से मुझ पापी ने यह न पूछा (पूछने का सु-अवसर न पाया)—'हे त्र, तुम्हारी वेदना सह्य तो है ?' ॥१॥

(धृतराष्ट्र और गान्धारी टटोलते हुए पास आकर आलिङ्गन करते हैं)

गान्धारी—वत्स, हमारे समीप आने पर भी अत्यधिक गम्भीर प्रहारों की ोडा से व्याकुल हुए तुम्हारी वाणी भी नहीं चल रही है।

धृतराष्ट्र—वत्स दुर्योधन, मेरे प्रति भी अब तुम्हारा यह पहले कभी न त्या गया मौन क्यों ?

गान्धारी—वत्स, यदि तुम हमसे नहीं बोलोगे, तो क्या अब पुत्र दुःशासन ोलेगा ? या दुर्मर्षण अथवा कोई अन्य (बोलेगा) ? (रोती है)

दुर्योधन—

हे माता, बिना प्रतिशोध लिये अनुज का नाश देखने वाला मैं पापी ता की और आपके आँसुओं का निमित्त हूँ। इस निर्मल भरत-कुल में नुचित रूप से उत्पन्न और (आपके) पुत्रों का नाश करने वाले मुझे आप त्र क्यों समझती हैं ? ॥२॥

गान्धारी—पुत्र, विलाप न करो। अब तुम अकेले ही इस अन्धे युगल को ार्ग बतलाने वाले हो। चिरजीवी रहो। मुझे राज्य से अथवा जय से क्या प्रयोजन) ?

दुर्योधन—

हृशुणं तदा। बबन्ध नेत्रे स्वे राजन् पतिव्रतपरायणा ॥} अनहृतमम्बार ाः। यदि त्वं मां नाभ्यर्गि तदा कि.. ।

पाप इति। हे अम्ब [अहं पापः यतः] तव तातस्य च बाष्पयमो हेतुः ारण जातोऽस्मि। कीदृशः। अप्रतिकृतोऽनीकाविपदीदृशो योऽनुजनाशः [त पश्यतीति] तद्दर्शी। त्वं मां पुत्र इति किमर्थमपि जानासि। कीदृशम्। को ुत्पादमिह भरतकुले दुर्जातं दुष्पुत्रम्। पुन. कीदृशम्। कः सुतविनाशकरम्। । इति वार्ताश्रितोऽम्बवदुपदानवति। आशाद्दृष्ट.वा उमयत्र तत्वात्। गद्द' त्वयस्य वा ।

त्वमेव।

मातः किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते
सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा।
निर्वत्सले सुतशतस्य विपत्तिमेतां
त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ॥३॥

नूनं विधेहितमिदं गुरुशोकाय।

संजयः—महाराज, किं वार्तं लोकवादो विनय—'न पराग् हन्ते रज्जुरपि तत्र प्रयोक्तव्या' इति।

दुर्योधनः—अपुष्कलमिदम्। उपविश्यमानाभावे किमुपकरणेन। (इति रोदिति)।

धृतराष्ट्रः (दुर्योधनं परिष्वज्य) वत्स, समाश्वसिहि। समाश्वासय चास्मानिमामतिदीनां मातरं च।

दुर्योधनः—तात, दुर्लभः समाश्वास इदानीं युष्माकम्। किं तु

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया।
विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ॥४॥

गान्धारी—जात, एतदेव सांप्रतं प्रभूतं यत्त्वमपि तावदेको जीवसि। तज्जात, अकालस्ते समरस्य। प्रसीद। एष ते शीर्षाञ्जलिः। निवर्त्यतां समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरु मे वचनम्।

[जाद एद एव्व सपदं प्पभूदं जं तुमं वि दाव एक्को जीवसि। ता जाद अकालो दे समरस्स। प्पसीद। एसो दे सीसञ्जली। णिवट्टीअदु समरव्वावारादो। अपच्छिमं करेहि वअणम्।]

मातरिति। किमप्यनिर्वचनीयम्। कृपणं दीनम्। सुक्षत्रिया शोभनक्षत्रिय-जातिः। क्वेति। अत्यन्तासम्भवेऽर्थे द्वौ क्वौ प्रयुज्येते इति कोषः। हे निर्वत्सले अवात्सल्यवति वात्सल्यहीने वा ॥३॥

किं वितथोऽसत्यः किं तु सत्य एवेत्यर्थः। रज्जुः रशनादिग्रहः। इदं ... । श्रेयाञ्छ्रेष्ठः पुष्कलः स्यात् इत्यमरः। [न सर्वव्यापीत्यर्थः।]

माता, तुम्हारा यह कैसा अनुचित और दीनतापूर्ण वचन है। कहाँ आप क्षत्रिय वीराङ्गना ? और कहाँ यह दीनता ? हे अवत्सले, आप सौ पुत्रों विपत्ति का विचार नहीं कर रहीं; मुझ अयोग्य की रक्षा कर ॥३॥

स्वयं ही यह पुत्र-शोक की करामत है।

नय—महाराज, क्या यह लोकोक्ति झूठी है कि घड़ा कुयें में गिर जाने ी भी वहाँ नहीं फेंक दी जाती।

ौधन—यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। उपकार्य के अभाव में उपकार- से क्या (लाभ) ? (यह कहकर रोने लगता है)।

राष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके) वत्स, धैर्य रक्खो। हमें और स अतिदुःखित माता को भी सान्त्वना दो।

ौधन—तात, अब आप लोगों को सान्त्वना मिलनी कठिन है।

न्तु—

ज मेरे द्वारा मार डाले गये पुत्रों वाली कुन्ती के साथ शोक मे भी ान तुम दोनों पुत्रों की चिन्ता करना ॥४॥

न्धारी—पुत्र, मेरे लिये अब यही बहुत है कि एक तुम ही जीवित रहो। ; हे पुत्र, अब तुम्हारे युद्ध का समय नहीं है। प्रसन्न होओ। मैं तेरे ोड़ती हूँ। युद्ध करना बन्द कर दो और अपने पिता के वचन का पालन

ाणानां रक्षणीयानां भ्रातृणामभावे उपकरणेन मम प्राणरक्षणेन किम्। ावे किं साधनेनेत्यर्थः।]

न्त्येति। अद्य [मया निहतपुत्रया] कुन्त्या सह युवां [शोकेऽपि विराजमानौ स्याः पुत्रान् हत्वा कृतवैरनिर्यातनाद्विति भावः।] तनयाननुशोचतमित्य- ॥४॥

दमेव...यत्त्वामप्येकं नानुशोचयिष्ये। तज्जात प्रसीद। एष ते शीर्ष ः। निवर्त्यतामेतस्मात्समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरु पितुर्वचनम्। अत्र युक्तम्। शीर्षेऽञ्जलिः प्रणामः। अपश्चिममलङ्घ्यम्। सपत्नः शत्रुः

धृतराष्ट्रः — वत्स, शृणु वचनं तवाम्बाया मम च निहताशेषबन्धुव
र्गस्य ।

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात् ।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पाल

दुर्योधनः — समरात्प्रतिनिवृत्य किं मया कर्तव्यम् ।

गान्धारी—जात, यत्पिता ते विदुरो वा भणति ।

[जाद ज पिदा दे विउरो वा भणादि ।]

संजयः - देव, एवमिदम् ।

दुर्योधनः—संजय, अद्याप्युपदेष्टव्यमस्ति ।

संजयः—देव, यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रजाव

दुर्योधनः—(सक्रोधम्) शृणुमस्तावद्भवत एव प्रज्ञावतः संजय
मुपदेशम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, युक्तवादिनि संजये किमत्र कोपेन । यदि मा
तदहमेव भवन्तं ब्रवीमि । श्रूयताम् ।

दुर्योधनः—कथयतु तातः ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, किं विस्तरेण । संधत्तां महानितानोमपि युधिष्ठि
रानुबन्धेन ।

दायादा इति । [ययोर्बलेन दायं पित्रादि [illegible] [illegible] वा [illegible] [illegible] । दायादा इत्यर्थः । न गणिताः [illegible] । तौ द्रोणभीष्मौ [illegible] कर्णस्यात्मजं [illegible] शमयतः [illegible] । फाल्गुनादर्जुनात् [illegible] फाल्गुन । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फाल्गुन इति [illegible] । मे वत्सानां [illegible] [illegible] रिपुः अधुना त्वयि [illegible] [illegible] प्रतिज्ञा यस्य स [illegible]

ारी—पुत्र, अपनी माता के और मेरे जिसके सब बन्धु मर गये हैं, ो सुनो। देखो—

के बल पर दायादों (हिस्सेदारों) की चिन्ता नहीं की, वे भीष्म और रे गये; कर्ण के सामने ही उसके पुत्र को मारने वाले अर्जुन से संसार मेरे पुत्रों को मार देने के कारण इस समय शत्रु (केवल) तुम्हारे ही शेष प्रतिज्ञा वाला है। (इसलिये) हे पुत्र, शत्रु के प्रति अभिमान और इन अन्धे माता-पिता का पालन करो ॥५॥

धन—युद्ध से पराङ्मुख होकर मैं क्या करूंगा ?

ारी—पुत्र, तुम्हारे पिता अथवा विदुर जो कुछ कहें।

य—महाराज, यह ठीक है।

धन—संजय, क्या अब भी उपदेश का अवसर है ?

य—महाराज, विजिगीषु (विजयार्थी) जब तक जीवित रहता है, तब मात्रों के उपदेश का पात्र होता है।

धन—(क्रोध से) अच्छा तो, हम आप ही बुद्धिमान् का अपने लिये पदेश सुनते हैं।

राष्ट्र—वत्स, उचित बात कहने वाले संजय पर इस विषय में क्रोध ते हो ? यदि आप शान्त हो जायें तो मैं ही आप से कहूंगा।

धन—पिता जी कहें।

राष्ट्र—पुत्र, विस्तार से क्या (लाभ) ? आप अब भी अभीष्ट कार्य कर : से सन्धि कर लें।

[illegible] । दायादानि इत्यादिरर्थः । अतः तात वत्स । [illegible] ... सौवेल वा सुत । रिपोर्नुपस्य कर्मणः [illegible] ... [illegible] । पाण्डुपुत्रैः सम्प्रति [illegible] ... [illegible] ... [illegible] ॥५॥

[illegible] विदुरो यद्ब्रूयात् । पिता विदुरश्चापि हितोपदेशम् । [illegible] ... [illegible]

दुर्योधन — तात, तनयस्नेहर्षंकृस्यारम्भा बाणिशरशातमंजयश्च अवीतु । युष्माकमस्यैव व्यामोहः । अथ वा प्रभवन्ति पुत्रनाशजन्मा इ
अन्यच्च तात, अस्खलितभ्रातृशतोऽहं यदा सवानवीरितवासुदेवमामन्त्र
संप्रति हि दृष्टपितामहाचार्यानुजराजचक्रविपत्तिः स्वशरीरमात्रस्नेहदु
व्रीडावहमसुखावसानं च कथमिव करिष्यति दुर्योधनः सह पाण्डवैः सं
अन्यच्च । नयवेदिन्संजय,

हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ।
दुःशासने हतेऽहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् ॥६॥

धृतराष्ट्रः—वत्स, एव गतेऽपि मत्प्रार्थनया न किंचिन्न करोति युधिष्ठि
अन्यच्च । सर्वदैवाप्रहृष्टमात्मानं मन्यते युधिष्ठिरः ।

दुर्योधनः—कथमिव ।

धृतराष्ट्रः—वत्स श्रूयतां प्रतिज्ञा युधिष्ठिरस्य । नाहमेकस्यापि भ्रातुर्वि
प्राणान्धारयामीति । बहुच्छलत्वात्सङ्ग्रामस्यानुजनाशमाशङ्कमानो दृढं
रोचते तदेवासौ सङ्गः संधातुम् ।

संजयः — एवमिदम् ।

गान्धारी — जात, उपपत्तियुक्तं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम् ।
[जाद उव्वत्तिज्जुत्त पडिवज्जस्स पिदुणो वअणम् ।]

पुरिति स्मृतः ॥' इति विजिगीषुलक्षणम् । वैक्लव्याद्विह्वलत्वात् । अम्बा वदतीति
शेषः । बालिशत्वेन मूर्खतया सजयो वदतीति शेषः । नाम निश्चये । इद
ज्वरस्तातस्येति शेषः । तातेत्यादि हे तात दुर्योधनः कथं संधिं करिष्यतीत्यन्वय
अस्खलितमविनष्टं । साम संधानम् । [दृष्टा] पितामहो भीष्मः । आचार्यो
द्रोणः । [अनुजा दुःशासनादयः] राजचक्रं क्षत्रियसंघः । [इत्येतेषां विपत्तिर्य
सः ।] [स्वशरीरमेव स्वशरीरमात्रं तस्मिन् स्नेहस्तस्मात् ।] व्रीडां हृदि
[उदात्ताश्च ते पुरुषाश्च तेषां व्रीडामावहतीति व्रीडावहम् ।] उदात्तकथापी
करमुत्तमकपालज्ञाकरम् । दुःखान्तं च ।

हीयमाना इति । किलागमे । रिपोरहिताद् । हीयमाना हीनाः नृपाः पराज
। स्वापेक्षया यदि परे शक्ता भवन्ति तदा तैः समं संधिः कर्तव्य इ

... पुत्रस्नेह जन्य विकलता के कारण माता जी तथा मूर्खता के कारण संजय इस प्रकार भले ही कहें, लेकिन आपको भी यह बुद्धि-विभ्रम ? अथवा पुत्रों की मृत्यु से उत्पन्न शोक का ही यह प्रभाव है। और दूसरे, पिता जी, जब मेरे सौ भाई नष्ट नहीं हुए थे, तब मैंने कृष्ण के शान्ति-प्रस्तावना की अवहेलना कर दी थी। तो अब दुर्योधन, जिसने पितामह, आचार्य, छोटे भाइयों तथा राज-समूह की विपत्ति (मृत्यु) देख ली है, केवल अपने शरीर के प्रति मोह के कारण पाण्डवों के साथ उदात्त पुरुषों के लिये लज्जा-जनक और दुःखमात्र परिणाम वाली सन्धि कैसे करेगा ? और भी, हे नीतिविज्ञ संजय,

शत्रु से निर्बल राजा लोग ही शत्रु से सन्धि किया करते हैं। (तब) दुःशासन के मरने पर अनुज-समेत प्रबल पाण्डव क्यों (सन्धि करेंगे) ? ॥६॥

धृतराष्ट्र—वत्स, ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना पर युधिष्ठिर अवश्य ही कुछ भी कर लेगा। दूसरे, युधिष्ठिर हमेशा ही स्वयं को हीन समझता है।

दुर्योधन—कैसे ?

धृतराष्ट्र—वत्स, सुनिये, युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा है कि—'मैं एक भी भाई के मर जाने पर प्राण धारण नहीं करूँगा।' युद्ध के अनेक कपटों से पूर्ण होने के कारण भाइयों के नाश से डरने वाला वह (युधिष्ठिर) अब भी आपको अच्छा लगे, तब ही सन्धि करने को तैयार है।

संजय—यह बिल्कुल ऐसा ही है।

गान्धारी—पुत्र, पिता के युक्तियुक्त वचन को स्वीकार कर लो।

भावः। दुःशासने हते सति सानुजाः पाण्डवा अहीनाः सन्तः कथं प सन्धास्यन्त इत्यर्थः ॥६॥

एवं गतेऽपि भवदुक्तनीतियदार्थस्वेऽभीत्यर्थं। मम प्रार्थनया युधिष्ठिरः किंचित्करोत्येवं न। किं तु किंचित्करोत्येव। ननु हे राजन युधिष्ठिरः सर्वमेवात्मन नैवानुमन्यते। तस्य दक्षिणत्वात्सदा धर्मपरायणत्वाच्चेति भावः। कथमिव पुन इदमित्यर्थः। बहूनि [छलानि यस्मिन्सो बहुच्छलस्तस्य भावः स्वं तस्मात्।] भवते रोचते तुभ्यं रुचिविषयीभवति। रुच्यर्थानां इति चतुर्थी। उपपत्तियुक्तं प्रतिवचनं निरूपणम्। अत्र प्रतिवचनस्य आशीर्ः

अभिमुखमरीन्घ्नन्तः संख्ये हताः शतमात्मजा
वहतु सगरेणोढां तातो धुरं महितोऽम्बया ॥८॥

विपर्यये त्वस्याधिपतेरुल्लङ्घितः क्षात्रधर्मः स्यात् ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः)

गान्धारी— (आकर्ण्य सभयम्) जात, कुत्रैतत् हाहाकारमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते । [जाद कहिं एदं हाहाकारमिस्सं तूररसिदं सुणीअदि ।]

संजयः—अम्ब, भूमिरियमेवंविधानां भीरुजनत्रासनानां महानिनादानाम् ।

धृतराष्ट्रः— वत्स संजय, ज्ञायतामतिभैरवः खलु विस्तारी हाहारवः । कारणेनास्य महता भवितव्यम् ।

दुर्योधनः—तात, प्रसीद । पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम् । यावदपरमपि किंचिदत्याहितं न श्रावयति तावदेवाज्ञापय मां सङ्ग्रामावतरणाय ।

गान्धारी—जात, मुहूर्तं तावन्मां मन्दभाग्यां समाश्वासय ।

[जाद, मुहुत्तअं दाव मं मन्दभाइणीं समस्ससेहि ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, यद्यपि भवान्समराय कृतनिश्चयस्तथापि रहःपरप्रतीकारोपायश्चिन्त्यताम् ।

दुर्योधनः—

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः
किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकाशं रणे ।

अभिमुखं यथा तथा अरीन् घ्नन्तः] तत्रात्मजाः शतं शतसंख्याका हताः अतोऽम्बया सह सगरेणोढां धुरं तातो वहतु । यथा सगरस्य शतं पुत्राः [illegible] हतास्तथा तवापीति भावः । कीदृशाः । अभिमुखं क्रुद्धाञ्छत्रून्घ्नन्तो नाशयन्तः । इदं विशेषणं सगरसुतेष्वपि । एवं कलितभुवना इत्याद्यपि । शतमात्मजा इति । शतसंख्याया एकवचनान्तेनैव शतशब्देनोक्तत्वादात्मजपदेन बहुवचनान्तेन च तदभिधानादन्वयः । ऊढां धृताम् ॥८॥

[विपर्यये भवान् धुरं न वहेत् चेत्] क्षात्रवृत्तिः क्षत्रियधर्मः । [illegible] हाहाकारविमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते । अत्याहितमनिष्टम् । मुहूर्तकमिति समाश्वासय । अत्र मुहूर्तकमित्यत्र स्वार्थे कः । प्रतीकारो

गये (तुम्हारे) सौ पुत्र युद्ध में सामने होकर शत्रुओं पर प्रहार करते
ये हैं। (इसलिए अब) माता-सहित पिता सगर द्वारा वहन की गई
) धुरा को धारण करें ॥८॥

विपरीत होने पर तो अधिपति के क्षात्रधर्म का उलङ्घन होगा।

(नेपथ्य में प्रचण्ड कोलाहल होता है)

री—(सुनकर भय से) पुत्र, यह हाहाकार से मिश्रित वाद्य-ध्वनि
दे रही है?

—अम्ब, यह तो भीरु लोगों को डराने वाली इसी प्रकार की प्रचण्ड
भूमि है।

—वत्स संजय, मालूम करो। यह हाहाकार का शब्द तो बड़ा
प्रचण्ड है। अवश्य ही इसका कोई महान् कारण होगा।

—तात, कृपा कीजिये। हमारा ही भाग्य विपरीत है। जब तक
ई अन्य अनिष्ट नहीं सुनाता, तब तक ही मुझे युद्ध-भूमि में उतरने
जिये।

—पुत्र, मुहूर्त-भर मुझ अभागी को धैर्य बंधाओ।

—वत्स, यद्यपि आपने युद्ध के लिए निश्चय किया हुआ है, फिर
से शत्रु के वध का उपाय सोचो।

—

मने बान्धवों को मारने वाले शत्रु छिपकर मारने योग्य नहीं हैं।
रने से क्या (लाभ) ? जो उनके समान युद्ध में प्रकट रूप से

रति। [प्रयत्नं अस्माकं लोकानां वा समक्ष हताः अस्माकं बान्धवा
ावो रहः गुप्त हन्तुं न योग्याः। प्रयत्नापकारिणां प्रयत्नमेव हननं
मित्यर्थः। पाठान्तरे] मम रणः पराहन्तुं न क्षम इत्यन्वयः। तेन
ायेन हतेन वा किम्। किं तु न किमपि। तर्हि कर्म
चे न [प्रकाशं] प्रकारान्तरेण बोधनीयम्। यदित्यत्र तात्पर्याभिप्रायमेव
रिव हतम् इति पाठे यथा तैः शत्रुभिः हतं निष्फल रणाप्रकाशना-

गान्धारी—जात, एकाकी त्वम् । करते साहाय्यं करिष्यति ।
[जाद एआइ तुमम् । को दे सहाअत्तणं करिस्सदि ।]

दुर्योधनः—

एकोऽहं भवतीसुतक्षयकरो मातः कियन्तोऽरयः
साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी ॥६

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो योधाः, निवेदयन्तु भवन्तः कौरवेश्वराय इदं महत्कदनं प्रवृ... थलमप्रियश्रवणपराङ्मुखतया । यतः कालानुरूपं प्रतिविधातव्यमिदानीं... तथा हि ।

त्यक्तप्राजनरश्मिरङ्किततनुः पार्थाङ्कितैर्मार्गणै-
र्वाहैः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयादाकृष्यमाणः शनैः ।
वार्तामङ्गपतेर्विलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां
शून्येनैव रथेन याति शिबिरं शल्यः कुरून्शल्ययन् ॥७

दुर्योधनः—(श्रुत्वा साशङ्कम्) आः केनेदमविस्पष्टमशनिपातदारुणं... पितम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

सूतः—हा हताः स्मः । (इत्यात्मानं पातयति)

दुर्योधनः—अयि कथय कथय ।

दित्यर्थः । हे मातरेकोऽहमद्वितीयः श्रेष्ठो वास्मि । कीदृशः । भव... पुत्रनाशकरः । भवतीत्यत्र पुंवद्भावाभावः प्रियादिपाठात् । स्त्रियाः पुंवत् इ... योगविभागाद्वा । कियन्तोऽल्पाः । केवलं दैवमेव श्लाघ्यमस्तु । [पाठान्... साम्यं समता निष्पक्षपातित्वमिति यावत् ।] मेदिनी निष्पाण्डवा भवेत् । ... क्रिया नास्ति तत्र कृम्बस्तयो ग्राह्या इति व्युत्पत्तिः ॥६॥

कदनं पापं भीषणं वा । कदनं भीषणे पापे इति विश्वः ।

... । शल्यः शून्येनैव रथेन शिबिरं यातीत्यन्वयः । किं भूतं ...

गान्धारी—पुत्र, तू अकेला है। कौन तेरी सहायता करेगा ?

दुर्योधन—

मैंने अकेले ही आपके पुत्रों को नष्ट कर दिया है, (फिर) हे माता, शत्रु ने हैं ? अब केवल भाग्य ही समान (निष्पक्ष) हो जाय तो पृथ्वी पाण्डवों हित (हो जायेगी) ॥९॥

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के पश्चात्)

हे वीर लोगों, आप कौरवों के अधिपति से इस वर्तमान महान् अनर्थ को ना दें। अप्रिय सुनने के विषय में मुंह मोड़ने से बस करो। क्योंकि जो घोषित है, अब उसका प्रतिविधान तो करना ही होगा। क्योंकि—

चाबुक और लगाम छोड़े हुए, अर्जुन के नाम से अङ्कित बाणों से विक्षिप्त र वाला, रथ के मार्ग से परिचित होने के कारण घोड़ों द्वारा धीरे-धीरे ले ा जाता हुआ, पूछने वालों को आँखों के आंसुओं से अङ्गराज का वृत्तान्त त करता हुआ और कुरु लोगों को शल्य के समान बींधता हुआ (यह राजा) खाली रथ से अपने पड़ाव की ओर जा रहा है ॥१०॥

दुर्योधन—(सुनकर आशङ्कापूर्वक) आह ! यह अस्पष्ट और वज्र-पात के न कठोर घोषणा किसने की है ? यहाँ कोई है ?

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत—हाय, हम मारे गये। (यह कहकर स्वयं को गिराता है)।

दुर्योधन—अरे ! बताओ, बताओ।

न्कुरुबलानि शल्यवदुःसितानि कुर्वन्। शीद्य। [त्यक्तप्राजनरश्मिः की प्राजनरश्मी येन स तथा।] प्राजन पएना इति ख्यातम्। प्राजन तोदन म् इत्यमरः। रश्मिर्वल्गा। [पार्थस्य अङ्कः चिह्नं स संजात एषामिति ाङ्कितैः मार्गणैर्बाणैः। कलम्बमार्गणशराः इत्यमर। अङ्किततनुः] न्दनवर्त्मनां परिचयाद्रथमार्गानुसन्धानात्। वाहैः शनैर्मन्दमाकृष्यमाणः। छतां जनानां पृच्छद्भ्यो जनेभ्य इत्यर्थः। अङ्गपतेर्वार्ता ... पयन्। तथा च कर्णो मृत इति रोदनेनैव सूचितमिति भावः ॥१०॥

अस्पष्टनिर्वज्रम्। उभयं क्रियाविशेषणम्। उद्घोषितमुच्चैः शब्दः कृतः

धृतराष्ट्रसंजयौ—कथयतां कथयताम् ।

सूतः—आयुष्मन्, किमन्यत् ।

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम्।
शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरूढेन ॥११॥

दुर्योधनः—हा वयस्य कर्ण । (इति मोहमुपगतः)

गान्धारी – जात, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । [जाद समस्सस सम

संजयः—समाश्वसितु समाश्वसितु देवः ।

धृतराष्ट्रः—भोः कष्टं कष्टम् ।

भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम् ।
वत्सस्य मे सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं हतः ॥१२॥

वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । ननु भो हतविधे,

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः
शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाहम् ।
अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे
दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः ॥१३॥

वत्स दुर्योधन, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । समाश्वासय तपस्विनीं मा

दुर्योधनः— (लब्धसंज्ञः)

अयि कर्ण कर्णसुखदां प्रयच्छ मे
गिरमुद्गिरन्निव मुदं मयि स्थिराम् ।
सततावियुक्तमकृताप्रियं प्रियं
वृषसेनवत्सल विहाय यासि माम् ॥१४॥

स्सो भवामः ।

शल्येनेति । हे देव अयं जनौघः शल्येन राज्ञा हेतुभूतेन मूर्च्छितोऽ कीदृशेन । प्रविशता । अर्थाज्जनौघमेव । कर्णस्य रथमधिरूढेन च । यथा श ... मूर्च्छितो जनौघो भवति । कीदृशं रथम् । मनोरथमिव । शून्यमि आर्याच्छन्दः ॥११॥

धृतराष्ट्र और संजय—कहो, कहो।

सूत—आयुष्मन्, और क्या ?

शून्य (अपूर्ण) मनोरथ के समान कर्ण के सूने रथ पर बैठे हुए (राजा
ने शिविर में प्रवेश करते हुए शल्य नामक अस्त्र के समान इस जन-समू
च्छित कर दिया है ॥११॥

दुर्योधन—हाय सखा कर्ण ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)।

गान्धारी—पुत्र, धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो।

संजय—धैर्य रखिये, महाराज धैर्य रखिये।

धृतराष्ट्र—ओह ! बड़ा दुःख है !

भीष्म और द्रोण के मर जाने पर (हमारा) जो अवलम्बन था, मेरे पु
ब वह यह वीर राधा-पुत्र (कर्ण) भी चला गया ॥१२॥

त्र, धैर्य रख, धैर्य रख। अरे अधम भाग्य,

रे पुत्रों की मृत्यु के दुःख को भोग चुका हुआ मैं अन्धा पत्नी-सहित इ
य अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ। (अब) तुमने इस दुर्योधन के विषय में
जसके मित्र, गुरु और बन्धु वर्ग में से कोई भी शेष नहीं रहा है, मुझे
कर दिया है ॥१३॥

त्स दुर्योधन, धैर्य रक्खो और अपनी दीन माता को धैर्य बंधाओ।

र्योधन—(चेतना प्राप्त करके)।

कर्ण, मुझसे, मानो, स्पर्धा करते हुए हर्ष उँडेलते हुए शुभ सुहाने कानों को सु
ी वाणी बोलो। हे वृषसेन से प्रेम करने वाले, कभी वियुक्त न हुए
न करने वाले मुझ प्रिय को छोड़कर कहाँ जा रहे हो ॥१४॥

स्य इति। [मनुसूर्ण मनोरथस्य [illegible] मुर्खा येन सः। [illegible]
सह शोच्यां दशामुपगतः।] अशेषितो निश्शेषः [सुहृद्गुरुबन्धुवर्गो [illegible]
।] विरामो निरसनम्। निरास इति पाठे [illegible] ॥११॥
ौर्ण। हे कर्ण त्वं अधि [illegible] प्रयच्छ। [illegible] [illegible]
[illegible]। द्विलीयम्। हे कर्ण मे मम इमे [illegible] [illegible]
[illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] न [illegible] [illegible]।
वृषसेनो [illegible] ॥१४॥

(पुनर्मोहमुपगतः) ।

(सर्वे समाश्वासयन्ति)

दुर्योधनः—

मम प्राणाधिके तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते ।
उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात का कथा ॥१५॥

अपि च

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं
दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम् ।
येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे
कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥१६॥

गान्धारी—जात, शिथिलय तावत्क्षणमात्रं बाष्पमोक्षम् ।
[जाद सिढिलेहि दाव क्खणमेत्तं बाप्पमोक्खम् ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमात्रं परिमार्जयाश्रूणि ।

दुर्योधनः—

मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान्केनचिन्न निवारितः ।
तत्कृते त्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते ॥१७॥

सूत, केनैतदसंभावनीयमस्मत्कुलान्तकरं कर्म कृतं स्यात् ।

सूतः—आयुष्मन्, एवं किल जनः कथयति ।

ममेति । तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते सत्युच्छ्वसन्नप्यहं लज्जे । श्वासधारणेऽपि लज्जा करोमि । आश्वासे का कथा । [सुदूरापेतं तु समाश्वासनमिति भावः]॥१५॥

शोचामीति । अधुना शत्रुहतं शोच्यं शोचनार्हमपि तं वत्सं दुःशासनं न शोचामि । बन्धुवर्गं च न शोचामि । तु किंतु येन कर्णे अतिदुःश्रवं अतिदुःखेन श्रोतुं शक्यम् असाधु कृतम् । कर्णो हत इत्यर्थः । तस्य कुलस्य समरे निधनं नाशं कर्तास्मि ।] येन कर्णेन मम कर्णेऽसाध्वयोग्यमतिदुःश्रवमत्यर्थं दुःश्रवम्

(फिर मूर्च्छित हो जाता है) ।

(सब सान्त्वना देते है)

दुर्योधन—

हे तात, मुझे प्राणों से अधिक (प्रिय) अङ्गदेश के अधिपति उस (कर्ण) के रे जाने पर सांस लेते हुए भी लज्जा आती है; धैर्य-धारण की तो बात ही ॥ ॥१५॥

और भी,

अब मैं शत्रु द्वारा मारे गये तथा शोक के योग्य होते हुए भी, वत्स शासन और बन्धु-समूह के लिए शोक नहीं करता; लेकिन जिसने कर्ण के ते (यह) अत्यन्त अश्रवणीय पाप कर्म किया है, मैं युद्ध में उसके कुल का श कर दूंगा ॥१६॥

गान्धारी—पुत्र, अब क्षण-भर आंसू बहाना बन्द करो ।

धृतराष्ट्र—वत्स, क्षण-भर के लिए आंसू पोंछ लो ।

दुर्योधन

मेरे लिए प्राणों का त्याग करते हुए (कर्ण) को किसी ने नहीं रोका । के लिये आंसू बहाते हुए मुझ दीन को क्यों रोका जा रहा है ? ॥१७॥

सूत, हमारे कुल का नाश करने वाला यह असम्भव कार्य किसने किया ?

सूत—आयुष्मन्, लोग ऐसा कह रहे थे—

यो न कृत तस्य कर्णस्य निधने सति मम कुलस्य निधनं विनाशं इत्यर्थः । पाण्डवोऽयं अपण्डरसमनः पादः ।} दुष्करमिति विशेषणद्वारा विशेष्यमाभः । दृ धुधु इत्यादिना खलु ॥१६॥

अत्र मोक्षस्त्यागः ।

मामिति । न निवारितो य इति दोषः । तत्कृते त्वं मद्दोहस्याश्रु... रि वार्यते । न वारयितुमर्हामीति भावः ॥१७॥

असंभावनीयं दुष्करम् ।

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य ।
निहतः किरीटिसूनोरसमक्षेनाप्तकृतान्तस्य ॥१८॥

दुर्योधनः—

कर्णाननेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः ।
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ॥१९॥

तात, अम्ब, प्रसीदतम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।
समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः ॥२०॥

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन्)

भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु
द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड
च्छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥२१॥

गान्धारी—जात, तेनैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्गयसे।
[जाद तेण एव्व सुदसदकदन्तेण विओदलेण समं समलं मग्गसि ।]

दुर्योधनः—तिष्ठतु तावद् वृकोदरः ।

भूमाविति । किल प्रसिद्धौ । [चक्रायुधः सारथिः यस्य तस्य असमक्षेना- कृतान्तस्य] तस्येन्द्रसूनोरर्जुनस्य शरैः स कर्णो निहतः । कीदृशः । भूमौ [निमग्नचक्रः] निमग्नरथाङ्गः । चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः इति विश्वः । चक्रायुध : । कृतान्तो यमः ॥१८॥

। [कर्णाननमेव इन्दुः तस्य स्मरणात्क्षुभितः मम शोकसागर . वडवाजातेन शिखिनाग्निना और्वेण इव मे क्रोधजातेन शिखिना ॥१९॥

(वह कर्ण), पृथ्वी में जिसका पहिया धँस गया था, हमारी सेना के लिये ... के समान इन्द्र-पुत्र (अर्जुन) के, जिसका चक्रायुध (कृष्ण) सारथि है, बाणों ... मारा गया ॥१८॥

दुर्योधन—

कर्ण के मुख-रूपी चन्द्रमा के स्मरण से सक्षुब्ध मेरा शोक-रूपी सागर ... वाग्नि के समान मेरी क्रोधाग्नि से पिया जा रहा है ॥१९॥

पिता जी, माता जी, कृपा कीजिये।

शोक से उत्पन्न यह असह्य अग्नि मुझे जलाये डाल रही है। (घर और ... क्षेत्र में) मृत्यु के समान (रूप से सम्भव) होने पर मुझे संशय-पूर्ण युद्ध ही ... अच्छा है ॥२०॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके रोते हुए)।

हे पुत्र, यह सच है कि साहसपूर्ण कार्यों में संशय होता है। भयङ्कर भीम ... स्मरण करके (मेरा) यह हृदय द्रवित हो रहा है। हे स्वाभिमानिन्, ... का युद्ध-कर्म वञ्चना-निपुण नहीं है और शत्रुओं का युद्ध-कर्म अनेक छलों ... है। हाय! मैं मारा गया ॥२१॥

गान्धारी—पुत्र, तुम उसी वृकोदर से युद्ध की इच्छा कर रहे हो, जो ... मेरे पुत्रों के लिए यम के समान है?

दुर्योधन वृकोदर की बात छोड़ो—

... इति। तथाभूतां युष्माकं [illegible] ... संशयितोऽपि ... [illegible] ॥

... [illegible] । हे वत्स पुत्र [illegible] ... [illegible] इति ... [illegible] । हे [illegible] ... [illegible] ... [illegible] ॥२१॥

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य ।
निहतः किरीटसूनोरसमक्षमेनाद्य कृतान्तस्य ॥१८॥

दुर्योधनः—

कर्णाननेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः ।
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ॥१९॥

तात, अम्ब, प्रसीदतम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।
समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः ॥२०॥

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन्)

भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु
द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड
च्छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥२१॥

गान्धारी—जात, तेनैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्गयसे।
[जाद तेण एव्व सुदसदकदन्तेण विओदलेण समं समरं मग्गसि।]

दुर्योधनः—तिष्ठतु तावद् वृकोदरः ।

भूमाविति । किल प्रसिद्धौ । [चक्रायुधः सारथिः यस्य तस्य असमस्तेन कृतान्तस्य] तस्येन्द्रसूनोरर्जुनस्य शरैः स कर्णो निहतः । कीदृशः । भूमौ [निमग्नचक्रः] निमग्नरथाङ्गः । चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः इति विश्वः । चक्रायुधः कृष्णः । कृतान्तो यमः ॥१८॥

कर्णेति । [कर्णाननमेव इन्दुः तस्य स्मरणात्क्षुभितः मम शोकसागरः वाडवेन वडवाजातेन शिखिनाग्निना और्वेण इव मे क्रोधजातेन शिखिना पीयते ॥१९॥

पृथ्वी में जिसका पहिया धँस गया था, हमारी सेना के लिये
... समान इन्द्र-पुत्र (अर्जुन) के, जिसका चक्रायुध (कृष्ण) सारथि है, बाणों
... मारा गया ॥१८॥

दुर्योधन—

कर्ण के मुख-रूपी चन्द्रमा के स्मरण से संक्षुब्ध मेरा शोक-रूपी सागर
... के समान मेरी क्रोधाग्नि से पिया जा रहा है ॥१९॥

... पिता को, माता को, कृपा कीजिये।

... शोक से उत्पन्न यह असह्य अग्नि मुझे जलाये डाल रही है। (घर और
... में) मृत्यु के समान (रूप से सम्भव) होने पर मुझे संशय-पूर्ण युद्ध ही
... अच्छा है ॥२०॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके रोते हुए)।

... पुत्र, यह सच है कि साहसपूर्ण कार्यों में संशय होता है। भयङ्कर भीम
... चार करके (मेरा) यह हृदय द्रवित हो रहा है। हे स्वाभिमानिन्,
... युद्ध-कर्म बचाना-निपुण नहीं है और शत्रुओं का युद्ध-कर्म अनेक छलों
... है। हाय! मैं मारा गया ॥२१॥

गान्धारी—पुत्र, तुम उसी वृकोदर से युद्ध की इच्छा कर रहे हो, जो
... सौ पुत्रों के लिए यम के समान है?

दुर्योधन - वृकोदर की बात छोड़ो—

... मम इति। समानाया तुल्मायां [illegible] अपि सत्याम्। संशयितोऽपि
... च हरिणोऽपि। [illegible] ... ॥

... नीति। हे तनय पुत्र [illegible]। [illegible]—'न [illegible]
... [illegible] इति' [illegible]। [illegible]
... [illegible]। हे [illegible] हे [illegible]
... [illegible]। [illegible] इति शिवः।
... [illegible] युद्ध [illegible]। हा [illegible]। दुर्योधन ॥२१॥

(सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति)

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

सूतः—आयुष्मन्,

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कथं कथं ।

सूतः—

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥२५॥

गान्धारी—(सभयम्) जात, किमत्र प्रतिपत्तव्यम् ।

[जाद किं एत्थ पडिवज्जिदव्वम् ।]

दुर्योधनः—ननु संनिहितैवेयं गदा ।

गान्धारी—हा हतास्मि मन्दभागिनी । [हा हदम्हि मन्दभाइणी ।]

दुर्योधनः—अम्ब, अलमिदानीं कातर्येण । संजय, रथमारोप्य शिबिरं प्रविशय । प्राप्तोऽस्मत्कोपजीवी जनः ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे ।

दुर्योधनः—तात, किमनेनोपालम्भेन ।

(ततः प्रविशतो रथारूढौ भीमार्जुनौ)

भीमः—भो भोः सुयोधनानुजीविनः, किमिति संभ्रमादपयाथ [illegible] । अलमावयोः शङ्कया ।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी

कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासाः ।

[illegible] । [illegible] सर्वत्र । कर्णारिरर्जुनः । वृको [illegible] इति [illegible] वृककर्मा । वृको [illegible] वा । [illegible]

वृको [illegible] ॥२५॥

२६ । [illegible] पाठः । प्रतीक्षस्व [illegible] । [illegible]

[illegible]

(सब घबराहट के साथ सुनते हैं)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत – आयुष्मन्,

एक रथ पर बैठे हुए और इधर-उधर आपके विषय में पूछते हुए दो आये हैं।

सब – कौन कौन ?

सूत –

वह कर्ण का शत्रु (अर्जुन) और वह भेड़िये जैसे कर्म करने वाला क्रूर वीर ॥२५॥

गान्धारी – (भयपूर्वक) पुत्र, अब इस स्थिति में क्या करना चाहिये ?

दुर्योधन – यह गदा तो पास में है ही।

गान्धारी – हाय मैं मन्दभाग्य मारी गई।

दुर्योधन – माता जी, अब दीनता से बस करो। संजय, माता-पिता को मैं बैठाकर शिविर की ओर प्रस्थान करो। हमारे शोक को दूर करने वाला आ गया है।

धृतराष्ट्र – पुत्र, एक क्षण प्रतीक्षा करो, जब तक मैं इनका अभिप्राय लूँ।

दुर्योधन – तात, इसके जानने से क्या होगा ?

(तत्पश्चात् रथ पर बैठे भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

भीम – अरे सुयोधन के भृत्यों, घबराकर इधर-उधर क्यों भाग रहे हो ? दोनों से डरने की आवश्यकता नहीं है।

द्यूत-कपट करने वाला, लाक्षा-गृह को जलाने वाला, अत्यधिक अभिमानी, के केश और वस्त्रों के हरण में वायु के समान, पाण्डव जिसके दास हैं,

---

स्तेति। असौ स दुर्योधनः क्वास्ते तत्कथयत। [कीदृशः द्यूतमम्बन्धिना कर्ता। जतुमयं लाक्षानिर्मितं यत् शरणं गृहं तस्य उद्दीपनः दाहकः। गाः केशाश्च उत्तरीयं च तेषां व्यपनयने मरुत् वायुरिव।] क्वा सं

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा ।
हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥३१॥

भीमः—अरे रे भरतकुलकलङ्क,

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं
दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।
विघ्नं गुरू न कुरुतो यदि मद्गदाग्र-
निर्भिद्यमानरणितास्यनि ते शरीरे ॥३२॥

अन्यच्च मूढ

शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलं यत्परित्याजितोऽसि
भ्रातुर्वक्षःस्थलविघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि ।
आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य
क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥३३॥

दुर्योधनः दुरात्मन्, भरतकुलापसद, सूतदास, पाण्डवपशो, नाहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः । किं तु

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।
मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम् ॥३४॥

अप्रियाणीति । एष वाचाऽप्रियाणि करोति । कर्मणा न शक्तोऽसमर्थ इत्यन्वयः । यद्वा । अशक्त एव वाचा अप्रियाणि करोति न कर्मणेत्यन्वयः । प्रलापोऽनर्थकं वचः इत्यमरः ॥३१॥

अत्रैवेति । अहं भवन्तं किमत्रैव न विशसेयं न विनाशयामि । यदि ते ... गुरू विघ्नं न कुरुत इत्यन्वयः । विशसेयमिति शसु हिंसायाम् लिङि ... रूपम् । हे कटुप्रलापिन् । कीदृशे शरीरे । मत्करार्पितनिर्भिद्य... एव रणितानि शब्दितान्यस्थीनि यत्र तादृशे । वीप्सा कुत्समिव ... । [मद्गदाग्र० इति पाठे मम गदाया अग्रैः कोटिभिः] ॥३२॥

कार्य द्वारा (अप्रिय करने में) अशक्त, दुःखी हुआ यह, जिसके सौ भा
ग्य हैं वाणी से अप्रिय कर रहा है। इसके प्रलाप (निरर्थक वचन) से
कैसी ? ॥३१॥

भीम—अरे, ओ भरत कुल के कलङ्क,

हे बटु-भाषिन्, यदि मेरी गदा की कोटि से विदीर्ण होते हुए, (अतः)
करती हुई हड्डियों वाले तेरे शरीर के बीच में माता पिता विघ्न न डाले
त्या मैं दुःशासन का अनुसरण करने के लिए आपको यहीं न नष्ट
दूँ ? ॥३२॥

और भी, मूर्ख,

तुम्हारे कुल-रूपी कमलिनी के लिये हाथी के समान (मुझ) भीमसे
क्रुद्ध होने पर भी तुम दुष्ट राजा के जीवित रहने का कारण यह था कि
के कारण तुमसे स्त्रियों के समान आँसू बहवाये और (तेरे) भाई के वक्ष
के विदीर्ण करने में तुझे साक्षी बनाया ॥३३॥

दुर्योधन—दुरात्मा, भरत-कुल में नीच, (मेरे) जूए में (जीते गये)
पशु-तुल्य पाण्डव, मैं आपके समान आत्म-श्लाघा करने में दक्ष नहीं
किन्तु—

(तेरे) बान्धव तुझे, मेरी गदा से टूटी हुई वक्ष-स्थल की वेणी-तुल्य
ही जिसके भयङ्कर आभूषण हैं युद्ध-क्षेत्र में शीघ्र ही सोया हुआ देखेंगे ।

शोकैरिति। शोकैर्यथा स्त्री रोदिति तथा यस्त्वं नयनगलित स्वाश्रितो
शोकम् इति पाठे नेत्रजलैर्यथा स्त्री शोकं त्याज्यते तथा त्वमपि त्य
त्यर्थः। यथा स्त्री रुदित्वा शोकं त्यजति तथा त्वमपि कृतमिति
भीमसेने क्रुद्धे सति तव कुनृपस्य जीवितस्यैतत्कारणमासीद्रोदन भ्रातृवक्ष
च नाम। उभयं चेद् कृतं तदा मया त्वमपि घातयितव्य इतिभावः ॥३३॥

द्रक्ष्यन्तीति। न चिरादचिरम्। घंट्रिका परषरा। वेणिका इति
वेणिका प्रवाहः। वेणी तु केशवेशे स्यात्प्रवाहेऽपि निगद्यते। इति
वत्र एव त्रिवेणीति। कणिका इति पाठस्तु सुगम एव। मेव भयानकामि
यस्य तम्। सुप्तो मृत इति शेषः। ॥१४॥

भीमः—(विहस्य) यद्येवं नाश्रद्धेयो भवान्। तथापि प्रत्यासन्नमेव कथना

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसंचूर्णितोरोः
क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते।
त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनानखाग्रं
स्त्यानेनार्द्रेण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ॥

(नेपथ्ये)

भो भो भीमसेनार्जुनौ, एष खलु निहताशेषारातिचक्र आक्रान्तपरशुराम
भिरामयशाः प्रतापतापितदिङ्मण्डलस्थापितस्वजनः श्रीमानजातशत्रुर्देवो युधिष्ठि
समाज्ञापयति।

उभौ—किमाज्ञापयत्यार्यः।

(पुनर्नेपथ्ये)

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभार
नश्रून्मिश्रं कथंचिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्य
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान्हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकङ्कै-
रस्तं भास्वान्प्रयातः सहरिपुभिरयं संह्रियन्तां बला

उभौ—यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तौ)

पीनाभ्यामिति। श्वः। ह्यो गतेऽनागतेऽह्नि श्वः इत्यमरः। [प्र
पत्त्यन्तां पीनाभ्यां पुष्टाभ्याम्। ओप्यायी वृद्धौ इत्यतो धात्वर्थे
ओदितश्च इति नत्वं प्यायः पी इति च पीभावः। मद्भुजाभ्यां
गुरुः गदा तस्य आघातेन संचूर्णितौ ऊरू यस्य तस्य क्रूरस्य तव शिर
धाय। स्त्यानेन घनीभूतेन। स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः इत्यतो निष्ठा
द्रवमूर्तिस्पर्शयोः इति निष्ठानत्वे नः। आर्द्रेण च।] त्वं मुख्यो यत्र
भ्रातृचक्र तस्योद्दलनेन खण्डनेन गलदसृक्चन्दनं तेन चाक्तः तेन। मु
तथापि भवः भूषितः। तथा च त्वदादिसर्वभ्रातृवध इति भाव।।
नखाग्राण्यभिव्याप्य स्वयं भीम भूषणमनुभवितास्मि ॥३४॥

भीमसेन–(ओर से हँसकर) यदि ऐसा है तो आप पर अविश्वास नहीं कि
ा सकता है। फिर, भी जो बिल्कुल समीप में होने वाला है, उसे कहता हूँ–

कल: प्रातः समय राजाओं के देखते-देखते (अपनी) स्थूल भुजाओं से घुम
ई भारी गदा के प्रहारों से चूर्ण किये गये वक्षः-स्थल वाले तुझ क्रूर के
पर पैर रखकर, गाढ़े और ताजे, तेरे भाइयों के – तू जिनमें मुख्य है—स
े कुचलने से बहते हुए रुधिर-रूपी चन्दन से नख के अग्र-भाग तक लिप्त हो
स्वयं भयङ्कर आभूषण (प्रसाधन) का उपभोग करूँगा ॥३५॥

(नेपथ्य में)

हे हे भीम और अर्जुन, यह श्रीमान् महाराज युधिष्ठिर, जिसने सम
शत्रु समूह को नष्ट कर दिया है, जिसने परशुराम के मनोज्ञ यश को अभि
कर दिया है, और जिसने अपने प्रताप से तपाये (वश में किये) दिशा-भागों
स्वजनों को स्थापित कर दिया है, आज्ञा देते हैं।

दोनों—आर्य क्या आज्ञा दे रहे हैं ?

(फिर नेपथ्य में)

सम्बन्धी लोग युद्ध के मोर्चे पर मारे गये (वीरों) के शवों के समूह
अग्नि-दाह करें; यह सम्बन्धी जन अपने सम्बन्धियों को किसी प्रकार
निमित्त जल देवें; (लोग) मरे हुए मनुष्यों से भरे हुये (युद्ध-स्थल) में (अप
न्धुओं के शरीरों को खोज लेवें; यह सूर्य शत्रुओं के साथ अस्त को प्राप्त
या है, (इसलिये) सेनायें वापिस लौटा ली जावें ॥३६॥

दोनों—आर्य जैसी आज्ञा दें। (यह कहकर दोनों निकल जाते हैं)।

कुर्वन्त्विति। आसा बान्धवादय.। वह्निसात्कारस्थैन वह्निदेयान्। मा
ासन्त्वै इति देयार्थे सातिप्रत्यय.। मारागतान्। उन्मिथं युक्तम्। मार्ग
ाप्यमन्ताम्। अना इति दोष। रणशिरसि गहने क्वासे। अगो सूर्यो म
न्धुभिः सहास्त गत। यथा शत्रवोऽस्तं गतास्तथा रविरपीति भाव:। अ
दपि मधुरतोऽस्तगमनं विभाता सूर्यस्योदयस्य तथापि शत्रुणामस्तमयोर.
ा उभयत्राप्यस्तगमनमरस्तरसात विवक्षितम्। तत्र्वैव मरणेनाप्यस्य
ामनेनेत्यस्येदेन्। संह्रियन्तामुपसंह्रियन्ताम् ॥३६॥

(नेपथ्ये)

अरे रे गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन् अर्जुन, अर्जुन, क्वेदानीं गम्यते ।

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि
प्रौढं विक्रान्तमासीद्वन इव भवतां शूरशून्ये रणेऽस्मिन् ।
स्पर्शं स्मृत्वोत्तमाङ्गे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरपेतः
कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रौणिरस्मि ॥३७॥

धृतराष्ट्रः—(आकर्ण्य सहर्षम्) वत्स दुर्योधन, द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावक. पितुरपि समधिकबलः शिक्षावानमरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः । पगमनेन तावदयं संभाव्यतां वीरः ।

गान्धारी— जात, प्रत्युद्गच्छैनं महाभागम् ।

[जाद पच्चुग्गच्छ एदं महाभाअम् ।]

दुर्योधनः–तात, अम्ब, किमनेनाङ्गराजवधाशंसिना वृथायौवनशस्त्रवत

धृतराष्ट्रः—वत्स, न खल्वस्मिन्काले पराक्रमवतामेवंविधानां वाङ्मा विरागमुत्पादयितुमर्हसि ।

(प्रविश्य)

अश्वत्थामा—विजयतां कौरवाधिपतिः ।

दुर्योधनः—(उत्थाय) गुरुपुत्र, इत आस्यताम् । (इत्युपवेशयति)

अश्वत्थामा—राजन्दुर्योधन,

कर्णेति । [युष्मान् विजेतुं शीलमस्य तद् युष्मद्विजयि इदं धनुः कर्ण एतानि अहानि त्यक्तम् ।] अहानीत्यत्र कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वि तेनाहानि व्याप्येत्यर्थः । अस्मिन् रणे भवता [प्रौढं स्फीतमिति परिहासोक्ति विक्रान्तं पराक्रम आसीत् । विक्रान्तमिति भावे क्तः । कीदृशे । वन शूरशून्ये । [अधुना तु न अवजितः अनवजितः चासौ न्यस्ता हेतयो ये न्यस्तहेतिश्च तस्यानवजितन्यस्तहेतेः पितुः उत्तमाङ्गे स्पर्शं स्मृत्वा उपेत

१. कल्पाग्निः द्रुपदसुतस्य धृष्टद्युम्नस्य घस्मरः नाशकः । धृष्टद

(नेपथ्य मे)

अरे गाण्डीव को खींचने वाली भुजाओं वाले अर्जुन, ओ अर्जुन, अब कहाँ
ा रहा है ?

कर्ण के प्रति क्रोध के कारण मैंने अपना यह तुमको जीतने वाला धनुष इन
नों छोड़ दिया था, (इसलिये इन दिनों) वीरों से शून्य इस रण मे वन के
ान तुम्हारा महान् पराक्रम होता रहा। (अब) कभी पराजित न हुए तथा
कल्याण किये हुए पिता के सिर पर किये गये स्पर्श को याद करके पाण्डवों
लिये प्रलयाग्नि के समान और द्रुपद के पुत्र की सेनाओं का भक्षक मैं द्रोण
पुत्र (अश्वत्थामा) आ पहुँचा हूँ ॥३७॥

धृतराष्ट्र—(सुनकर हर्ष के साथ) वत्स दुर्योधन, द्रोण के वध के अपमान
प्रचण्ड क्रोधरूपी अग्नि वाला, पिता से भी अधिक बलवान्, सुशिक्षित और
तुल्य यह अश्वत्थामा आया है। इसलिए आप अब उठकर कर इसका
ार करें।

गान्धारी—पुत्र, इस महानुभाव का उठकर सत्कार करो।

दुर्योधन—पिता जी, माता जी, अङ्गराज (कर्ण) के वध की कामना
े वाले तथा स्वयं ही यौवन, शस्त्र और बल के भार को धारण करने वाले
(अश्वत्थामा) से क्या लाभ ?

धृतराष्ट्र—पुत्र, इस समय ऐसे पराक्रमी वीरों को वाणी-मात्र से भी
भ करना उचित नहीं है।

(प्रवेश करके)

अश्वत्थामा—कौरवों के अधीश्वर की जय हो।

दुर्योधन—(उठकर) आचार्य-पुत्र, इधर बैठिये (यह कहकर बैठाता है)।

अश्वत्थामा—राजा दुर्योधन,

च् इति घसेः क्मरच्। द्रौणिः अस्मि।] द्रौणिर्द्रोणस्यापत्यम्। अत इञ्
य:। किं कृत्वा। पितुरुत्तमाङ्गे स्पर्शं स्मृत्वा। अहं कीदृशः। अनवजितो
नापि जितः। हेतिरस्त्रम्। कल्पः प्रलयः। घस्मरो नाशकः ॥३७॥
[समाश्यतां संमान्यताम्।] इत आस्यतामिहोपविशतु ॥

कर्णेन कर्णसुभगं बहु यत्तदुक्त्वा
यत्सङ्गरेषु विहितं विदितं त्वया तत् ।
द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतितोऽभ्यमित्र-
मेषोऽधुना त्यज नृप प्रतिकारचिन्ताम् ॥३८॥

दुर्योधनः (साभ्यसूयम्) आचार्यपुत्र,

अवसानेऽङ्गराजस्य योद्धव्यं भवता किल ।
ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ॥३९॥

अश्वत्थामा—(स्वगतम्) कथमद्यापि स एव कर्णपक्षपातः, अस्मासु च परिभवः । (प्रकाशम्) राजन्कौरवेश्वर, एवं भवतु । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—वत्स, क एष ते व्यामोहो यदस्मिन्नपि काले एवंविधस्य भागस्याश्वत्थाम्नो वाक्पारुष्येणापरागमुत्पादयसि ।

दुर्योधनः—किमस्याप्रियमनृतं वा मयोक्तम् । किं वा नेदं प्रोक्तम् पश्य—

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः
समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद्विपन्नम् ।
परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं
मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा ॥४०॥

धृतराष्ट्रः—वत्स, तवापि कोऽत्र दोषः । अवसानमिदानीं भरतकुलस्य । सं किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः (विचिन्त्य) भवत्वेवं तावत् । संजय, मद्वच

कर्णेनेति । [कर्णेन यत् कर्णयोः सुभगं तद् बहु उक्त्वा समरेषु यद्वि तत्त्वया विदितम् । हे नृप एष द्रौणिः । अधिरूढा ज्या यस्य तदधिज्यं धनुर्य सः अधिज्यधनुः । समासान्तविधेरनित्यत्वान्न अनङ् । अधुना अभ्यमित्रं अमित्राणामभिमुखम् । लक्षणेनाभिप्रती इत्यव्ययीभावः ।] अराति लक्ष्य कृत्वाधु आगतः । अतो हे नृप प्रतिकारचिन्तां त्यज । मयैव सर्वत्र प्रतीका इति भावः ॥३८॥

र्ण ने कानों को अच्छी लगने वाली बहुत-सी (असत्) बातें कहकर युद्ध
हुए किया है, वह आपको विदित है। डोरी चढ़ी हुई धनुष वाला, यह
त्र (अश्वत्थामा) शत्रु के सम्मुख आ गया है। हे राजा, अब प्रतिकार
ना छोड़ दो ॥३८॥

र्योधन—(चिढ़कर) आचार्य-पुत्र,
पको तो कर्ण के समाप्त हो जाने पर ही युद्ध करना है, (अब) मेरी भी
प्रतीक्षा कर लो। कर्ण क्या? सुयोधन क्या? ॥३९॥

श्वत्थामा—(मन में) क्या? आज भी वही कर्ण के प्रति पक्षपात और
रे तिरस्कार। (प्रकट में) कौरवों के अधिपति राजा, ऐसा ही सही।
(कर बाहर चला जाता है)।

राष्ट्र—पुत्र, यह तेरा कैसा मति-विभ्रम है कि इस समय भी ऐसे
अश्वत्थामा में वाणी की कठोरता से विराग उत्पन्न कर रहे हो?

धन—मैंने इससे कटु और असत्य क्या कहा है? अथवा क्या यह क्रोध
नहीं है? देखिये—

री क्षत्रिय भी जिसकी महिमा न जान सके; जो तुम्हारे भाग्य के
में मर गया, अङ्गदेश के अधिपति (उस) मित्र को (मेरे) सामने
ा है; तब बतलाइये, मेरे लिए इसमें या अर्जुन में क्या भेद
।

ट्र—वत्स, इसमें तेरा भी क्या दोष है? अब भरत-कुल का अन्त
)। संजय, इस समय मैं अभागा क्या करूँ? (सोचकर) अच्छा,

र इति। किम् निश्चये। कः कर्णः इति। तथा च कर्णसुयोधनयोः
भावः ॥३९॥

तेति। [आत्तः चापः येन ते आत्तचापास्तैः क्षत्रियैः अकलितः न
ात महिमा यस्य तं युष्मद्भाग्यदोषात् न तु असामर्थ्यादङ्गेश-
र्शिरमि विपन्नं नष्टं मृतमित्यर्थः। मम मित्रमङ्गाधिराजं कर्णं
परिवदति निन्दति। अतः] अस्मिन्नश्वत्थामन्यर्जुने वा मम शत्रु
हे तात त्वं विशेषं कथय। ननु निश्चयेन। तयोः द्वयोः न भेद
॥४०॥

ब्रूहि भारद्वाजमश्वत्थामानम् ।

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना
मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः ।
अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च य-
द्वचनविकृतिष्वस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ॥४१॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः । (इत्युत्तिष्ठति)

धृतराष्ट्रः—अपि चेदमन्यत्त्वया वक्तव्यम् ।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं
यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत् ।
एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च
दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यसीति ॥४२॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः । (इति निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—सूत, साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पय ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—गान्धारि, इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिबिरमेव गच्छामः, वत्स, त्वमप्येवं कुरु ।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

❀ इति पञ्चमोऽङ्कः ❀

स्मरतीति [भवानमुना दुर्योधनेन सह विभज्य पीतं स्तनयोर्भवं मातुर्गान्धार्याः स्तनपयः । शरीरावयवाच्च इति यत् । तथा च बाल्ये तव अङ्गविवर्तनैः] त्वदङ्गविवर्तनैस्त्वच्छरीरपरिवर्तनैः । मृदितं [मुदितं] मम पट्टवस्त्रं न स्मरसि किम् । यदस्य दुर्योधनस्य [अनुजानां वधेन स्फीतात् समुत्पन्नात् । स्फायी वृद्धौ इत्यतः स्फायः स्फी निष्ठायामिति स्फीभावः ।] स्फीतात् शोकादतिप्रणयादतिस्नेहाच्च वचनविकृतिषु संजातेषु त्वया मुधा क्रोधः क्रियते । न स तु मर्हणीयमेवः ॥४१॥

।हो। संजय, मेरी ओर से भरद्वाज-कुलोत्पन्न अश्वत्थामा से कहो—
था आपको हम (दुर्योधन) के साथ बाँट कर पिया गया (इसकी माता
ध और बाल्यावस्था में अपने अङ्गों को लोट-पोट से कुचला हुआ मेरा
ी कम याद नहीं है, जो तुम छोटे भाइयों की मृत्यु से बढ़े हुए शोक और
के प्रति) अत्यधिक प्रेम के कारण कहे गये इसके अनुचित वचनों पर
ी क्रोध कर रहे हो।।४१।।

संजय—तात, जो आज्ञा दें। (यह कहकर उठता है)।

तराष्ट्र—और तुम यह और कहना—

ो असत्य द्वारा तुम्हारे पिता से शस्त्र छुड़वा दिया था और जो तुम्हारे
ा वह उस प्रकार का इतना बड़ा अपमान हुआ था, इसका तथा अपने
र पराक्रम का विचार करके आप दुर्योधन के कहे की उपेक्षा करके अवश्य
ा) करेंगे।

जय—पिता की जैसी आज्ञा हो। (यह कहकर बाहर आता है)।

र्योधन—सूत, हमारा युद्ध का रथ तैयार करो।

—आयुष्मान् जो आज्ञा दें। (यह कहकर निकल जाता है)।

राष्ट्र—गान्धारी, हम यहाँ से मद्र देश के स्वामी शल्य के शिविर मे
ा हैं। पुत्र, तुम भी ऐसा ही करो।

(इस प्रकार घूमकर सब निकल जाते हैं)

※ पञ्चम अङ्क समाप्त ※

ति। [यत् तव पिता पाण्डवैः वितथेन असत्येन। गजे मृते त्व मृत
रणेन शस्त्र मोचितस्त्याजितः। यत् च तादृशः तथास्थितस्य तथाविधः
अभूत् एतद् विचिन्त्य आत्मनि बल पौरुषं च विचिन्त्य। यद्वा।
प्रसिद्धः। तथाविधस्तत्प्रकारकः। एतद्विचिन्त्यात्मनि बलं सामर्थ्यं
विधास्यसीति वक्तव्यमित्यन्वयः। किं कृत्वा। दुर्योधनोक्तं त्यक्त्वा।
विधास्यसीत्यत्र प्रतीकारमिति शेष इत्यूचुः।।४२।।

असूत यं रत्नधरो गुणीशी नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतौ प्रयातो ग्रन्थे मनोहारिणि पञ्चमोऽङ्कः।।

* *

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो युधिष्ठिरो द्रौपदी चेटी पुरुषश्च)

युधिष्ठिरः—(विनिःस्य निःश्वस्य च)

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम्।
भीमेन प्रियसाहसेन रभसात्स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥१॥

द्रौपदी—(सबाष्पम्) महाराज, पाञ्चालीति किं न भणितम्।
[महाराज पञ्चालिए त्ति किं ण भणिद।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, ननु मया। (पुरुषमवलोक्य) बुधक,

पुरुषः—देव, आज्ञापय।

युधिष्ठिरः—उच्यतां सहदेवः—क्रुद्धस्य वृकोदरस्यापर्युषितदारुणां प्रति मुपलभ्य प्रनष्टस्य मानिनः कौरवराजस्य पदवीमन्वेष्टुमतिनिपुणमतयस्तेषु स्थानेषु परमार्थाभिज्ञाश्चराः सुसचिवाश्च भक्तिमन्तः पटुपटहरवव्यक्तघोष

तीर्ण इति। [भीष्म एव महोदधिस्तस्मिन् कथमपि महता प्रयासे तीर्णेऽतिक्रान्ते। द्रोण एव अनलस्तस्मिन् निर्वृते उपशान्ते। कर्ण एव आ सर्पदंष्ट्रा तत्र विषं यस्य तादृशो यो भोगी सर्पस्तस्मिन्। आशीराश्यहिदंष्ट्रा इति शब्दभेदः। भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः। इति विश्वः यद्यप्यत्रैकपदेनैवापरं गतार्थं तथापि विषोल्बणविषधरज्ञापनार्थं तदुक्तम्। यद्वा आस्यां विष यत्र भोगे शरीरे सोऽस्यास्तीत्याशीविषभोगी विषधर इ व्युत्पत्तिः। न चात्रापि गतार्थता। विशिष्टनाम्नो विवक्षाया अपर्यनुयोज्यत्वादि दिक्। दिवं स्वर्गम्। स्वल्पावशेषेऽपि जये सति [प्रियं साहसं यस्य स प्रिय साहसस्तेन] भीमेनामी सर्वे वयं रभसात् वाचा प्रतिज्ञारूपया जीवितसंशय

षष्ठ अङ्क

(तत्पश्चात् आसन पर बैठा हुआ युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी और पुरुष प्रवेश करता है ।)

युधिष्ठिर—(सोचकर और लम्बा साँस लेकर) ।

किसी प्रकार भीष्म-रूपी महासागर को पार कर लेने पर, द्रोणरूपी अग्नि के शान्त हो जाने पर, कर्णरूपी विषैले साँप के दमन कर दिये जाने पर और शल्य के स्वर्ग चले जाने पर विजय के स्वल्प ही शेष रह जाने पर साहस-प्रिय भीम ने आवेश के कारण अपने वचन से यह हम सबके प्राण संशय में डाल दिये हैं ॥१॥

द्रौपदी—(आँसुओं के साथ) महाराज, पाञ्चाली ने (संशय में डाला है), ह क्यों नहीं कहा ?

युधिष्ठिर—कृष्णा, निश्चय से मैंने ही (संशय में डाला है) । (पुरुष को देखकर) बुधक ।

पुरुष—महाराज, आज्ञा कीजिये ।

युधिष्ठिर—सहदेव से कहो—क्रुद्ध हुए भीम की आज ही पूर्ण होने वाली भयङ्कर प्रतिज्ञा को जानकर छिपे हुए अभिमानी कौरवाधिपति के मार्ग का पता लगाने के लिए तीव्र बुद्धि वाले तथा भिन्न-भिन्न स्थानों की वस्तुस्थिति को जानने वाले, (हमारे प्रति) भक्ति रखने वाले, तीव्र दुन्दुभि के शब्द से घोषणा करने वाले, सुयोधन की गति-विधि को जानने वाले और धन एवं

पारोऽपिना दूरपन्थय. ॥१॥

मार्गवित्ता नान्यदिनगामिनीम् । प्रनष्टस्य गुप्तस्य । पटुपटहघोषकाः निपुणं दुन्दुभिवादकाः । [पटुः यः पटहस्य दुन्दुभिविशेषस्य स्वरेण अन्या घोषणा तां ये तथोक्ताः ।] प्रतिपुता देशदेशेन प्रतिज्ञाना उनेन पूजया च प्रत्युपक्रिया ये ते । यशा धन पूजा बहुमानस्य प्रत्युपक्रिया च येषां ते तथोक्ता. । मनपक्षबद्ध दुरधोगामुकवर्ती देशभेदः ।

सुयोधनसंचारवेदिनः प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपञ्चकम्।
अपि च ।

पङ्के वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कुञ्जेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया बल्लवाः संचरन्तु ।
व्याधा व्याघ्राटवीषु स्वपरपदविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ॥२॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः ।

युधिष्ठिरः—तिष्ठ । एवं च वक्तव्यः सहदेवः ।

[illegible]ेया रहः शङ्कितमालपन्तः सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः ।
[illegible]नामो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्कपादप्रतिमाश्च यत्र ॥३॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सहर्षम्) दे[illegible]
[illegible]ञ्चालकः प्राप्तः ।

युधिष्ठिरः—त्वरितं प्रवेशय ।

पुरुषः—(निष्क्रम्य पाञ्चालकेन सह प्रविश्य) एष देवः । उपसर्पतु
[illegible]ञ्चालकः ।

पङ्क इति । पङ्के कर्दमे [पङ्कप्रदेशे इत्यर्थः । सैकते वालुकामयप्रदेशे [illegible] । [illegible] मत्यर्थं । सुनिभृतामतिगूढां पदवीं [illegible] [illegible] वेदिन दाशाः धीवराः यान्तु दुर्योधनान्वेषणार्थमिति शेषः । [illegible] [illegible] । कुञ्जेषु [illegible] क्षुण्णः [illegible] [illegible] परिचयो ज्ञानं येषां ते । बल्लवा गोपाः संचरन्तु । [illegible] इति स्वपरपदविदः ये च रन्ध्रेषु [illegible] ते । व्याघ्रप्रचुरा अटव्यः व्याघ्राटव्यस्तासु । [illegible] । चरन्तु । ये वा ये च चाराः सिद्धानां योगिनां [illegible] [illegible] । [illegible] प्रतिमुनिनिलयं चरन्तु ।] [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] । रन्ध्रेषु [illegible]

सम्मान द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री समस्त-राष्ट्र में चारों ओर घूमें।

और भी—

कीचड़ में या बालू के तट पर-छिपे हुए मार्ग को जानने वाले धीवर जायें; झुकी हुई लताओं के समूह से परिचित ग्वाले कुञ्जों में जायें; अपने और पराये पद-चिह्नों को जानने वाले व्याध (शिकारी), जो कन्दराओं को भी भली-भाँति जानते हों, व्याघ्रों से व्याप्त अरण्यों में घूमें और जिन गुप्तचरों ने सिद्धों का वेष बनाया हुआ हो, वे प्रत्येक तपोवन में जायें ॥२॥

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—ठहरो। और सहदेव से यह कहना—

एकान्त में शङ्कासहित बात-चीत करते हुए, सोये हुए, रोग से पीड़ित और मद के वश में हुए (लोगों) की छान-बीन करनी चाहिये। जहाँ पशु भयभीत हो रहे हों, जहाँ पक्षियों का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लक्षणों से युक्त पैरों के चिह्नों हों, (उन स्थानों की भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

पुरुष—महाराज जो आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश करके हर्ष के साथ) महाराज, पाञ्चालक आया है।

युधिष्ठिर—शीघ्र अन्दर लाओ।

पुरुष—(बाहर जाकर पाञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं। पाञ्चालक समीप जायें।

सिद्धव्यञ्जनाः सिद्धपुरुषचिह्नधराः । चरा एव चाराः । [illegible] [illegible] ॥२॥

ज्ञेया इति । [illegible] [illegible] ज्ञेयाः । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सुयोधनसंचारवेदिनः प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपञ्चक।

अपि च।

पङ्के वा सैकते वा मुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कुञ्जेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया वल्लवाः संचरन्तु।
व्याधा व्याघ्राटवीषु स्वपरपदविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ॥२॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः।

युधिष्ठिरः—तिष्ठ। एवं च वक्तव्यः सहदेवः।

ज्ञेया रहः शङ्कितमालपन्तः सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः
त्रासो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्कपादप्रतिमाश्च यत्र

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सहर्षम्)

पाञ्चालकः प्राप्तः।

युधिष्ठिरः—त्वरितं प्रवेशय।

पुरुषः—(निष्क्रम्य पाञ्चालकेन सह प्रविश्य) एष देवः। उप

पाञ्चालकः।

पङ्क इति। पङ्के कर्दमे [पङ्कमयदेशे इत्यर्थः। सैकते वालुकामये वा। सिकताशर्कराभ्यामित्यण् मत्वर्थे। मुनिभृतामतिगूढां [illegible] विदन्तीति वेदिनः दाशाः धीवराः यान्तु दुर्योधनान्वेषणायेति शेषः। [illegible] दाशधीवरौ इत्यमरः। कुञ्जेषु लतादिपिहितेषु स्थानेषु क्षुण्णः [illegible] वीरुन्निचयो लतासमूहस्तस्य परिचयो ज्ञानं येषां ते। वल्लवा गोपा [illegible] [ये व्याधाः स्वेषां परेषां च पदानि विदन्ति इति स्वपरपदविदः [illegible] गुहादिविषये अभिज्ञाः ते। व्याघ्रप्रचुरा अटव्यः व्याघ्राटव्यस्तासु। [illegible] द्विवसमासः। चरन्तु। ये वा ये च चाराः सिद्धानां योगिनां [illegible] तथा। मुनिनिलये मुनिनिलयं प्रतिमुनिनिलयं [illegible] [illegible] अटव्यो वनानि। तासु व्याघ्रप्रचुरा-

निषादस्थपतिचाण्डालाः [illegible]

म्मान द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री समन्त-
चक्र में चारों ओर घूमें।

और भी—

कीचड़ में या बालू के तट पर छिपे हुए मार्ग को जानने वाले धीवर जायें;
चली हुई लताओं के समूह से परिचित ग्वाले कुञ्जों में जायें; अपने और
ाये पद-चिह्नों को जानने वाले व्याध (शिकारी), जो कन्दराओं को भी
ी-भाँति जानते हों, व्याघ्रों से व्याप्त अरण्यों में घूमें और जिन गुप्तचरों ने
द्धों का वेष बनाया हुआ हो, वे प्रत्येक तपोवन मे जायें ॥२॥

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—ठहरो। और सहदेव से यह कहना—

एकान्त में शङ्कासहित बात-चीत करते हुए, सोये हुए, रोग से पीड़ित और
ा के वश में हुए (लोगों) की छान-बीन करनी चाहिये। जहाँ पशु भयभीत
रहे हों, जहाँ पक्षियों का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लक्षणों से युक्त
ों के चिह्नों हों, (उन स्थानों की भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

पुरुष—महाराज जो आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश
के हर्ष के साथ) महाराज, पाञ्चालक आया है।

युधिष्ठिर—शीघ्र अन्दर लाओ।

पुरुष—(बाहर जाकर पाञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं।
ञ्चालक समीप जायें।

द्मयजनाः सिद्धपुरुषचिह्नवन्तः। चरा एव चाराः। प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्
ा च यत्र ये निपुणास्तत्र ते गच्छन्त्विति भावः ॥२॥

ज्ञेया इति। रह एकान्ते शङ्कितं साकारपदमालपन्तो जना ज्ञेयाः। एव
ा ज्ञेया [रुजा आर्ता ज्ञेयाः मदिराया विधेया दासाः] मदिराविधेया मत्ताः।
ज्ञेयाः। [यत्र यस्मिन् स्थाने मृगाणां त्रासः भीति। तस्तृताः चेष्टा इत्यर्थः।
ा वयसां विरावः। मानुषप्रवेशात्। स च मानुष. कदाचिद् दुर्योधनः स्यादि-
हेतोस्तदपि ज्ञेयम्।] नृपाङ्को राजचिह्नं मत्स्यादि यत्र पादप्रतिमायां तास्च
ा तानि स्थानानि ज्ञेयानीत्यन्वयः। वयः पक्षिणि बाल्ये च इति
तेमा प्रतिकृतिः ॥३॥

मान द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री समन्त-वह में चारों ओर घूमें।

और भी—

कीचड़ में या बालू के तट पर-छिपे हुए मार्ग को जानने वाले धीवर जायें; [illegible] हुई लताओं के समूह से परिचित ग्वाले कुञ्जों में जायें; अपने और [illegible] के पद-चिह्नों को जानने वाले व्याध (शिकारी), जो कन्दराओं को भी [illegible]-भाँति जानते हों, व्याघ्रों से व्याप्त अरण्यों मे घूमें और जिन गुप्तचरों ने [illegible] का वेष बनाया हुआ हो, वे प्रत्येक तपोवन मे जायें ॥२॥

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—ठहरो। और सहदेव से यह कहना—

एकान्त में शङ्कासहित बात-चीत करते हुए, सोये हुए, रोग से पीड़ित और [illegible] के वश में हुए (लोगों) की छान-बीन करनी चाहिये। जहाँ पशु भयभीत [illegible] हों, जहाँ पक्षियों का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लक्षणों से युक्त [illegible] के चिह्नों हों, (उन स्थानों की भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

पुरुष—महाराज जो आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश [illegible] हर्ष के साथ) महाराज, पाञ्चालक आया है।

युधिष्ठिर—शीघ्र अन्दर लाओ।

पुरुष—(बाहर जाकर पाञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं। [illegible] पालक समीप जायें।

[illegible] गिरिगुहा[illegible] । चरा एव चाराः। [illegible]
[illegible] मे निपुणा[illegible] ॥२॥
[illegible] इति। [illegible] यथा [illegible]। एव
[illegible] [illegible] [illegible] मन्त्राः।
[illegible]। [illegible] स्थाने [illegible]। [illegible]।
[illegible]। [illegible]। च [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] इति [illegible]।

पाञ्चालक—जय हो, महाराज की जय हो। महाराज और महारानी को प्रिय समाचार सुनाता हूँ।

युधिष्ठिर—भद्र पाञ्चालक, क्या उस दुष्टात्मा नीच कौरव का पद-मार्ग मिल गया है?

पाञ्चालक—महाराज, केवल उसका पद-मार्ग ही नहीं, प्रत्युत महारानी के केश और वस्त्रों के हरणरूपी महापातक का मुख्य हेतु वह दुष्टात्मा ही मिल गया है।

युधिष्ठिर—शाबास! भद्र, तुमने प्रिय समाचार बतलाया। तो क्या लड़ाई भी किया?

पाञ्चालक—महाराज, युद्ध में आये हुये को पूछिये।

द्रौपदी—(भयपूर्वक) क्यों? मेरे स्वामी युद्ध में उतरे हुए हैं?

युधिष्ठिर—(आशङ्का के साथ) क्या सचमुच मेरा वत्स युद्ध कर रहा है?

पाञ्चालक—सचमुच। क्या महाराज से असत्य निवेदन किया जायेगा?

युधिष्ठिर—

महान् पराक्रम वाले (पुरुष) का भी बिना कारण ही भयभीत चित्त विवेक-मान्द्य को प्राप्त हो जाता है। मैं युद्ध में उठी हुई गदा वाले भीम की भुजाओं के बल को जानता हूँ, (लेकिन फिर भी) आशङ्कित हूँ ॥४॥

(द्रौपदी को देखकर) अरी वीर क्षत्रियाः,

हे प्रिया, पहले राज-सभा में गुरुजनों, बन्धुओं और सहस्रों राजाओं के सामने हमारा जो यह अपमान हुआ था, सम्भवतः आज या तो हमारे प्राणों का नाश या पशु-तुल्य कौरव-प्रति के प्राणों का नाश दोनों ही उस (अपमान) के पार पहुँचा देंगे ॥५॥

...क्षमो। भ्रातुर्विनापि विजयादुरुविक्रमस्य इति पाठे मम चेतो विवेकपरिमन्थर-... । पटुना यद्यपि मम भ्राता न ... स्नेहान्मम ... ॥४॥

... हे ... द्वितयमेव कर्म पारं गमयति। ... प्राणविनाशः दुरात्मनो: प्राण-... वा। ...

भाग्य की स्वेच्छाचारिता को दोष देने पर कुमार भीमसेन का परिचित कोई पुरुष, जिसने मांस-राशि एक ओर रख दी और जिसके चरण तथा वस्त्र ताजे मारे हुये हरिण (के रुधिर) से लाल थे, जल्दी करता हुआ समीप आकर कठोर श्वास में दब जाने के कारण अध-सुने वर्णों से जाने गये पदों वाली वाणी से कहा—'महाराज कुमार, इस महान् जलाशय के किनारे पर दो पद-पङ्क्तियों के चिह्न पड़े हुए हैं। उनमें से एक भूमि पर वापिस लौट कर आई है, दूसरी नहीं। आगे कुमार का अधिकार है।' इसके पश्चात् हम सब उसे ही आगे करके चल पड़े। तालाब के किनारे जाकर सुयोधन के पद-चिह्न (के रूप में) जानी गई पद-पङ्क्ति को पाकर भगवान् वासुदेव ने कहा—'हे वीर वृकोदर, सुयोधन जल-स्तम्भनी विद्या जानता है। इसलिए अवश्य ही वह तेरे भय से इस महान् जलाशय में लेटा हुआ होगा। बलराम के छोटे भाई (कृष्ण) के इस वचन को सुनकर, जलाशय के जल का (इस प्रकार) आलोडन करके और भयङ्कर गर्जन करके कि (जल ने) सब दिशाओं के गह्वरों को भर दिया और फिर भी अधिक था; जल-जन्तुओं और पक्षियों के समूह घबरा गये और भय के कारण घड़ियाल और मगरमच्छ भागने लगे, कुमार वृकोदर ने कहा—अरे ओ, व्यर्थ प्रकट किये गये झूठे पौरुष पर अभिमान करने वाले, पाञ्चाल राजकुमारी के केश और वस्त्र को खींचने का महापातक करने वाले, धृतराष्ट्र के नीच पुत्र,

हे नरपशु, तू चन्द्र के निर्मल कुल में अपना जन्म बतलाता है, तू अब भी गदा धारण कर रहा है; तू दुःशासन के गरम रुधिर रूपी मद्य से मत्त हुए मुझ (भीम) को अपना शत्रु समझता है; दर्प से अन्धा तू मधु और कैटभ के शत्रु विष्णु के प्रति भी उच्छृङ्खल चेष्टा करता है; लेकिन अब मेरे डर से युद्ध-क्षेत्र को छोड़कर कीचड़ में छिपा है ॥७॥

जन्मेति [व्यपदिशसि कथयसि। दुःशासनस्य कोष्णं किञ्चिदुष्णं शोणितमेव मधु तेन तत्पानेन क्षीबं मत्तम्। कोष्णमित्यत्र ईषदर्थे इति कोः कादेशः।] क्षीब मत्तम्। [दर्पेणान्धो विवेकशून्यः। मधुकैटभद्विषि तन्नामकदैत्यारौ। उद्धतमविनयेन भाषसे।] नृपशो जनाधम। इह शनिनामावमर्शसंधिः। यदाह—अधिक्षेपोक्तिः शक्तिर्मता इति ॥७॥

अपि च । भो मानाःच,

पाञ्चाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमितप्राय एव प्रसह्य
व्यागत्तैः केशपाशैर्हृतपतिषु मया कौरवान्तःपुरेषु ।
भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य
क्रोधान्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयास्तोऽभिमानः ॥

द्रौपदी – नाथ, अपनीतो मे मन्युर्यदि पुनरपि सुलभं दर्शनं भविष्यति ।
[णाह अवणीदो मे मण्णु जइ पुणो वि सुलहं दंसणं भविस्सदि ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, नामङ्गलानि व्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्काले । भद्र, ततस्ततः ।

पाञ्चालकः – देव, ततश्चैवं भाषमाणेन वृकोदरेणावनीर्य क्रोधोद्धतभ्रमित भीषणगदापाणिना सहसंक्षोभक्षुभितसलिलमुत्सन्ननलिनीवनमपविद्धमूर्च्छि भ्रान्तमत्स्यशकुन्तमतिभैरवारवभ्रमितवारिसंचयमायतमपि तत्सरः सा डितम् ।

युधिष्ठिरः—भद्र, तथापि किं नोत्थितः ।

पाञ्चालकः—देव, कथं नोत्थितः ।

त्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स मूल-
मुद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः ।

पाञ्चाल्या इति । कौरवान्तःपुरेषु मया [प्रसह्य बलाद् हृताः प तेषु] हतपतिषु सत्सु तदीयकेशपाशैर्व्यासिक्तैः संबद्धैः [व्यस्ततैः] मन्युवह्निरुपशमितप्राय एवेत्यन्वयः । दुःशासनवक्षसः स्रवद्रक्तं मया पं मालोक्य त्वया मयि भीमसेने किं विहितं यदसमयेऽकाले [प्रतिकारोचि सत्यपीत्यर्थः ।] एष मानोऽस्तस्त्यक्तस्त्वया । इदानीं स कर्तुमर्हतीति भाव

अपनीतो नाथेन मम मन्युर्यदि पुनरपि सुलभदर्शनः स भवि

[क्रोधेनोद्धतमुद्धूट यथा तथा भ्रमिता या भीषणा गदा सा पाणौ यस्य ।
नलिनीवनं यस्मिन् । अपविद्धा विक्षिप्ता अत एव मूर्छित

: भी, अरे दर्प के अन्धे,

द्वारा कौरवों के अन्तःपुर के पतियों के बलपूर्वक मार दिये जाने पर
[illegible] हुए केशों ने द्रौपदी के कोपरूपी अनल को लगभग शान्त कर दिया है,
[illegible]) स्पष्ट (है); अपने भाई दुःशासन के वक्षःस्थल से बहते हुए रुधिर को
[illegible] जाना देखकर क्रोध के कारण तूने भीमसेन के प्रति क्या कर दिया है कि
[illegible] तूने असमय में ही अभिमान त्याग दिया है ॥८॥

द्रौपदी—नाथ, मेरा शोक दूर हो जाय यदि फिर (तुम्हारा) दर्शन सुलभ [illegible] जाये।

युधिष्ठिर—कृष्णा, इस समय अशुभ वचन कहना उचित नहीं है। भद्र, [illegible] बाद ?

पाञ्चालक—महाराज, तब इस प्रकार कहते हुए भीमसेन ने, जिसके हाथ [illegible] क्रोध के कारण ज़ोर से घुमाई गई भयङ्कर गदा थी, उतरकर उस विशाल [illegible] तट को भी चारों ओर इस प्रकार ज़ोर से मथ डाला कि उसका तट (पानी [illegible]) लांघ दिया गया; कमलिनियों का समूह नष्ट हो गया; ग्राह बाहर फेंक [illegible] गये तथा मूर्च्छित हो गये, मछली और पक्षी घबरा गये और जल-समूह [illegible] भयङ्कर शब्द के साथ चक्कर खाने लगा।

युधिष्ठिर—भद्र, क्या (वह) फिर भी नहीं उठा ?

पाञ्चालक—महाराज, उठा कैसे नहीं !

क्षुब्ध मथे हुए क्षीर-सागर से कालकूट के समान, भीम की फेंकी गई भुजाओं [illegible] मन्दराचल के चलाने से वह (दुर्योधन), जिसमें से कोपाग्निरूपी भयङ्कर

मद् ।] [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible]
[illegible]—[illegible]

आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः
क्षीरोदधेः सुमथितादिव कालकूटः ॥९॥

युधिष्ठिरः—साधु, सुक्षत्रिय, साधु ।

द्रौपदी—प्रतिपन्नः समरो न वा । [पडिवण्णो समरो ण वा ।]

पाञ्चालकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भितनोरणोज्ज्वल भीमगदः कथयति स्म—'अरे रे मारुते, किं भयेन प्रलीनं दुर्योधनं मन्यते भवान् मूढ, अनिहतपाण्डुपुत्रः प्रकाशं लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम्' एवं चोक्ते वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तःसलिलं निषिद्धसमरसमारम्भौ स्थले मुत्तारितौ भीमसुयोधनौ । आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकुरुशतगजवाजिनरसहस्रकलेवरसंमर्दसंपतद्गृध्रकङ्कजम्बुकमुरसंमुग्नोषमस्मद्वीरमुक्तसिंहनादमपमित्रबान्धवमशरीरं रणस्थानमवलोक्याय तमुष्णं च निःश्वसितवान् । ततश्च वृकोदरेणाभिहितम्—अयि भोः कौरवाग, इतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मैवं विषादं कृथाः पर्याप्ताः पाण्डवाः समराय सहाय इति ।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।
दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥१०॥

इत्यं च श्रुत्वामूपाग्निता दृष्टि कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः ।

म तथा । आयस्त. क्षिप्तः [आयस्तौ विक्षिप्तौ भीमस्य भुजावेव म॰ वेल्लनाभि.] वेल्लना चालनम् ॥९॥

अथ प्रतिपन्नो लग्नः [अङ्गीकृतः] । [करयुगलेन] उत्तम्भितोन्नी एव तोरणमदृशी कृता गदा येन स तथा । [विशीर्णानि भग्नानि विर्श वा रथानां सहस्राणि यस्मिन् । निहतं यत्कुरुशतं तस्य गजवाजिनरा च कलेवरराशि तेन समर्दः तस्मिन् पतन्तो गृध्राश्च द॰ यस्मिन् ।] शरीरम् । जम्बुकः शृगालः । [अपगता मित्राणि बान्धवाश्च यस्मात् ।] आयता: [समर्थाः ।]

पञ्चानामिति । अस्माकं मध्ये । [सुयोधं सुखेन योधनीयम् ।] ॥२

त्त के स्फुलिङ्ग (चिनगारी, कण) निकल रहे थे, तालाब की तलहटी छोड़कर ति से उठा ॥८॥

युधिष्ठिर—धन्य, वीर क्षत्रिय, धन्य ।

द्रौपदी—(उसने) युद्ध (भी) किया अथवा नहीं ?

पाञ्चालक—और उस तालाब से उठकर (निकलकर) दोनों हाथों से उठाई हुई और तोरण बनाई हुई भयङ्कर गदा वाला वह कहने लगा—'अरे ओ ान-पुत्र, क्या आप दुर्योधन को भय के कारण छिपा हुआ समझते हैं ? मूर्ख, ाण्डु के पुत्रों को बिना मारे प्रकट में लज्जित होते हुए मैंने पाताल में विश्राम ने का निश्चय किया था।' इस प्रकार कहने पर वासुदेव और अर्जुन, भीम ौर सुयोधन दोनों को ही, जल के अन्दर जिनके युद्ध कर्म को रोक दिया था, थ्वी पर ले आये। तब गदा को भूमि पर फेंककर बैठते हुए कौरव-राज ने ौरवों से शून्य रण-भूमि को देखकर, जिसमें सहस्रों रथ टूटे पड़े थे; जिसमें ारे गये सैकड़ों कौरवों और हजारों हाथी-घोड़ों के शरीरों के ढेरों पर गिद्ध, ङ्क और सियारों के झुण्ड एक साथ मिलकर झपट रहे थे; जिसमे वीर योद्धा ट हो गये थे; जिसमें हमारे सैनिक सिंहनाद कर रहे थे और जहाँ से (उसके) ित्र और बान्धव जा चुके थे, लम्बा और गरम साँस लिया। इसके पश्चात् कोदर ने कहा—'अरे हे कौरव-राज, बन्धुओं के नाश का दुःख न कर। इस ्रकार ग्लानि न करो कि पाण्डव तो बहुत-से हैं और मैं युद्ध में सहाय-ीन हूँ।'

हे सुयोधन, हम पाँचों में से जिसको युद्ध के लिये आसान समझो, कवच ाँधे हुए और शस्त्र-धारण किये हुए तेरा उसके साथ (ही) युद्धरूपी उत्सव ो जाय ॥१०॥

ऐसा सुनकर दोनों कुमारों पर रोष-भरी दृष्टि डालकर धृतराष्ट्र के पुत्र े कहा—

हतसन्नाहस्य । तेन सह तव रणोत्सवोऽस्त्विति संबन्धः। तेनेति सहार्थे तृतीया ॥१०॥

कुमारयोर्भीमार्जुनयोः ।

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम ।
अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥११॥

इत्युत्थाय परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्ताविनघोरसङ्ग्रामौ विचि विभ्रमभ्रमितगदापरिमासुरभुजदण्डौ मण्डलैर्विचरितुमारब्धौ भीमदुर्योधनौ । च देवेन चक्रपाणिना देवसकाशमनुप्रेषितः । आह च देवो देवकीनन्दनः अपर्युषितप्रतिज्ञे च मारुतौ प्रनष्टे कौरवराजे महानासीद्वो विषादः । संप्रति पुनर्भीमसेनेनासादिते सुयोधने निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिकलयतु भवान् अभ्युदयोचिताश्चानवरतं प्रवर्त्यन्तां मङ्गलसमारम्भाः । कृतं संदेहेन ।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते
कृष्णात्यन्तचिरोज्झिते च कवरीबन्धे करोतु क्षणम् ।
रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ॥१२॥

द्रौपदी—(सबाष्पम्) यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्य
[जं देवो तिहुअणणाहो भणादि तं कहं अण्णहा भविस्सदि

पाञ्चालकः—न केवलमियमाशीः । असुरनिषूदनस्यादेशोऽपि ।

युधिष्ठिरः—को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति । कः कोऽत्र भोः

कर्णेति । हे भीम त्वमेव योद्धुं प्रियः कीदृशः अमित्रं साहसी च ॥११
[परस्परस्य यः क्रोधेनाधिक्षेपो निन्दा तत्र या परुषवाक् तया कलहः प्रस्तावितो घोरसंग्रामो याभ्याम् । विचित्रो विविधो यो विभ्रमस्तेन भ्रमि गदा तया परिभासुरौ भुजदण्डौ ययोस्तौ ।] विभ्रमो विलासः । मण्डलं करणविशेषः । [अपर्युषिता प्रतिज्ञा यस्य तादृशे । प्रतिज्ञाया अपर्युषितत्व दिरर्थः ।] प्रनष्टेऽदृष्टे । समारम्भा मङ्गलादिक्रियाः ।

पूर्यन्तामिति । [रत्नखचिताः कलशा रत्नकलशाः । सलिलेन तीर्थजलेन तस्यैव तयोरुपयोगित्वात्] कवरी केशवेशः । क्षणो मुहूर्तोत्सवयोः इति शाश्वत कवरीबन्ध इति निमित्तसप्तमी । रामे परशुरामे । [शातः तेजितः । शातक्षित

र्ण और दुःशासन के वध के कारण तुम दोनों मेरे लिये समान ही हो। (फिर भी) अप्रिय होने पर भी साहस-प्रिय होने से तुम ही मुझे युद्ध में इष्ट हो॥११॥

यह कहकर (और) उठकर भीम और दुर्योधन, जिन्होंने परस्पर क्रोध के कारण निन्दा के कठोर वचनों के कलह से भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया था और जिनकी दण्ड-सदृश भुजायें अनेकविध सुन्दर चेष्टाओं के साथ घुमाई गई गदाओं से चमक रही थीं, मण्डल बनाकर घूमने लगे; और मुझे भगवान् कृष्ण (हाथ में चक्र वाले) ने महाराज के पास भेज दिया। भगवान् देवकी-पुत्र ने कहा है—"भीमसेन के अगले दिन न जाने वाली प्रतिज्ञा कर लेने पर और कौरव-राज के भाग जाने पर हमें बड़ा दुःख था। लेकिन अब भीम के सुयोधन को पा लेने पर आप पृथ्वीतल को कण्टक-हीन हुआ समझें। और अभ्युदय के अनुरूप मङ्गल-कर्म का अखण्ड प्रवर्तन कर दें। (अब) संदेह न करें।

तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये रत्न-जटित कलश जल से भरे जायें; द्रौपदी चिरकाल से छोड़े गये केश-पाश के बन्धन का उत्सव मनाये। क्षत्रिय-जाति-रूपी वृक्षों को काटने वाले तथा तीक्ष्ण कुठार से चमकते हुए हाथों वाले परशुराम और क्रोध से अन्धे हुए वृकोदर के युद्ध-भूमि में जाने पर संशय कहाँ (हो सकता है) ॥१२॥

द्रौपदी—(आँसुओं के साथ) त्रिलोकीनाथ भगवान् जो कहेंगे, वह असत्य कैसे होगा?

पाञ्चालक—यह केवल आशीर्वाद नहीं है। असुर-रिपु का आदेश भी है।

युधिष्ठिर—भगवान् के संदेश में कौन तर्क-वितर्क कर सकता है? अरे यहाँ कोई है?

तीक्ष्णधारः कृत इत्यर्थः। निशितक्षुण्णतानानि तेजिते। इ।मरः कुठारस्तेन भासुरः करः यस्य तस्मिन्।] शातं निशितम्। परिपतति गच्छति सति ॥१२॥

आज्ञा निदेशः। [विकल्पयति अनुष्ठेय नवाऽनुष्ठेयमिति विचारयति। न कोऽपीत्यर्थः।] सविधाता [समारंभविधायी] पुरोहितादिः। [प्रधानमनतिक्रम्य] यथाप्रधानं प्रधानपुरुषानुक्रमेण। अन्तर्वेश्मिका अन्तःपुरचारिणः। [अन्तर्

माद्रीसुतयोरेकतरेण सह संग्रामस्तेन प्राप्तिको भवेत्ततोऽस्माहितं भवेत्।

[महाराज किमिमिणा उण लाहूवीममेरोण मो दुराआरो पमिरो-पद्म
शि अह्माणं मज्झे जेण दे गोअदि तेण सह दे संगामो होदु त्ति। जदं महीसुद
एक्कदरेण सह संगामो तेण पत्थिदो भवे तदो अच्चाहिदं भवे]।

युधिष्ठिरः—कृष्णे, एवं मन्यते जरासंधशत्रुः। हृतसकलसुहृद्बन्धुवीरानुज
राजन्यासु तथाभूतधर्मास्वपामप्येतास्वेवशरीरकमात्रविभवः शरीरमात्रवि
भवः कदाचिद्गुरुहितनिजाभिमानो धार्तराष्ट्रः परित्यजेदायुधं तपोवनं वा व्रजेत्सन्धि
वा पितृमुखेन याचेत। एवं सति सुदूरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञाभारो भवेत्सकलस्यापि
जयस्येति। समरं प्रतिपत्तुं पञ्चानामपि पाण्डवानामेकस्यापि नैव क्षम
सुयोधनः। शङ्के चाहं गदायुद्धं वृकोदरस्यैवानेन। अपि सुक्षत्रिये, पश्य—

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः
कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि।
स्वस्त्यस्तूद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय वत्साय मे
शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम् ॥१३॥

(नेपथ्ये)

तृषितोऽस्मि भोस्तृषितोऽस्मि। संभावयतु कश्चित्सलिलच्छायासंप्रदानेन मा

युधिष्ठिरः—(आकर्ण्य) कः कोऽत्र भोः।

[हताः सकलाः सुहृद्बन्धुवीराः अनुजा राजन्याः क्षत्रियाश्च यासु तथाभूता
शरीरमेव शरीरमात्रं विभवो यस्य स तथा। सकलान् रिपून् जेष्यामि
प्रतिज्ञाया भारः सुदूरमत्यन्तमतिक्रान्तो निर्वाहयितुमशक्यो भवेत्। एकस्य
पाण्डवस्य एकेनापि पाण्डवेनेत्यर्थः। समरं प्रतिपत्तुं सुयोधनः न क्षमो न समर्थ
वृकोदरस्य पाण्डवेषु बलिष्ठस्य [एव अनेन सुयोधनेन गदायुद्धं शङ्के।]

क्रोधेति। क्रोधेन उद्गूर्णा उद्यमिता गदा येन स तथा तस्य। उद्गूर्णं
... [कृतः शस्त्रविशेषणे अभ्यस्तः हस्तः यस्य स कृतहस्तः। तस्य भा
कृतहस्तता।] सीरिणि बलभद्रे। [तदुक्तं भारते—उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीम

ड़ि होगा।' यदि उसने माद्री के दोनों पुत्रों में से किसी एक के साथ युद्ध की इच्छा भी होती, तो अनर्थ हो जाता।'

युधिष्ठिर—द्रौपदी, जरासन्ध के शत्रु (भीमसेन) का ऐसा विचार होगा—यारह अक्षौहिणी सेनाओं में, जिनमें सब मित्र, बन्धु, वीर, अनुज और क्षत्रिय र गये हैं, केवल मात्र कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा के शेष रह जाने पर पिवर-हीन धृतराष्ट्र-पुत्र, जिसका केवल शरीर ही धन शेष रह गया है, कसी पने अभिमान को त्यागकर आयुध का परित्याग कर दे, (और) तपोवन को ता जाय अथवा पिता के मुख से सन्धि की प्रार्थना करने लगे। ऐसा होने पर शत्रुओं को जीतने की प्रतिज्ञा का निर्वाह बहुत दूर चला जायेगा।' सुयोधन वों पाण्डवों में से किसी के भी साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं है। और मुझे के साथ भीमसेन के ही गदायुद्ध की आशङ्का है। अरी वीर क्षत्रिया, गे—

सचमुच क्रोध से गदा उठाये हुए वायु-पुत्र (भीम) का युद्ध में कोई जोड़ है। लेकिन कौरव (दुर्योधन) में भगवान् बलराम जैसी प्रवीणता है। न कौरव-रूपी कमलिनियों के लिये गज समान, मेरे वत्स (भीम) का पाण हो। मैं सुयोधन के साथ उसके ही संग्राम की आशङ्का करता हूँ, गों के (संग्राम) की नहीं ॥१३॥

(नेपथ्य में)

मैं प्यासा हूँ, अरे, मैं प्यासा हूँ। कोई जल और छाया देकर मुझे अनुत करे।

युधिष्ठिर—(सुनकर) अरे, यहाँ कौन है?

वत्सर:। इती मरणपरम्परेव धार्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥ महा० ६८.६.। उद्धता ा धार्तराष्ट्रा एव नलिन्यः कमलिन्यस्तासां विहनने नागो हस्ती। यद्वा ना धार्तराष्ट्रा एव नलिन्यो येन स नागो नागः तस्य मत्तुर्म वत्साल ात्। अतः तस्य भीमस्य सुयोधनेन समरं गदायुद्धं शङ्के। भीमः तेन सह गयुद्धे विजयी भवेन्नवेति शङ्के इत्यर्थः। इतरेषां तु गदायुद्धं न कथमपि ा एव ते सुयोधनं जेतुमपि तेषां समरं न शङ्के इति भावः ॥१३॥

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः – ज्ञायतां किमेतत् ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) देव मुनि-रतिथिरुपस्थितः ।

युधिष्ठिरः – शीघ्रं प्रवेशय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः)

राक्षसः—(आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः सुयोधनस्य मित्रं पाण्डवान्वञ्चयितुं भ्रमामि । (प्रकाशम्) तृषितोऽस्मि । संभावयतु मां कश्चि-च्छायाप्रदानेन । (इति राज्ञः समीपमुपसर्पति)

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

युधिष्ठिरः—मुने, अभिवादये ।

राक्षसः—अकालोऽयं समुदाचारस्य । जलप्रदानेन संभावयतु माम् ।

युधिष्ठिरः—मुने, इदमासनम् । उपविश्यताम् ।

राक्षसः—(उपविश्य) ननु भवतापि क्रियतामासनपरिग्रहः ।

युधिष्ठिरः—(उपविश्य) कः कोऽत्र भोः । सलिलमुपनय ।

(प्रविश्य गृहीतभृङ्गारः)

कञ्चुकी—(उपसृत्य) महाराज, शिशिरसुरभिसलिलसंपूर्णोऽयं भृङ्गा-रपानभाजनं चेदम् ।

युधिष्ठिरः—मुने, निर्वर्त्यतामुदन्याप्रतिकारः ।

राक्षसः—(पात्रे प्रक्षाल्योपस्पृश्य विचिन्त्य) भोः, क्षत्रियस्त्वमिति मन्ये ।

युधिष्ठिरः—सम्यग्वेदी भवान् । क्षत्रिय एवास्मि ।

[बुभुक्षात् बुभुक्षितः । महाभारते तु अयं राक्षसः दुर्योधनस्य [illegible] युधिष्ठिरे राजधानीं प्रविष्टे परिव्राजकरूपेण ब्राह्मणैः सह [illegible] [illegible] इव [illegible] [illegible] दुर्योधनस्य [illegible] । [illegible] ॥ इति । [illegible]

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दीजिये।

युधिष्ठिर—मालूम करो यह क्या है ?

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा हो। (यह कहकर बाहर जाकर पुनः प्रवेश करके) महाराज, (कोई) भूखा अतिथि आया है।

युधिष्ठिर—शीघ्र अन्दर लिवा लाओ।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा। (यह कहकर बाहर चला गया)।

(तत्पश्चात् मुनि का वेष धारण किये चार्वाक नाम का राक्षस प्रवेश करता है।)

राक्षस—(मन में) यह मैं सुयोधन का मित्र चार्वाक नाम का राक्षस हूँ; पाण्डवों को धोखा देने के लिये घूम रहा हूँ। (प्रकट में) मैं प्यासा हूँ। कोई मुझे जल और छाया देकर अनुगृहीत करे। (यह कहकर राजा के समीप जाता है)।

(सब उठ खड़े होते हैं।)

युधिष्ठिर—मुनि, मैं अभिवादन करता हूँ।

राक्षस—यह शिष्टाचार का समय नहीं है। मुझे जल देकर अनुगृहीत कीजिये।

युधिष्ठिर—मुनि, यह आसन (है)। बैठिये।

राक्षस—(बैठकर) अब आप भी तो आसन ग्रहण कीजिये।

युधिष्ठिर—(बैठकर) यहाँ कोई है ? जल लाओ।

(सुराही लिये हुए प्रवेश करके)

कञ्चुकी—(समीप जाकर) महाराज, यह शीतल और सुगन्धित जल से भरी सुराही है और यह पीने के लिये पात्र है।

युधिष्ठिर—मुनि, प्यास का प्रतिकार कीजिये।

राक्षस—(पैर धोकर आचमन करते हुए सोचकर) अरे, मैं समझता हूँ कि तुम क्षत्रिय हो।

युधिष्ठिर—आप ठीक समझ रहे हैं। मैं क्षत्रिय ही हूँ।

[illegible]: । समुदाचारस्य शिष्टाचारस्य ।] भृङ्गारः कनकालुका इत्यमरः ॥

राक्षसः—सुलभश्च स्वजनविनाशः सङ्ग्रामेषु प्रतिदिनमतो नायं भवद्भ्र... जलादिकम् । भवतु । छायर्पयानया सरस्वतीशिशिरतरङ्गस्पृशा मरुता वा... विगतक्लमो भविष्यामि ।

द्रौपदी—बुद्धिमतिके, वीजय महर्षिमनेन तालवृन्तेन ।

[बुद्धिमदिए वीएहि महेसिं इमिणा तालविन्तेण ।]

(चेटी तथा करोति)

राक्षसः—भवति, अनुचितोऽयमस्मासु समुदाचारः ।

युधिष्ठिरः मुने, कथय कथमेवं भवान्परिश्रान्तः ।

राक्षसः—मुनिजनसुलभेन कौतूहलेन तत्रभवतां महाक्षत्रियाणां द्वन्द्वयु... मवलोकयितुं पर्यटामि समन्तपञ्चकम् । अद्य तु बलवत्तया शरदातपस्यापर्याप्तमे... धावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरागतोऽस्मि ।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति)

कञ्चुकी – मुने, न खल्वेवम् । भीमसुयोधनयोरिति कथय ।

राक्षसः—आः अविदितवृत्तान्त एव कथं मामाक्षिपसि ।

युधिष्ठिरः—महर्षे, कथय कथय ।

राक्षसः—क्षणमात्रं विश्रम्य सर्वं कथयामि भवतो न पुनरस्य वृद्धस्य

युधिष्ठिरः—कथय किमर्जुनसुयोधनयोरिति ।

राक्षसः—ननु पूर्वमेव कथितं मया प्रवृत्तं गदायुद्धमिति । -

युधिष्ठिरः—न भीमसुयोधनयोरिति ।

राक्षसः—वृत्तं तत् ।

(युधिष्ठिरो द्रौपदी च मोहमुपगतौ)

कञ्चुकी—(सलिलेनासिच्य) समाश्वसितु देवो देवी च ।

चेटी – समाश्वसितु समाश्वसितु देवी । [समस्ससदु समस्ससदु देवी ।]

तु पिपासा तृट् इत्यमरः । [स्वजनविनाशः अतोऽस्यासम्भावनेति भ... सरस्वत्याः शिशिरांस्तरङ्गान्स्पृशतीति तेन ।] सरस्वती नदीभेदः । हञ्जे ... मतिके वीजयेनं महर्षिमेतेन तालवृन्तकेन । व्यजनं तालवृन्तकम् इत्यम... [द्वन्द्वयुद्धमिति जातावेकवचनम् । शरदातपस्य शरत्सूर्यातपस्य । अपर्याप्तम...

नस—प्रतिदिन युद्ध में बन्धु-मरण सुलभ है, इसलिये आप से
ग्रहण नहीं करना चाहिये। अच्छा। इस छाया से और सरा
की शीतल तरङ्गों को छूने वाले इस वायु से ही थकान दूर

ी—बुद्धिमतिका, इस पंखे से महर्षि की हवा करो।

(चेटी वैसा ही करती है)

—आदरणीय, हमारे प्रति यह शिष्टाचार उचित नहीं है।

ठर—मुनि महाराज, बतलाइये, आप इस प्रकार कैसे थक गये ?

—मुनि जन सुलभ उत्सुकता के कारण मैं आदरणीय महान् क्षत्रि
देखने के लिये समन्तपञ्चक मे घूम रहा हूँ। आज तो शरद् ऋ
थ होने के कारण अर्जुन और सुयोधन के गदा-युद्ध को अधूरा हं
या हूँ।

(सब दुःख का अभिनय करते हैं)

—मुनि, ऐसा नहीं है। 'भीम और सुयोधन का (गदा-युद्ध) ऐसा'

आह! बिना बात जाने ही मुझ पर आक्षेप कैसे कर रहे हो ?

- महर्षि, कहिये, कहिये।

क्षण-भर विश्राम करके सब कुछ आपसे कह दूंगा,

—कहिये, अर्जुन और सुयोधन का क्या (हुआ) ?

ने पहले ही बतला तो दिया कि 'गदा-युद्ध हुआ'।

-भीम और सुयोधन का नहीं ?

ह हुआ था।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी मूर्च्छित हो जाते हैं)

(जल छिड़ककर) महाराज और महारानी धैर्य रखें
रखिये, महारानी धैर्य रखिये।

(दोनों चेतना प्राप्त करते है)

युधिष्ठिर—मुनि, क्या कहते हो कि भीम और सुयोधन का गदा-युद्ध हो चुका।

द्रौपदी—भगवन्, बतलाइये, बतलाइये क्या हुआ ?

राक्षस—कञ्चुकी, ये दोनों हैं कौन ?

कञ्चुकी—ब्रह्मन्, यह भगवान् युधिष्ठिर हैं, और यह पाञ्चाल की राजकुमारी।

राक्षस—आह ! मुझ निर्दय ने कटु बात आरम्भ कर दी।

द्रौपदी—हाय ! नाथ भीमसेन। (मूर्च्छित हो जाती है)।

कञ्चुकी—आपने क्या कहा ?

चेटी—धैर्य रखिये, महारानी धैर्य रखिये।

युधिष्ठिर—(आसू भरकर) ब्रह्मन्,

(वृत्तम्) इस संदिग्ध पद के कारण ही युधिष्ठिर दुःखी है। वत्स के विषय में यथार्थ के निश्चित हो जाने पर यह प्राण त्याग देने से सुखी (हो जायेगा) ॥१४॥

राक्षस—(आनन्द के साथ मन में) इसके लिये ही मेरा प्रयत्न है। (प्रकट में) यदि तो अवश्य कहना ही पड़ेगा तब संक्षेप से कह देता हूँ। (क्योंकि) बन्धु की विपत्ति को विस्तार से कहना ठीक नहीं है।

युधिष्ठिर—(आसू बहाते हुए)।

हे ब्राह्मण, संक्षेप से या विस्तार से किसी भी प्रकार कह डालिये। मैंने वत्स के सम्बन्ध में कोई भी (अमङ्गल) सुनने के लिये यह क्षण दे दिया है ॥१५॥

राक्षस—सुनिये—

दुर्योधन और भीम का वह भारी गदाओं की भयङ्कर ध्वनि वाला युद्ध होने पर—

सर्वथेति। किमपीत्यनेनामङ्गल्यं निवारयति। क्षणोऽवसरः। सर्वथा श्रोष्यामीत्यर्थः ॥१५॥

तस्मिन्निति। घोरं भयानकं [गुर्व्योर्गदयोः गदाप्रहाराणामिति

द्रौपदी—(वेग से उठकर) इसके बाद ? इसके बाद ?

राक्षस—(मन में) फिर इन दोनों की चेतना कैसे हरूँ ?

तब हलधारी (बलराम) जल्दी से वहाँ आ गया; उसके सामने देर त
युद्ध होता रहा; लेकिन हलधारी ने शिष्य (दुर्योधन) के प्रति पक्षपात क
आश्रय लेकर चुपके-से संकेत कर दिया, जिस (संकेत) को पाकर कुरुओं
श्रेष्ठ ने दुःशासन के शत्रु से प्रतिशोध पा लिया ॥१६॥

युधिष्ठिर—हाय, वत्स भीम। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)।

द्रौपदी—हाय, नाथ भीमसेन ! हाय मेरे अपमान का बदला लेने में प्राण
त्याग करने वाले ! जटासुर, बक, हिडिम्ब किर्मीर, कीचक और जरासन्ध क
मारने वाले, कमल लाकर प्रसन्न करने वाले, मुझे उत्तर दीजिये। (यह कहक
मूर्च्छित हो जाती है)।

कञ्चुकी—(आँसू भरकर) हाय, कुमार भीमसेन, कौरव-कुल-रूपी कम
लिनी के लिये हिम-वर्षा-सदृश ! (घबराहट के साथ) महाराज, धैर्य धारण
कीजिये। भद्रे, स्वामिनी को धैर्य बँधाइये। महर्षि, आप भी महाराज को
सान्त्वना देवें।

राक्षस—(मन में) प्राण त्याग कराने के लिये धैर्य बँधाता हूँ। (प्रकट में)
हे भीम के बड़े भाई, क्षण-भर धैर्य रखिये। (अभी कुछ) कहानी शेष है।

युधिष्ठिर—(संभलकर) महर्षि, क्या कहानी शेष है ?

द्रौपदी—(होश में आकर) भगवन्, कहिये क्या कहना शेष है ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये।

राक्षस—तब उस वीर क्षत्रिय के मारे जाने और वीर-सुलभ गति पा लेने
पर भाई के वध के शोक से उत्पन्न, पूर्णरूप से बहते हुए आँसुओं को पोंछकर

हा नाथ मदीयपरिभव०—हा जटासुर०—हा सौगन्धिकाहरणात्मचाटुकार
कारिन्। अत्र जटासुरो दैत्यभेदः। बको दैत्यभेद। सौगन्धिकं कमलम्।
पाञ्चाल्याः सुवर्णकमलाहरणाय द्रौपद्या आराधन तव चाटुकारः प्रेम यस्य।
[यद्वा तेन चाटुकार। धार्तराष्ट्राणां कुल तदेव कमलिनी तस्याः प्रालेयवर्ष
हिमवर्षं। तद्वत्तापकर। हिमवृष्ट्या कमलानि विनश्यन्तीति प्रसिद्धिः।]
भ्रातृवधात्। [समयं यथा तथा संगलितम्। प्रयत्नं कृतम् दाक्षतं रक्ष

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) ततस्ततः। [तदो तदो।]

राक्षसः—(स्वगतम्) कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि।

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः।
आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता
यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः ॥१६

युधिष्ठिरः— हा वत्स वृकोदर। (इति मोहमुपगतः)

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन, हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्तजीवित, जटासुरबकहिडिम्बकिर्मीरकीचकजरासंधनिषूदन, सौगन्धिकाहरणचाटुकार, देहि प्रतिवचनम्। (इति मोहमुपगता) [हा णाह भीमसेण हा मह परिभवपडिआरपरिचत्तजीविअ जडासुरबअहिडिम्बकिम्मीरकीचअजरासंघणिसूदण सोअन्धिआहरणचाडुआर देहि मे पडिवअणम्।]

कञ्चुकी—(सास्रम्) हा कुमार भीमसेन, धार्तराष्ट्रकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष। (ससंभ्रमम्) समाश्वसितु महाराजः। भद्रे, समाश्वासय स्वामिनीम्। महर्षे, त्वमपि तावदाश्वासय महाराजम्।

राक्षसः—(स्वगतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम्। (प्रकाशम्) भो भीमाग्रज, क्षणमेकमाधीयतां समाश्वासः। कथाशेषोऽस्ति।

युधिष्ठिरः—(समाश्वस्य) महर्षे, किमस्ति कथाशेषः।

द्रौपदी—(प्रतिबुध्य) भगवन्, कथय कीदृशः कथाशेष इति।
[भअवं कहेहि कीदिसो कहासेसो त्ति।]

कञ्चुकी—कथय कथय।

राक्षसः—ततश्च हते तस्मिन्सुक्षत्रिये वीरसुलभां गतिमुपगते समर्थ्य भ्रातृवधशोकजं बाष्पं प्रमृज्य भ्रातृवधशोकादपहाय गाण्डीवं प्रत्यग्रभरत

घोरः ध्वनिर्यस्मिन्। सीरी बलभद्रः।] प्रियः शिष्यो यस्येति प्रियशिष्यः। भावः प्रियशिष्यता ताम्। [संज्ञा हस्तचालनेन प्रहारस्थानसूचनम्।] प्रतीकारम्। अर्थात् दुःशासनवधस्य। दुःशासनारौ भीमे। तथा च भीम हत इति भावः ॥१६॥

द्रौपदी—(वेग से उठकर) इसके बाद ? इसके बाद ?

राक्षस—(मन में) फिर इन दोनों की चेतना कैसे हुई ?

तब हलधारी (बलराम) जल्दी से वहाँ आ गया; उसके सामने देर त
द होता रहा; लेकिन हलधारी ने शिष्य (दुर्योधन) के प्रति पक्षपात
श्रय लेकर चुपके-से संकेत कर दिया, जिस (संकेत) को पाकर कुरुओं
ष्ठ ने दुःशासन के शत्रु से प्रतिशोध पा लिया ॥१६॥

युधिष्ठिर—हाय, वत्स भीम। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)।

द्रौपदी—हाय, नाथ भीमसेन ! हाय मेरे अपमान का बदला लेने में प्राण
ाग करने वाले ! जटासुर, बक, हिडिम्ब किर्मीर, कीचक और जरासन्ध
ारने वाले, कमल लाकर प्रसन्न करने वाले, मुझे उत्तर दीजिये। (यह कहक
र्च्छित हो जाती है)।

कञ्चुकी—(आँसू भरकर) हाय, कुमार भीमसेन, कौरव-कुल-रूपी कम
नी के लिये हिम-वर्षा-सदृश ! (घबराहट के साथ) महाराज, धैर्य धार
ीजिये। भद्रे, स्वामिनी को धैर्य बँधाइये। महर्षि, आप भी महाराज क
ान्त्वना देवें।

राक्षस—(मन में) प्राण त्याग कराने के लिये धैर्य बँधाता हूँ। (प्रकट में
भीम के बड़े भाई, क्षण-भर धैर्य रखिये। (अभी कुछ) कहानी शेष है।

युधिष्ठिर—(संभलकर) महर्षि, क्या कहानी शेष है ?

द्रौपदी—(होश में आकर) भगवन्, कहिये क्या कहना शेष है ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये।

राक्षस—तब उस वीर क्षत्रिय के मारे जाने और वीर-सुलभ गति पा लेने
र भाई के वध के शोक से उत्पन्न, पूर्णरूप से बहते हुए आँसुओं को पोंछकर

हा नाथ मदीयपरिभव०—हा जटासुर०—हा सौगन्धिकाहरणादमचाटुकार
ाणि। अत्र जटासुरो दैत्यभेदः। बको दैत्यभेद। सौगन्धिकं कमलम्।
्रौपदाः सुवर्णकमलाहरणाद्‌ द्रौपदा आराधन तत्र चाटुकारः प्रेम यस्य।
ेश तेन चाटुकार। धार्तराष्ट्राणां कुल तदेव कमलिनी तस्याः प्रालेयवर्
हिमवर्षः। तद्वत्तापकर। हिमवृष्टया कमलानि विनश्यन्तीति प्रसिद्धि।]।
ारागुरुपाह। [सम्यं यथा तथा संगलितम्। प्रस्थं पूर्णेन दरसनमं रस्तं।

भाई के वध के शोक के कारण गाण्डीव को छोड़कर, और ताजे रुधिर के समूह ने लिप्त उस ही गदा को भाई के हाथ से लेकर, सन्धि की इच्छा वाले वासुदेव के द्वारा रोके जाने पर भी, घुमाई गई गदा की झङ्कार से बढ़ी हुई गम्भीर वचनों की ध्वनि वाले कौरव-राज द्वारा हँसी के साथ 'आओ, आओ' इस प्रकार ललकारा गया तीसरा (पाण्डव), आपका छोटा भाई, किरीट (मुकुट) धारण करने वाला (अर्जुन) युद्ध करने लगा। (गदा में) अनभ्यस्त उस (अर्जुन) की गदा के प्रहार से मृत्यु की संभावना करता हुआ बलराम अर्जुन के पक्षपाती देवकी-पुत्र को बड़े प्रयत्न से अपने रथ में बैठाकर द्वारका ले गया।

युधिष्ठिर – ठीक, अर्जुन, तूने गाण्डीव को त्यागकर तुरन्त भीम का मार्ग अपना लिया। लेकिन मैं किस उपाय द्वारा प्राण-त्याग के महोत्सव को अभि-नाया करूँ ?

द्रौपदी—हाय, नाथ भीमसेन, अब तुम्हें गदा (-युद्ध) में अनभ्यस्त, क्रूर शत्रु के संमुख जाते हुए छोटे भाई की उपेक्षा करनी उचित नहीं थी। (मूर्च्छित हो जाती है)।

राक्षस—और इसके बाद में—

युधिष्ठिर—मुनि, रहने दीजिये, इसके आगे सुनकर क्या (होगा) ? हाय ! ... भीमसेन, बनवासरूपी विपत्ति के बान्धव; हाय ! मेरे शरीर की स्थिति ... भङ्ग से कातर, लाक्षागृह की विपत्ति रूपी समुद्र को पार करने में नौका- ... हाय ! किर्मीर, हिडिम्ब, जटासुर और जरासन्ध को जीतने में अद्वितीय ... हाय ! कीचक और सुयोधन के छोटे भाइयों रूपी कमलिनियों के लिये ... समान; हाय ! जूए में (मेरी) शर्त को स्वीकार कर लेने वाले; हाय ! ... आज्ञा के पालन करने वाले; हाय ! कौरव-रूपी वन के वनाग्नि, ... हे वत्स, द्यूत के व्यसनी मुझ निर्लज्ज की भक्ति के कारण दस सहस्र मत्त- ... हाथियों के बल वाले तुमने तब वह दासता स्वीकार की थी; मैंने उससे

...विपत्तिर्जीवनम्। [तस्य विच्छेदशरातर।] मानपात्र तु पोठ. इत्यनर। ...ी दैत्यभेदः। [०नुजा एव कमलिन्यस्तासां कुञ्जर उन्मूलयितः। ...संज्ञस्येति। हे वत्स। दुरोदरं द्यूतम्। पर्यो द्यूतं दुरोदरम् ... ...शनिनः आसक्तिमतः मे त्वया। समदानां द्विपानामयुतं तस्येव

किं नामापकृतं मयाऽधिकमतस्त्वय्यद्य यद्गम्यते
स्वस्थानात्सममस्वनान्यदपि मां प्रीतिः कृतं नाधुना ॥

द्रौपदी—(मंगाप्युन्मत्तोत्थाय) महाराज, किमेतदपि !
[महाराअ, किं एदं वुत्तं ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, किमपरम् ।

स कीचकनिषूदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः ।
गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः
प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल ॥१८॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, त्वया किल मे केशाः संयमितव्याः । न
वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम् । तत्प्रतिपालय मां यावदुपसर्पा
(पुनर्मोहमुपगता) [णाह भीमसेण, तुए किल मे केसा संजमिदव्वा । ण
वीरस्स खत्तिअस्स पडिण्णाद सिढिलेदुम् । ता पडिवालेहि मं जाव उवसप्पा

युधिष्ठिरः—(आकाशे) अम्ब पृथे, श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य स्मुदाचार
मामेकमनाथं विलपन्तमुत्सृज्य क्वापि गतः । तात जरासंधशत्रो, किं तात ईद
रयमेतावता कालेनाल्पायुषि त्वयि समालोकितं जनेन । अथवा मयैव बहुपलब्ध

दत्त्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे ।

यस्य तेन । दशसहस्रमदहस्तिप्राणसारेणेत्यर्थः ।] त्वया तदा सा प्रसिद्ध
दासताङ्गीकृतासीत् । [सीदतेति पाठे क्लेशमनुभवता त्वया ।] किं नामेति
अतोऽधिकं त्वयि मयाद्य किमपकृतं तत्प्रकाशयेत्यर्थः ॥१७॥

किं नामैतद्वर्तते ।

स इति । मगधाधिपो जरासंधः । [मदान्धो दर्पोद्धतो मगधाधिप एव द्विरदो
अशनिर्वज्र इव । गदा परिघ इव तेन शोभते तादृशेन ।
गदापरिघः पाणौ यत्र तादृशेन । पाणिः करः । भुजयुगेनेति

अधिक तुम्हारा आज क्या अपकार कर दिया कि जो मुझ अनाथ और बान्धव-
ीन को छोड़कर जल्दी से चले जा रहे हो ? अब तुम्हारा वह प्रेम कहाँ (चला
या) ॥१७॥

द्रौपदी—(चेतना प्राप्त करके और उठकर) महाराज, यह क्या है ?

युधिष्ठिर—द्रौपदी, और क्या—

कीचक को मारने वाला, बक, हिडिम्ब और किर्मीर का हनन करने वाला,
मद से अन्धे मगध-देश के राजा (जरासन्ध) रूपी हाथी की सन्धि छिन्न करने
में वज्र के समान, परिघ सदृश गदा से शोभित भुज-युगल से युक्त, तेरा प्रिय,
मेरा छोटा भाई और अर्जुन का बड़ा (भाई) वह अस्त को प्राप्त हो गया
है ॥१८॥

द्रौपदी – नाथ भीमसेन, आपको तो मेरे केश बाँधने थे। और क्षत्रिय को
तिज्ञा किये हुये कार्य को छोड़ना उचित नहीं है। इसलिये मेरी प्रतीक्षा
ीजिये, मैं अभी आती हूँ। (फिर मूच्छित हो जाती है)।

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर देखकर) माता पृथा, आपने अपने पुत्र का
शिष्टाचार सुना—मुझ अकेले, अनाथ, विलाप करते हुये को छोड़कर कहीं
ा गया। प्रिय जरासन्ध-रिपु, अब तक लोगों ने तुम अल्प आयु वाले के
य में क्या विरुद्ध (आयु-विरोधी) बात देखी थी ? अथवा मैंने ही बहुत
देख लिया था।

जो तू मुझे पृथ्वी, जिसके समस्त राजा (मुझे) कर देने वाले बना दिये थे,
लज्जित होता रहा; जो मेरे द्वारा जूए में बाजी पर रक्खा जाने पर तू

े तृतीया। किल प्रसिद्धौ ॥१८॥

हाँ नाथ न युक्तमिदानीं भवतो वीरस्य [न तु निर्बलस्य] मां शरणमात्रं...
ामनुगच्छामि। पृथे पृथानामधेय। तात मान्य। जरासंधशत्रो भीम।
ल्पायुःसूचकम्।

देवाह—कस्येति। करदो राजभागदाता। [न करदा अकरदाः। अकरदाः
सम्पद्यमानाः कृताः करदीकृता अखिला नृपा यस्या तां। लज्जसे इति
निर्भरस्य ते चिह्नमित्यर्थः। बहुगुणस्य शीघ्रं हितकरस्य...

महाराज, आवीनय मे चिताम् । त्वमपि क्षत्रधर्ममनुवर्तमान एव नायस्य जीवि-
हरस्याभिमुखो भव । अथवा यत्ते रोचते ।

[वन्वेदु णाहो दुज्जोहणरुधिलाद्देण हत्थेण दुस्सासणविमुक्कं मे केसहत्थम्
हञ्जे बुद्धिमदिए तव पच्चक्खं एव्व णाहेण पडिण्णादम् । अज्ज, किं सदिट्टं
मे देवेण देवकीनन्दणेण पुणो वि केसरअणा आरम्भीअदु त्ति । ता उवणेहि
पुष्फदामाइं । विरएहि दाव कवरीम् । करेहि भअवदो णाराअणस्स वअणम्
ण क्खु सो अलीअं सदिसदि । अहवा किं मए संतत्ताए भणिदम् । अविरला
अज्जउत्तं अणुगमिस्सम् । महाराअ, आदीवअ मे चिदाम् । तुमं वि खत्तधम्मं
अणुवट्टन्तो एव्व णाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि । अहवा जं दे रोअदि ।]

युधिष्ठिरः—युक्तमाह पाञ्चाली । कञ्चुकिन्, क्रियतामियं तपस्विनी विना-
संविभागेन सह्यवेदना । ममापि सज्जं धनुरुपनय । अलमथवा धनुषा ।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गी-
मादाय संयति गदामपविध्य चापम् ।
भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन
श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ॥२१॥

राक्षसः—राजन्, रिपुजयविमुखं ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणत्यागं
कुरु । वृथा तत्र गमनम् ।

कञ्चुकी– धिङ् मुने, राक्षससदृशं हृदयं भवतः ।

राक्षसः—(सभयं स्वगतम्) किं ज्ञातोऽहमनेन । (प्रकाशम्) भोः कञ्चुकिन्,
[illegible]योर्गदया खलु युद्धं प्रवृत्तमर्जुनदुर्योधनयोः । जानामि च तयोर्गदायां भुजसारम् ।
[illegible]ःखिनस्य पुनरस्य राजर्षेरपरमनिष्टश्रवणं परिहरन्नेवं ब्रवीमि ।

युधिष्ठिरः—(बाष्पं विसृजन्) साधु, महर्षे, साधु । सुस्निग्धमभिहितम् ।

कञ्चुकी—महाराज, किं नाम शोकान्धतया दैवेन दैवकल्पेनापि प्राकृतेनेव
[illegible] क्षात्रधर्मः ।

[illegible]विनहरस्य यथाऽभिमुखो भव । [तपस्विनी वराकी । संविभागेन
[illegible] विनापिरचनेनेति यावत् । सज्जमिति पाठे अथवा मौर्व्या सहितम् ।]

अनुगमन करूँगी। (युधिष्ठिर के समीप जाकर) महाराज, मेरी चिता प्र
कीजिये। आप भी क्षत्रिय के धर्म का पालन करते हुए स्वामी के प्रा
हरण करने वाले का सामना कीजिये। अथवा जो आपको अच्छा लगे।

युधिष्ठिर—पाञ्चाल की राजकुमारी ने (बिल्कुल) ठीक कह
कञ्चुकी, इस बेचारी को चिता देकर वेदना सहने योग्य कर दो। मेरे
धनुष तैयार करके लाओ। अथवा धनुष रहने दो—

भाई से प्रेम करने वाले अर्जुन ने धनुष को छोड़कर उसके ही श
रुधिर से सिक्त और (इसलिये) लाल अङ्गों वाली गदा को लेकर जो अ
मे किया है, मेरे लिए भी वही श्रेयस्कर है। जय से बस करना चाहिये

राक्षस—राजन्, यदि आपका चित्त शत्रु को जीतने से पराङ्मुख
कहीं भी प्राण त्याग दीजिये। वहाँ जाना व्यर्थ है।

कञ्चुकी—मुनि, आपको धिक्कार है। आपका हृदय तो राक्ष
समान है।

राक्षस—(भयपूर्वक आत्मगत) क्या इसने मुझे पहचान लिया है?
से) हे कञ्चुकी, अर्जुन और दुर्योधन में गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ था। मै
उन दोनों के भुज-बल को जानता हूँ। इस दुःखी राजर्षि को अन्य अनिष्ट
से बचाते हुए ही मैंने ऐसा कहा है।

युधिष्ठिर—(आँसू बहाते हुए) ठीक है, महर्षि, ठीक है। आपने ठ
बात कही है।

कञ्चुकी—महाराज, शोक से अन्धा होने के कारण आप देव-तुल्य
भी सामान्य पुरुषों की भाँति क्षात्र-धर्म का परित्याग क्यों कर रहे हैं?

तस्यैति। तस्यैव भीमस्यैव। [विहरुधिरेण उक्षित सिक्तमत एव भार
पार्थेनैताय संयति युद्धे। पाटलं रक्तमङ्गं यस्या सा ताम्।] अपविध्य त्य
[यद् कृत तद् गदामादाय युद्ध्वा जीवितत्याग. इत्यर्थ। तन्ममापि श्रे
जयेन कृतमलम् ॥२९॥

भुजसारमित्यत्रं कञ्चुकिने कथनम् [गदायां गदायुद्ध इति यावत्। भु
जानामि। तथाहि अर्जुनस्य हीनबलत्वात्तद्वधो निश्चित इत्यर्थ.।]
हितम्। देवकल्पेन देवतुल्येन।

युधिष्ठिरः—आर्य जयंधर,

> शक्यामि तौ परिघपीवरबाहुदण्डौ
> विनेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ ।
> भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ
> द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम् ॥२२॥

अयि पाञ्चालराजतनये, मद्वचनं पाञ्चालशोकवशे, समा संदीप्यते पावकस्तव सहितावेव वन्धुमनं संभावयावः ।

द्रौपदी—आर्य, कुरु दारुसंचयम् । प्रज्वाल्यतां चिता । त्वरते मे हृदयं नाथं प्रेक्षितुम् । (सर्वतोऽवलोक्य) कथं न कोऽपि महाराजस्य वचनं करोति । हा नाथ भीमसेन, तदेवेदं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि साम्प्रतं परिहरति ।

[अज्ज, करेहि दारुसचअम् । पज्जलीअदु चिदा । तुवरदि मे हिअअं णाधं पेक्खिदुम् । कहं ण को वि महाराअस्स वअणं करेदि । हा णाह भीमसेण, तं एव्व एदं राअउलं तुए विरहिदं परिअणो वि संपदं परिहरदि ।]

युधिष्ठिरः—महर्षे, न कश्चिच्छृणोति तावदावयोर्वचनम् । तदिन्धनप्रदानेन प्रसादः क्रियताम् ।

राक्षसः—मुनिजनविरुद्धमिदम् । (स्वगतम्) पूर्णो मे मनोरथः । यावदुपलक्षितः समिन्धयामि वह्निम् । (प्रकाशम्) राजन्, न शक्नुमो वयमिह स्थातुम् (इति निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न कश्चिदस्मद्वचनं करोति । भवतु । स्वयमेवाहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि ।

द्रौपदी—त्वरतां त्वरतां महाराजः । [तुवरदु तुवरदु महाराओ ।]

(नेपथ्ये कलकलः)

शक्यामीति । [परिघवदर्गला इव पीवरौ बाहू दण्डाविव बाहुदण्डौ ययोस्तौ । विनेशः कुबेरः शक्रश्च तयोः पुरयोः दर्शितं वीर्यसारं याभ्यां तौ । कुबेरपुरे सौगन्धिकाहरणकाले भीमेन, अस्त्राधिगमार्थं शक्रपुरीं गतेन शक्राज्ञया ... र नाम दैत्यान् हनवताऽर्जुनेन च ।] [क्षितितले प्रविचेष्टमानौ

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर,

मैं अर्गला के समान स्थूल भुज-दण्डों वाले और कुबेर तथा इन्द्र के नगरों [ब]ल-पराक्रम दिखला चुके हुए भीम और अर्जुन को भूतल पर छटपटाते और को उनकी मृत्यु से चरितार्थ हुआ नहीं देख सकूँगा ॥२२॥

[अ]री मेरी दुर्नीति से शोचनीय अवस्था को प्राप्त पाञ्चाल राजकुमारी, [शीघ्र] ही यह अग्नि प्रज्वलित हो, तब हम दोनों एक साथ ही बन्धुओं का [अ]नुगमन द्वारा) सम्मान करेंगे।

द्रौपदी—आर्य लकड़ियाँ एकत्र कीजिये। चिता प्रज्वलित की जाय, मेरा हृदय स्वामी को देखने के लिये उतावला है। (चारों ओर देखकर) कैसे ? कोई [भ]ी महाराज की आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। हाय स्वामी भीमसेन, [तु]मसे विहीन उस ही इस राजकुल को अब सेवक भी छोड़ रहे हैं।

युधिष्ठिर—महर्षि, कोई भी हम दोनों की बात नहीं सुन रहा है। इसलिए [अ]ब आप ही ईंधन देकर अनुगृहीत करें।

राक्षस—यह मुनि लोगों के प्रतिकूल है। (आत्मगत) मेरी कामना पूर्ण [हुई]। अब छिपकर अग्नि प्रज्वलित करूँगा। (प्रकट में) राजन्, हम यहाँ न [ठह]र सकेंगे। (यह कहकर बाहर चला गया)।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, कोई हमारी बात नहीं मान रहा है। अच्छा। मैं [स्वय]ं ही लकड़ियाँ इकट्ठा करके चिता प्रज्वलित करता हूँ।

द्रौपदी—जल्दी कीजिये, महाराज जल्दी कीजिये।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि होती है)

[...]म्पमानौ भूम्यां लुठन्तौ।] भीमार्जुनौ रिपू च कृतार्थं कृतान्त इन्द्रं न [...]मि। पश्यामि तौ इति पाठे तौ द्रष्टुं पारयामि [इति काकुः] न [...]ीरपर्यः ॥२२॥

[...]मम दुर्नयः] मद्दुर्नयस्तेन प्राप्ता शोच्या दशा या तथाभूते। संहितावेश [...]नैरपेक्ष्यः।] महाराज महाराज आज्ञापयति दासजनमपर। कष्टम्... [...] एतैरेव राजकुलनिवासी दृष्टा विरहितम्। परिजनोऽपि महाराज परि- [...] लमिन्धयामि दीपयामि। [एवं, आर्य महाराज ...]

द्रौपदी— (सभयमाकर्ण्य) महाराज, कस्याप्येष वनवर्तिनस्ते वि... मर्दलनिर्घोषः श्रूयते । अपरमप्यप्रियं श्रोतुमस्ति निर्बन्धस्ततो विलम्ब्यते ।

[महाराअ, कस्स वि एसो वणवासिणस्स विसमो मद्दलणिग्घोसो सुणीअदि । अवरं वि अप्पिअं सुणिदुं अत्थि णिब्बन्धो तदो विलम्बीअदि ।]

युधिष्ठिरः—न खलु विलम्ब्यते । उत्तिष्ठ ।

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

युधिष्ठिरः— अयि पाञ्चालि, अम्बायाः तपस्वीजनस्य च किंचि... निवर्तय परिजनम् ।

द्रौपदी - महाराज, अम्बायां एवं संदेशयामि—यः स बकहिडिम्बकिर्मीरज... सुरजरासंधविजयमल्लस्ते मध्यमपुत्रः स मम हताशायाः पक्षपातेन परलोकं ... इति । [महाराअ, अम्बाए एव्वं संदिसिस्सं— जो सो बअहिडिम्बकिम्मीरजडा... जरासंधविजअमल्लो दे मज्झमपुत्तो सो मम हदासाए पक्खवादेण परलो... गदो त्ति ।]

युधिष्ठिरः—भद्रे बुद्धिमतिके, उच्यतामस्मद्वचनादम्बा ।

येनासि तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने
निर्वाहिता सह सुतैर्भुजयोर्बलेन ।
तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप-
माख्यामि तेऽम्ब कथयेत्कथमीदृगन्यः ॥२३॥

आर्य जयंधर, त्वयापि सहदेवसकाशं गन्तव्यम् । वक्तव्यश्च तत्रभवान्पाण्डु... कुलबृहस्पतिर्माद्रेयः कनीयानस्माकं सकलकुरुकुलकमलाकरदावानलो मुधि... परलोकमभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसंमूढं व्यसनेऽप्युद... धृतिमन्तं भवन्तमविरलमालिङ्ग्य शिरसि चाघ्रायैवं प्रार्थयते—

दर्पितः बलदर्पितस्तस्य । विषमः कर्णकठोरः । निर्घोषः शब्दः । निर्... आग्रहः । दृढाभिलाष इत्यर्थः । ततो विलम्ब्यते इति प्रश्नकाकुः । विजये ... विजयमल्लः ।] एतत्संदेष्टव्यम्—योऽसौ मल्लो मध्यमपुत्रस्ते स मम... ।

येनेति । तत्र वारणावते । तथा च भारतम्—भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीम...

द्रौपदी—(सुनकर भयपूर्वक) महाराज, यह किसी बल के गर्वीले की भय-शङ्खध्वनि सुनाई दे रही है। (आपको) अन्य भी अप्रिय सुनने की अभि-। है, इसलिए (यह) विलम्ब किया जा रहा है।

युधिष्ठिर—नहीं, (अब कोई) विलम्ब नहीं है। उठो।

(सब जाते हैं)

युधिष्ठिर—अरी पाञ्चाली, अम्मा और सपत्नियों को कुछ संदेश देकर सेवकों को लौटा दो।

द्रौपदी—महाराज, अम्मा को इस प्रकार संदेश दूंगी—जो बक, हिडिम्ब, किर्मीर, जटासुर और जरासन्ध को जीतने वाला मल्ल, (आपका) मँझला पुत्र था, वह मुझ मूर्ख के प्रति प्रेम के कारण परलोक चला गया।

युधिष्ठिर—भद्र बुद्धिमतिका, मेरी ओर से अम्मा से कहना—

हे अम्ब, जिसने यहाँ (वारणावत में) लाक्षा-गृह के जलने पर तुम्हें पुत्रों सहित अपने भुजबल से निकाला था, (तुम्हारे) उस बलवान् प्रिय पुत्र के अमङ्गल के विषय में कह रहा हूँ। अन्य ऐसा कैसे कह सकता है ॥२३॥

आर्य जयन्धर, आप भी सहदेव के पास जायें और पाण्डु-वंश के बृहस्पति, माद्री के पुत्र, हमारे छोटे भाई से कहें कि—सम्पूर्ण कुरुकुलरूपी कमलाकर में वह्नि सदृश, परलोक को प्रस्थान करने वाला युधिष्ठिर सर्वदा अनुकूल रहने वाले, प्रत्याशा के योग्य, विपत्ति में विमूढ न होने वाले और अभ्युदय में क्षमा-शील आप प्रिय अनुज का गाढ आलिङ्गन करके और सिर सूँघकर यह याचना करता है—

...मः। जगाम भ्रातृनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥ आ. अ. १४८ श्लो. २०]
...हिता रक्षिताः। ते आख्यामि तुभ्यं कथयामि। अन्यो मत इति शेषः।
... क ईदृशं दुःखं कथयेत्। किं तु न कोऽपीत्यर्थः ॥२३॥
...सकलं कुरुकुलमेव कमलाकरस्तस्य दावानलः। अनेन आत्मनोऽस्मभीष्म-
... क्रूरता चोक्ता। न ह्यमूढचेता कमलानि दावानले प्रक्षिपेदिति भावः।
...नावनुजश्चेति विग्रहः। वहुच्यनियमः इति प्रियस्यैव पूर्वनिपातः।
...हदेवम्। अप्रतिकूलमायत्तम्। आशंसनीयं प्रत्याशार्हम्। विपत्स्वमूढ-
...म्। [अभ्युदये धृतिमन्तं क्षमावन्तम्।] आघ्राय परिचुम्ब्य।

मम हि वयसा दूरेणाल्पः श्रुतेन समो भवा-
न्सहजकृपया बुद्ध्या ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः ।
शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये
मयि विरमिते नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः ॥२४॥

अपि च । मान्ये सर्वविदस्त्र निर्व्याभिमानिनोऽस्मत्प्रद्युम्नादयस्य शत्रुमस्य समात्मना वक्ष्ये स्यानक्रम् । तुल्यता गुरुः । मातुलस्यावासनगरं रक्षा हि वत्स,

विसृज्यास्मान्धृतिविनयया प्रश्रया सानुजेन
पिण्डान्पाण्डोरुदकपृषतानश्रुगर्भान्प्रदातुम् ।
दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा
कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम् ॥२५॥

गच्छ जयंधर, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितेन भवनात्कालहीनमिदमवश्यमावेदनीयम् ।

द्रौपदी—हला बुद्धिमतिके, भण मम वचनेन प्रियसखीं सुभद्राम्—'आ वत्साया उत्तरायाश्चतुर्थो मासः प्रतिपन्नस्य गर्भस्य । त्वमेवैतं कुलप्रतिष्ठापकं सावधानं रक्ष । कदापीतः परलोकगतस्य श्वशुरकुलस्यास्माकमपि सलिलबिन्दुर्भविष्यति' इति ।

[हला बुद्धिमदिए, भणाहि मह वअणेण पिअसहीं सुभद्दम्—वअ वच्छा उत्तराए चउत्थो मासो पडिवण्णस्स गब्भस्स । तुमं एव्व कुलपडिट्ठा सावहाणं रक्ख । कदा वि इदो परलोअगदस्स ससुरउलस्स अह्माणं वि सलि बिन्दुदो भविस्सदि त्ति ।]

युधिष्ठिरः—(सास्रम्) भोः कष्टम् ।

ममेति । दूरेणाधिकेन [अल्पः कनिष्ठः ।] श्रुतेनाध्ययनेन । सह स्वाभाविकी [कृता संस्कारेण वर्धिता । ०कृपयेति पाठे] कृपा दया यस्यां तय धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः इत्यमरः । अतः मुकुलौ पाणी कृत्वाञ्जलिं बद्ध्वा

आप मुझसे अवस्था में बहुत छोटे, ज्ञान में बराबर, सहज और अर्जित ्दि में बड़े और विद्वत्ता में गुरु हैं। इसलिये मैं सिर पर दोनों हाथों को मुकुल नाकर (=दोनों हाथ जोड़कर) आपसे याचना करता हूँ कि आप मेरे प्रति ेह कम कर दें और पिता को जल देने वाले होवें ॥२४॥

और भी, मेरी आज्ञा से, बाल्यावस्था में पाले गये, सर्वदा अभिमान करने वाले और हमारे समान हृदय के सार वाले भी नकुल के वचन का पालन करना। इसलिये नकुल से कहना–वह हमारे पथ का अनुगमन न करे। हे वत्स आपको—

अनुज सहित ज्ञान से निर्मल बुद्धि द्वारा हमें भुलाकर पाण्डु को पिण्ड और अश्रु-मिश्रित जल-बिन्दु देने के लिये सम्बन्धियों के भवन में अथवा यादवों के कुल में अथवा वन में वास करके (अपने) शरीर की रक्षा करनी है ॥२५॥

जयन्धर, जाओ। हमारे शरीर को छूकर सौगन्ध लिये हुए आप अविलम्ब अवश्य ही कह देवें।

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, मेरी ओर से प्रिय सखी सुभद्रा से कहो—'आज बेटी उत्तरा को गर्भ धारण किये चौथा मास है। तू ही इस कुल के प्रतिष्ठापक को सावधानी से रक्षा करना। शायद (यही) यहाँ से परलोक गये श्वशुर-कुल को और हमें जलाञ्जलि देने वाला होगा।'

युधिष्ठिर—(आँसुओं के साथ) ओह! (बड़ा) कष्ट है।

भवन्तमयं इद याचे। मयि स्नेहो विरलतां कृशत्वं नेयः। असमर्थे प्राणान्मा यजेरर्थः। वारिदः निवापोदकस्य दाता ॥२४॥

विस्मृत्येति। सानुजेन त्वयाऽस्मान्प्रज्ञया विस्मृत्य पाण्डोरुदकपृषतान्प्रदातु रीरं रक्षणीयमित्यन्वयः। पृषन्ति बिन्दुपृषताः पुमांसः। इत्यमरः। श्रुतिर- यनम्। वसतिर्वासः ॥२५॥

[स्पृष्टिका स्पर्शः।] शापितेन मदङ्गशपथवता। अकालहीनं कालः योग्य- यस्तेन हीनं यथा न भवेत्तथा। कदाप्येतेनापि परलोकगतस्यास्मा तस्योदकबिन्दुर्भविष्यति। अत्रापन्नसत्त्वा गर्भवती। नामिकुलं ि तक्षिपसि निधापयिष्यसि। अन्नस्यस्य विनाशसम्भवात्।]

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे
पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे ।
दग्धे दैवात्सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि-
न्नाशाबन्धं कमपि कुरुते छाययार्थी जनोऽयम् ॥२६॥

साधु । इदानीमध्यवसितं करणीयम् । (कञ्चुकिनमवलोक्य) आर्य जयन्धर, स्वशरीरेण शापितोऽसि तथापि न गम्यते ।

कञ्चुकी—(साक्रन्दम्) हा देव पाण्डो, तव सुतानामजातशत्रुभीमार्जुननकुलसहदेवानामयं दारुणः परिणामः । हा देवि कुन्ति, भोजराजभवनपताके,

भ्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन-
स्तस्यैवाखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः ।
आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा
दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला ॥२७॥

(इति रुदन्निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः – जयन्धर, जयन्धर ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—वक्तव्यमिति ब्रवीमि । न पुनरेतावन्ति भागधेयानि मः । यदि कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सोऽर्जुनस्तद्वत्सयोःस्मद्वचनाद्भवता,

---

शाखेति । रोधोऽवरोधः । आधिक्यमिति यावत् [शाखारोधेन निरन्तरप्रवृद्धशाखाविस्तारेण स्थगितमाच्छादितं वसुधामण्डलं येन तस्मिन् । मण्डिता अलंकृता आशा दिशो येन । पीनः स्कन्धः प्रकाण्डः यस्य तस्मिन् । सुसदृशगुरोरनुरूपः महामूलस्य पर्यन्तः परितो बन्धो यस्य तस्मिन् । ईदृशि सुमहति दग्धे सति तस्य सूक्ष्माङ्कुरे अस्मिन् । छायया अर्थी छायाभिलाषीत्यर्थः । जनः कमपि दुस्तरमित्यर्थः । आशाबन्धं दैवात् कुरुते ।] आशाबन्ध ... तथा मर्कटजालके । इति विश्वः । छाययार्थी छायाप्रार्थक ।

छाया की कामना करने वाला यह जन (द्रौपदी) शाखाओं के वि
थ्वी-मण्डल को आच्छादित करने वाले, दिशाओं को भूषित करने वा
ने वाले और सुपोष्य बड़ी जड़ के चारों ओर बंधान (चबूतरे) वाले,
ष के भाग्य से जल जाने पर उसके इस सूक्ष्म अङ्कुर पर विचित्र आ
हा है ॥२६॥

ठीक है ! अब निश्चित कर्त्तव्य करना चाहिये (कञ्चुकी को देखक
यन्धर, अपने शरीर की सौगंध दिलाई है, फिर भी नहीं जा रहे हो।

कञ्चुकी—(विलाप करते हुए) हाय महाराज पाण्डु, तुम्हारे पुत्र यु
ीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का यह क्रूर अन्त ! हाय भोजराज के
ी पताका देवी कुन्ती,

तेरे भाई के पुत्र, कृष्ण के बड़े, गाण्डीवधारी के साले, और सम्पूर्ण
े पुत्र रूपी कमलिनी के दलन में गज-रूप उस वृकोदर के ही आचार्य, ह
(बलराम) ने पागल अथवा मद-मस्त होकर तेरे पुत्ररूपी वन को, यह
जिसके अवलम्बन से शीतल थी, जला दिया है ॥२७॥

(इस प्रकार रोता हुआ बाहर चला गया)

युधिष्ठिर—जयन्धर, जयन्धर।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—कहना चाहिये, इसलिये कह रहा हूं। हमारे ऐसे भाग्य
हैं। यदि कहीं वत्स अर्जुन विजयी हो जाय तो आप हमारी ओर से (उ
रहें—

[वरपाण्डुवंशाङ्कुरेऽस्मिन् मलिलविन्द्वादिसाभादेस्यर्थ ।] ॥२६॥

भ्रातुरिति। ते भ्रातुर्वसुदेवस्य। शौरिगुरुणा [शौरेः कृष्णस्य
ज्यायसा भ्राता। अर्जुनस्य श्यालेन सुभद्राया भ्रातृत्वात्। अखिला ध
एव नलिन्यः कमलिन्यः तासां] व्यालोलनं व्याघट्टना। तत्र दन्तिनः
भीमस्य आचार्येण गुरुणा। हलिना बलेनाथ च हलवाहकेन। [
उन्मादवता अथवा मत्तेन क्षीबेण। ननु यदाश्रयाश्रय प्राप्य मही
शान्तिमती आसीत् तत्सुतकाननं दग्धम्। ॥२७॥

(यह) सच (है) कि मेरे वत्स (भीम) की मृत्यु का कारण हलधारी (बलराम) है, फिर भी यह तुम्हारे सहज मित्र मधु-सूदन (कृष्ण) का भाई है। इसलिये (उस पर) क्रोध नहीं करना चाहिये। यदि जीवित रह जाओ तो वन चले आना, लेकिन कठोर क्षात्र-धर्म पर न चलना ॥२८॥

कञ्चुकी—महाराज जैसी आज्ञा दें। (बाहर चला गया)।

युधिष्ठिर—(अग्नि को देखकर हर्ष के साथ) ऊपर उठी हुई ज्वाला रूपी भुजा से हम जैसे विपत्ति में पड़े हुए जनों को निमन्त्रित करने वाला भगवान् अग्निदेव प्रज्वलित हो गया है। (अब) इसमें स्वयं को ईंधन बनाता हूँ।

द्रौपदी—कृपा कीजिये, महाराज मेरी यह अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये। मैं पहले प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर—यदि ऐसा है, तो फिर हम दोनों साथ-साथ ही अभ्युदय का उपभोग करेंगे।

चेटी—हाय भगवान् लोकपालो, रक्षा करो, रक्षा करो। यह चन्द्रवंश के प्रदीप, राजसूय यज्ञ से अग्नि को तृप्त करने वाले, खाण्डव-वन से अनल को तृप्त करने वाले अर्जुन के बड़े भाई, प्रातःस्मरणीय नाम वाले, महाराज युधिष्ठिर हैं। और यह पाञ्चाल की राजकुमारी, यज्ञवेदी के बीच में उत्पन्न, महारानी द्रौपदी हैं। दोनों ही क्रूर अग्नि में प्रवेश करके (उसके) ईंधन हो रहे हैं। इसलिये, हे आर्य लोगों, बचाओ, बचाओ। कैसे? कोई भी नहीं बचा रहा है! (उन दोनों के आगे बढ़कर) महारानी और महाराज ने क्या सोचा है?

अपथ्यं [शत्रुहननरूपम् ।] पुनर्मा गा न गमिष्यसि । मा गा इति वाङ्योगे गमो लुङ् । न माङ्योगे इत्यटो निषेध ॥२८॥

[शिखा एव हस्ताः शिखाहस्ताः । उद्धृता ये शिखाहस्तास्तैः. आहूतः ... व्यसनिजनः येन स तथोक्त ।] अत्र परिकरेण प्रयोग ... परिवर्तो यस्मास्तेन ... ।] प्रथमः ... ।

... । [राजा सोमः सूयते अत्र इति राजसूयः. तेन ... देव ... प्राप्तः ... नामधेय यस्य स तथोक्तः । ...]

युधिष्ठिरः—अयि बुद्धिमतिके, मङ्गलेन प्रियानुजेन विना मह्यं
शलिलोत्थितम्, भद्रे, उदकमुपनय ।

चेटी—यदेव आज्ञापयति (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) अनु
महाराजः । [जं देवो आणवेदि । गेह्णदु गेह्णदु महाराओ ।]

युधिष्ठिरः—पाञ्चालि, त्वमपि तावत्स्वशरानिनो वृकोदरस्य प्रिय
स्योदकक्रियां कुरु ।

द्रौपदी—महाराज एव करोतु । अहं पुनर्ज्वलनं प्रवेक्ष्यामि ।
[महाराओ एव्व करेदु । अहं उण जलणं पविसिस्सं ।]

युधिष्ठिरः—अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम् । भद्रे, उदकमुपनय ।

(चेटी तथा करोति)

युधिष्ठिरः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलाञ्जलिर्गाङ्गे
भीष्माय गुरवे । अयं प्रपितामहाय शान्तनवे । अयमपि पितामहाय विचि
वीर्याय । (सास्रम्) तातस्याप्युपनावसरः । अयमपि तत्रभवते सुगृहीतनाम्ने पि
पाण्डवे,

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः ।
तात माद्रधम्वया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥२

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय
भीमाय तस्य मम चाप्यविभक्तमस्तु ।
एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि
पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥३०॥

अथवा मुक्तक्रियाणां गतिमुपगतं वत्समहमुपगतोऽप्यहतो प्रभुत ।
भीमसेन,

स्याद्यः प्रातः स्मर्यते बुधैः ।] खाण्डववनादीपनजननस्य किरीटिनो.. द्वा
। गाङ्गेयाय भीष्माय । शान्तनवे शान्तनुनाम्ने ।
। हे तात मया दत्तमेतज्जलं माद्रधम्वया सह निपीयताम् ॥२९॥

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिका, जो प्रेम करने वाले, प्रिय अनुज के बिना र्जित है, वही (सोचा हुआ है)। हे कल्याणी उठो, उठो; जल ले आओ।

चेटी—जो महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर और फिर प्रवेश करके) जय हो, महाराज की जय हो।

युधिष्ठिर—पाञ्चाल-पुत्री, अब तुम भी अपने पक्ष-पाती भीम और प्रिय अर्जुन को जलाञ्जलि दे लो।

द्रौपदी—महाराज ही (जलाञ्जलि) दे लें। मैं तो अग्नि में प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर—लोकाचार का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता है। हे भद्रे, जल लाओ।

(चेटी वैसा ही करती है)

युधिष्ठिर—(पैर धोकर और आचमन करके) यह जलाञ्जलि गङ्गा-पुत्र गुरु भीष्म के लिये है। यह प्रपितामह शान्तनु के लिये है और यह पितामह विचित्रवीर्य के लिये है। (आसुओं के साथ अब पिता का बार है। यह (जलाञ्जलि) आदरणीय प्रातःस्मरणीय पिता पाण्डु के लिये है।

आज के बाद फिर यह जल हमसे मिलना कठिन है, इसलिये, हे तात, मेरे द्वारा दिये गये (जल) को माता माद्री के साथ (मिलकर) पीजिये ॥२९॥

कमल के समान नेत्र वाले भीम के लिये (दिया हुआ) यह जल उसका और मेरा सम्मिलित रहे। हे वत्स, प्यासे होते हुए भी तुम क्षण-भर ठहरे रहो। (इसे) तुम्हारे साथ पीने के लिये मैं यह वेगपूर्वक आ रहा हूँ ॥३०॥

अथवा समीप जाने पर भी मैं वीर क्षत्रियों की गति को प्राप्त हुए वत्स को देखने में असमर्थ रहूँगा। वत्स भीमसेन,

---

एतदिति। [जलजं कुवलयमिव नीले विलोचने यस्य तस्मै] जलजस्य लीला विलासो यत्र तत्। भीमप्रियस्य प्रीतिविषयभीमस्य। अविभक्तं साधारणम्। हे वत्स भीम। [पिपासितः संजाततृष्णोऽपि एकं क्षणं] विरम वा प्रतिपालय। अयमहं एतज्जलं त्वया सह पातु वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्] ॥३०॥

गति स्वर्गम्। [अशक्तो असमर्थः।]

युधिष्ठिरः—अयि बुद्धिमतिके, यद्वत्सलेन प्रियानुजेन विना मह्यं
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, भद्रे, उदकमुपनय ।

चेटी—यद्देव आज्ञापयति (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) अनु
महाराजः । [जं देवो आणवेदि । जेदु जेदु महाराओ ।]

युधिष्ठिरः—पाञ्चालि, त्वमपि तावत्त्वत्पक्षपातिनो वृकोदरस्य प्रियस्य
स्योदकक्रियां कुरु ।

द्रौपदी—महाराज एव करोतु । अहं पुनर्ज्वलनं प्रवेश्यामि ।
[महाराओ एव्व करेदु । अहं उण जलणं पविसिस्सम् ।]

युधिष्ठिरः—अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम् । भद्रे, उदकमुपनय ।

(चेटी तथा करोति)

युधिष्ठिरः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलाञ्जलिर्गाङ्गेय
भीष्माय गुरवे । अयं प्रपितामहाय शान्तनवे । अयमपि पितामहाय विचित्र
वीर्याय । (सास्रम्) तातस्याधुनावसरः । अयमपि तत्रभवते सुगृहीतनाम्ने पि
पाण्डवे,

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः ।
तात माद्रयम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥२

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय
भीमाय तस्य मम चाप्यविभक्तमस्तु ।
एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि
पातुं त्वया सह जयादयमागतोऽस्मि ॥३०॥

अथवा गुरुक्रियाणां नतिपुरतर्न ... ।

भीमसेन,

स्वाप: प्रातः स्मर्यते बुधैः ।] ... ।
— । ... । ... भीष्माय । शान्तनवे ... ।
... । हे तात मया दत्तमेतज्जलं माद्रयम्बया सह निपीयताम् ॥२९

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिका, जो प्रेम करने वाले, प्रिय अनुज के वि
ंचित है, यही (सोचा हुआ है)। हे कल्याणी उठो, उठो; जल ले लाओ।

चेटी—जो महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर और फिर प्रवे
रके) जय हो, महाराज की जय हो।

युधिष्ठिर—पाञ्चाल-पुत्री, अब तुम भी अपने पक्ष-पाती भीम और प्रिय
र्जुन को जलाञ्जलि दे लो।

द्रौपदी—महाराज ही (जलाञ्जलि) दे लें। मैं तो अग्नि में प्रवेश
रूँगी।

युधिष्ठिर—लोकाचार का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता है। हे भद्रे,
ल लाओ।

(चेटी वैसा ही करती है)

युधिष्ठिर—(पैर धोकर और आचमन करके) यह जलाञ्जलि गङ्गा-पुत्र
र भीष्म के लिये है। यह प्रपितामह शान्तनु के लिये है और यह पितामह
विचित्रवीर्य के लिये है। (आंसुओं के साथ अब पिता का वार है। यह
जलाञ्जलि) आदरणीय प्रातःस्मरणीय पिता पाण्डु के लिये है।

आज के बाद फिर यह जल हमसे मिलना कठिन है, इसलिये, हे तात, मेरे
ारा दिये गये (जल) को माता माद्री के साथ (मिलकर) पीजिये ॥२६॥

कमल के समान नेत्र वाले भीम के लिये (दिया हुआ) यह जल उसका
ौर मेरा सम्मिलित रहे। हे वत्स, प्यासे होते हुए भी तुम क्षण-भर ठहरे
हो। (इसे) तुम्हारे साथ पीने के लिये मैं यह वेगपूर्वक आ रहा हूँ ॥३०॥

अथवा समीप जाने पर भी मैं वीर क्षत्रियों की गति को प्राप्त हुए वत्स को
ेखने में असमर्थ रहूँगा। वत्स भीमसेन,

एतदिति। [जलजं कुवलयमिव नीले विलोचने यस्य तस्मै] जलजस्य
ीला विलासो यत्र तद्। भीमप्रियस्य प्रीतिविषयभीमस्य। अविभक्तं
ाधारणम्। हे वत्स भीम। [पिपासितः सञ्जाततृष्णोऽपि एक क्षणं] विरम
ा प्रतिपालय। अयमहं एतज्जल त्वया सह पातु जवाद्वेगादागतोऽस्मि
ेमानमामीप्ये भविष्यति लट्] ॥३०॥

र्गति स्वर्गम्। [अक्षमो असमर्थः।]

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं
मदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया ।
वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-
न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ॥३१॥

कृष्णे, त्वमपि देहि सलिलाञ्जलिम् ।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके, उपनय मे सलिलम् ।
[हञ्जे बुद्धिमदिए उवणेहि मे सलिलम् ।]
(चेटी तथा करोति)

द्रौपदी—(उपसृत्य जलाञ्जलिं पूरयित्वा) महाराज, कस्मै सलिलं ददामि
[महाराअ कस्स सलिलं देमि ।]

युधिष्ठिरः—

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम् ।
अम्बापि येन गान्धार्या रुदितेन सखी कृता ॥३२॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, परिजनोपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं ।
[णाह भीमसेण, परिअणोवणीदं उदअं सग्गगदस्स दे पादोदअं भ

युधिष्ठिरः फाल्गुनाग्रज,

असमाप्तप्रतिज्ञेऽस्तं याते त्वयि महाभुजे ।
मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः ॥३३॥

द्रौपदी—उत्तिष्ठ महाराज, दूरं गच्छति ते भ्राता ।
[उट्ठेहि महाराअ दूरं गच्छदि दे भादा ।]

मयेति । [मया अम्बास्तनयुगं लक्षणया स्तनयुगजं पयः पीतं तदनु भ
पीतम् । वत्सलतया मयि स्नेहात् मदुच्छिष्टै रसैः रसवद्भिः भोज्यविशेषैः वृ
जनयसि । वितानेषु यज्ञेष्वपि सोमे सोमपाने एवं तव मम च विधिरभू
अधुना तु त्वं निवापाम्भः एवं पूर्वं कथं पिबसि । तदनु तत्पश्चात् । रसैर्वर्तसे
वृत्ति वर्तनम् । क्रतुविस्तारयोरस्त्री वितानम् । इत्यमरः । साम्यो विधिः ए

आपने माता के दोनों स्तनों को मेरे पी चुकने के बाद पिया था। तुम ऽ
के कारण मेरे बचे हुए रसीले भोजन से आहार करते थे। यज्ञों में भी सोम
विषय में मेरा और तुम्हारा यही ढंग था। (फिर) तू अब तर्पण के जल को इ
प्रकार पहले क्यों पी रहा है ? ॥३१॥

कृष्णा, तुम भी जलाञ्जलि दो।

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, मेरे पास जल लाओ।

(चेटी वैसा करती है)

द्रौपदी—(समीप जाकर और जलाञ्जलि भरकर) महाराज, किसे जल दूं ?

युधिष्ठिर—

हे कृष्णा, अकस्मात् स्वर्ग को चले जाने वाले उस (भीम) को जल दो,
जिसने रोदन द्वारा माता जी को भी गान्धारी की सखी बना दिया है ॥३२॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, सेवक द्वारा लाया हुआ (यह) जल स्वर्ग में गये
ए आपके लिये चरणोदक होवे।

युधिष्ठिर—हे अर्जुन के बड़े भाई,

प्रतिज्ञा बिना पूर्ण किये (ही) तुम महाबाहु के निधन को प्राप्त हो जाने
: खुले हुए केशों वाली ही तेरी प्रिया ने (तुम्हे) जलाञ्जलि दी है ॥३३॥

द्रौपदी—महाराज, उठिये। आपके भाई दूर चले जा रहे हैं।

नरः। साम्य इति चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्। साम्ये विधिः इति पाठे
साम्ये तुल्यत्वे विधिरित्यर्थः। सोमे विधिः इति पाठे सोमलताद्रवपानेऽप्यं प्रकार
इत्यर्थः। निवापः पितृदेयम् ॥३१॥

तस्मा इति। सहसा शीघ्रं जलं देहीत्यन्वयः। येन [रुदितेन हेतुना
अम्बापि गान्धार्याः सखी कृता। पाठान्तरे] गान्धारीरुदितेनाम्बापि सखीकृता
रोदनवती कृतेत्यर्थः ॥३२॥

फाल्गुनोऽर्जुनः।

असमाप्तेति। [॰प्रतिज्ञेऽपि याते इति पाठे याते दिवमिति शेषः
बद्धाः केशा यस्यास्तथा।] ॥३३॥

युधिष्ठिरः— (दक्षिणाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) पाञ्चालि, निमित्तानि कथयन्ति संभावयिष्यसि वृकोदरमिति ।

द्रौपदी—महाराज, सुनिमित्तं भवतु । [महाराज सुणिमित्तं भोदु ।]

(नेपथ्ये कलकलः)

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

कञ्चुकी—परित्रायतां परित्रायतां महाराजः । एष खलु दुरात्मा कौरवापसदः क्षतजाभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः समुच्छ्रितविषमभीषणगदापाणिरुद्यत-कालदण्ड इव कृतान्तोऽत्रभवतीं पाञ्चालराजतनयामितस्ततः परिमार्गमाण इत एवाभिवर्तते ।

युधिष्ठिरः—हा दैव, ते निर्णयो जातः । हा गाण्डीवधन्वन्,

(इति मुह्यति)

द्रौपदी—हा आर्यपुत्र, हा मम स्वयंवरस्वयंग्राहदुर्ललित, प्रियं भ्रातरमनुगतोऽसि, नपुनर्महाराजमिमं दासजनं च । (इति मोहमुपगता)

[हा अज्जउत्त हा मम सअंवरसअंगाहदुल्ललिद पिअं भादुअं अणुगदो सि ण उण महाराअं इमं दासजणं अ ।]

युधिष्ठिरः—हा वत्स सत्यसाधिन्, हा त्रिलोचनाङ्गविलोचनक, हा निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृतामरलोक, हा बदर्याश्रममुनिनिश्चीयताशस्त, हा द्रोणाचार्यप्रियशिष्य, हा अस्त्रशिक्षाबलपरितोषितगाङ्गेय, हा राधेयकुलकमलि-

---

महाराज दक्षिणोऽनिष्टः । . मे भर्ता । संभावयिष्यसि प्राप्स्यसि । [कौर आपदः कौरवापदः । धनाञ्जये इति] क्षतजं रक्तं [तेन पाटलिते रक्ती अम्बरशरीरे यस्य] अम्बरं वास. । [समुच्छ्रिता या शिखा रक्तपिता भीषणा [illegible] मा [illegible] यस्य ।] [illegible] कान्तिरत्नभेदस्तद्वर्णैः । हा मम स्वयं स्वयंग्रहदुर्ललित भ्रातृमिव परलोकमनुगतोऽसि । [स्वयंवरे यः स्वयंग्राहः [illegible] [illegible] मम एव दुर्ललितं यस्य । महापदौ कृतनिवासदेन्यर्णैः । अनेन [illegible] परलोकमनुगत इति स्वनिगम् ।]

कथ्येन वाचकेन् [illegible] दक्षिणकुलेनैव बाणात् [illegible] एको हस्तावर्

[illegible]] अध्यर्कविमुख । [त्रिलोचनस्य [illegible]

युधिष्ठिर—(दाहिनी आँख का फड़कना सूचित करके) पाञ्चाल-पुत्री, मेरे शकुन बतला रहे हैं कि तुम वृकोदर को प्राप्त करोगी।

द्रौपदी—महाराज, (आपका) शकुन सत्य होवे।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि होती है)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—बचाइये, महाराज बचाइये। यह दुष्ट अधम कौरव, रुधिर में स्नान से लाल वस्त्र और शरीर वाला, हाथ मे उठाई हुई और रुधिर से) लिप्त भीषण गदा वाला, मानो कालदण्ड उठाये यमराज, आदरणीय पाञ्चाल राजकुमारी को इधर-उधर खोजता हुआ, इधर ही आ रहा है।

युधिष्ठिर—हाय दैव, तेरा निर्णय हो गया। हाय, गाण्डीव-धनुर्धारिन्

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

द्रौपदी—हाय, आर्यपुत्र ! मेरे स्वयंवर में स्वयं ग्रहण करने के दुराग्रही अर्जुन), आपने (भी) प्रिय भाई का अनुगमन किया; लेकिन महाराज और स दासजन का (विचार) नहीं (किया)। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

युधिष्ठिर—हाय वत्स अर्जुन, हाय त्रिनेत्र शङ्कर के अङ्गों का मर्दन करने वाले मल्ल, हाय निवातकवच नामक दैत्यों का नाश करके देवलोक को निष्कण्टक करने वाले, हाय बदरिकाश्रम के मुनियों (नर-नारायण) में से दूसरे तपस्वी, हाय द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, हाय अस्त्र शिक्षा के बल से गङ्गापुत्र पितामह भीष्म को सन्तुष्ट कर देने वाले, हाय राधा-पुत्र (कर्ण) के कुलरूपी

त्र्यम्बकं मर्दने मल्ल।] निवातेति। निवातकवचनामकदैत्यहननेन नि.ष्कण्टकीकृत-लोक इत्यर्थः। [निवातकवचा नाम दानवा मम शत्रवः। समुद्रकुक्षिमाश्रित्य दुर्गे प्रतिवसन्त्युत। तिस्रः कोट्यः समाख्यातास्तुल्यरूपबलप्रभा। इत्यादि कथा भारते वनपर्वणि द्रष्टव्या। अ. १६८—७१, ७३]। बदर्याश्रमो बदरिकाश्रमः। तत्र यौ मुनी नरनारायणौ तयोः द्वितीयः तापस.। नारायणस्य मुन्योरिति निर्धारणे सप्तमी। [तदुक्तं महाभारते—नरस्त्वं पूर्वदेहे वै सहायवान्। बदर्यां तप्तवानुग्रं तपो वर्षायुतान् बहून्॥ इति]। हिमालिनी तस्याः प्रालेयवर्षं हिमपात। तस्य विनाशकेत्यर्थः।

दुःशासनेन कचकर्षणभिन्नमौलिः
सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ॥३५॥

कञ्चुकी—हा देवि याज्ञसेनि संमन्त्रे, पूरिभूयमे संप्रत्यनाया कुरुकुलकलङ्के

युधिष्ठिरः—(सहसोत्थाय सावष्टम्भम्) पाञ्चालि, न मे त्वयम्। (ससंभ्रम
कः कोऽत्र भोः। सनिषङ्गं मे धनुरुपनय। दुरात्मन्दुर्योधनहतक, आगच्छागच्छ
अपनयामि ते गदाकौशलसंभृतं भुजदर्पं शिलीमुखासारेण। अन्यच्च रे कुरुकुल
ङ्गार,

प्रियमनुजमपश्यंस्तं जरासंधशत्रुं
कुपितहरकिरातायोधिनं तं च वत्सम।
त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो
ननु पुनरपहर्तुं बाणवर्षैस्तवासून् ॥३६॥

(ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसिक्तसर्वाङ्गो भीमसेनः)

भीमसेनः—(उद्धतं परिक्रामन्) भो भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः कोऽयमावेगः।

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि।

कचानां कर्षणमाकर्षणं। कचः केशः शिरोरुहः। इत्यमरः। तेन।) भिन्नं विदारितधम्मिल्ला। मौलिः किरीटे धम्मिल्ले इति विश्वः। [सा द्रौपदी पुन कस्मिन्।] प्रदेशेऽस्तीति शेषः। कथयत तमिति शेषः ॥३५॥

हा देवि अर्थसूचनरूपा धृतिकेयम्। अन्तःपटीप्रविष्टैर्यत्क्रियतेऽर्थस्य सूचन धृतिकार्थप्रकाशनम्। इति भरतः। इह सादननामावमर्शसंधिः। यदाह बीजकार्योपगमनं सादनं समुदीरितम्। [सनिषङ्गं सतूणीरम्। संभृतमुपचितम्

प्रियमिति। कुपितः हर एव किरातः हरकिरातः। किरातरूपी हर इत्यर्थ [तेन सहायुध्यते इति] तं वत्समर्जुनम्। प्राणितुं जीवितुम्। त्वमिवेति कठिने

हि द्रौपदी अब किस स्थान पर है ? (मुझे) बतलाओ ॥३५॥

कञ्चुकी — हाय यज्ञवेदी से उत्पन्न देवी, अब तू अनाथ होकर कुरु-कुल के
-भूत (दुर्योधन) द्वारा अपमानित हो रही है।

धिष्ठिरः — (एकदम उठकर सम्भलते हुए) पाञ्चाल-पुत्री, डरो मत, डरो
(जल्दी से) अरे ! यहाँ कोई है ? तूणीर-सहित मेरा धनुष लाओ। दुष्ट,
र्योधन, आ, आ। मैं बाणों की वृष्टि से तेरे गदा-नैपुण्य से उत्पन्न बाहु-
अभिमान को दूर किये देता हूँ। और भी, अरे कुरुकुल के लिये अङ्गार-

सन्य के शत्रु उस प्रिय अनुज को और कुपित किरातरूपधारी शङ्कर
रने वाले उस वत्स को न देखता हुआ मैं तुम कठोर चित्त वाले के
वित रहने में समर्थ नहीं हूँ, लेकिन बाण-वर्षा से तेरे प्राण अपहरण
ी समर्थ हूँ ही ॥३६॥

(तब हाथ में गदा लिये और रुधिर से सब अङ्गों में लिप्त
भीमसेन प्रवेश करता है।)

न— (अकड़कर इधर-उधर घूमते हुए) हे समन्तपञ्चक में घूमने
, यह कैसी घबराहट है ?

कोई) राक्षस हूँ और न (कोई) भूत। मैं शत्रु के रुधिर रूपी जल
बुझाये हुए अङ्गों वाला और विशाल प्रतिज्ञा रूपी गहन सागर को
हुआ क्रोधी क्षत्रिय हूँ। युद्ध रूपी अग्नि की ज्वालाओं में बचने

रव जीवितुं शक्तस्तथा नाहमितरथं। [तवासून्बाणवर्ष. पुनरप-
रिम। न चेति पाठे न च नास्मि शक्त इति योज्यम्।] च
६॥

[अहं रक्षो न। भूतो न। रुकाम रिपो. रुधिरेव जल नेन
सितमङ्गं यस्य तथोक्तः। निस्तीर्ण उरुः गुर्वी प्रतिज्ञा एव
गहनं दुस्तरो भावो येन। निस्तीर्णः उरु. प्रतिज्ञा एव दहन
ति वा।] अमर्षनिर्विष्टहृत शत्रव दुर्वारितानर्थेरेनिराकाङ्क्षेव

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥३७॥

कथमन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे पाञ्चाली तिष्ठति ।

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा) परित्रायतां परित्रायतां महाराजः ।
[परित्ताअदु परित्ताअदु महाराओ ।]

कञ्चुकी – देवि पाण्डुस्नुषे, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । संप्रति झटिति चितामे
एव श्रेयान् ।

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) कथं न संभावयाम्यद्यापि चितासमीपम् ।
[कहं ण संभावेमि अज्जवि चिदासमीवम् ।]

युधिष्ठिरः—कः कोऽत्र भोः । सनिषङ्गं धनुरुपनय । कथं न कश्चित्
जनः । भवतु । बाहुयुद्धेनैव दुरात्मानं गाढमालिङ्ग्य ज्वलनमभिपातयामि
(परिकर बध्नाति)

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे, संयम्यन्तामिदानीं नयनोपरोधिनो दुःशास
कृष्टा मूर्धजाः । अस्तमिता संप्रति प्रतीकाराशा । चितासमीपमेव द्रु
संभावय ।

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न खल्वनिहते तस्मिन्दुरात्मनि दुर्योधने संहर्तव्याः केश

भीमसेनः—पाञ्चालि, न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासनविलु
वेणिरात्मपाणिभ्याम् । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं संहरामि ।

(द्रौपदी भयादपसर्पति)

भीमसेनः— तिष्ठ, तिष्ठ । भीरु, क्वाधुना गम्यते । (इति केशेषु ग्रहं
मिच्छति)

युधिष्ठिरः—(वेगाद्भीममालिङ्ग्य) दुरात्मन्, भीमार्जुनशत्रो, सुयोधनह

आशैशवादनुदिनं जनितापराधो
मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः ।

क्रोधनः कोपशीलः क्षत्रियः अस्मि । भो भो समरमेव शिखी त
शेषा अवशिष्टाः राजन्यवीराः यः अनेन त्रासेन कृत

बचे हुए हे क्षत्रिय वीरों, आप लोगों को यह भय नहीं चाहिये, जो (आ
) मरे हुए हाथियों और घोड़ों की ओट लिये हुये छिपे बैठे हैं ॥३७।
आप लोग बतलायें पाञ्चाल-पुत्री किस जगह है ?

द्रौपदी—(चेतना प्राप्त करके) रक्षा कीजिये, महाराज रक्षा कीजिये।

कञ्चुकी—देवी, पाण्डु की पुत्रवधू, उठिये, उठिये। अब झट से चिता मे
ष्ट हो जाना ही अच्छा है।

द्रौपदी—(एकदम उठकर) अभी भी चिता के समीप कैसे नहीं जाऊँगी ?

युधिष्ठिर—अरे ! यहाँ कोई है ? तूणीर-सहित धनुष लाओ। कैसे ? कोई
सेवक नहीं है ! अच्छा, बाहु-युद्ध द्वारा ही (इस) दुष्ट का गाढ आलिंगन
आग में गिराये देता हूँ। (यह कहकर कमर कसता है)।

कञ्चुकी—देवी पाण्डु की पुत्रवधू, आँखों को ढकने वाले, दुःशासन द्वारा
गये, अपने केशों को अब बाँध लो। अब प्रतिशोध की आशा नष्ट हो गई
ल्दी से चिता के समीप ही चलो।

युधिष्ठिर—हे कृष्णा, उस दुष्ट दुर्योधन के बिना मरे केश न बाँधो।

भीमसेन—हे पाञ्चाल-पुत्री मेरे जीवित रहते दुःशासन द्वारा खोली गई
को अपने हाथों से नहीं बाँधोगी।

(द्रौपदी भय से दूर भागती है)

भीमसेन—ठहर, ठहर। हे कातर, तू अब कहाँ जा रही है ? (यह कहकर
कड़ना चाहता है)।

युधिष्ठिर—(वेगपूर्वक भीम से लिपटकर) दुष्ट, भीम और अर्जुन के शत्रु,
र्योधन,

पापी, बाल्यावस्था से ही प्रतिदिन अपराध करने वाला, बल से मत्त

ये करितुरगास्तैः अन्तर्हितः तिरोहितं अतः लीनैरेव गतैरिव युष्माभिः
स्थीयते। न तथा स्थातव्यमिति भावः। वामफलमेतत् ॥३७॥

दिति सत्वरम्। विसुलिता विस्खलिता। निषङ्गेन तूणीरेण सहितम्
पर्यङ्कपरिवारयोः इत्यमरः। न खलु नैवेदयं।

शैशवादिति। [पाप आशैशवाद्बाल्यात्प्रभृति अनुदिनं दिने दिने
रितश्च अपराधा येन स तथा। भुजयोर्बलेन मत्तः। ...

आमाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य
जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ॥३८॥

भीमसेनः—अये कथमार्यः सुयोधनशङ्कया क्रोधाग्निर्वपं मामालिङ्गति।

कञ्चुकी—(निरूप्य सहर्षम्) महाराज, वञ्च्यसे। अयं खल्वायुष्मान्भीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः। अलमधुना संदेहेन।

चेटी—(द्रौपदीमालिङ्ग्य) देवि, निवर्त्यतां निवर्त्यताम्। एष खलु पूरितप्रतिज्ञाभारो नाथस्ते वेणीसंहारं कर्तुं त्वामेवान्विष्यति।

[देवी णिवट्टीअदु णिवट्टीअदु। एसो क्खु पूरिदपडिण्णाभारो णाहो दे वेणीसंहारं कादु तुव एव्व अण्णेसेदि।]

द्रौपदी—हञ्जे, किं मामलीकवचनैराश्वासयसि।
[हञ्जे किं म अलीअवअणेहिं आसासेसि।]

युधिष्ठिरः—जयंधर, किं कथयसि नायमनुजन्मा दुर्योधनहतकः।

भीमसेनः—देव अजातशत्रो, भीमार्जुनगुरो, कुतोऽद्यापि दुर्योधनहतकः। मया हि तस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविनः—

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयःसीमया सार्धमुर्व्या।
भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ
नामैकं यद्ब्रवीषि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥३९॥

भीमार्जुनौ येन स तथा। त्वमद्य मे भुजौ एव पञ्जरं तस्य अन्तरमासाद्य जीवन् पदात्पदमपि न प्रयासि।, [पाठान्तरे] संकटं मध्यम्। त्वं जीवन्सन्पदात्पदमपि न प्रयास्यसि। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा इति भविष्यति लट्। यद्वा। तत्कालीनक्रियाया वर्तमानत्वाद्वर्तमाने लट् ॥३८॥

[सुयोधनस्य क्षतजेन अरुणीकृतं रक्तीकृतं सकलं शरीरं अम्बरं च यस्य स तथोक्तः। दुर्लक्षा दुर्ज्ञेया व्यक्तिः स्पष्टाकारो यस्य स तथा।] वेणीसंहारं केशबन्धनम्। अलीकवचनैः [मिथ्याभाषणैः।] पाण्डुकुलं परिभवतीति पाण्डुकुलपरिभावी तस्य।

भूमाविति। [मया तस्य शरीरं भूमौ क्षिप्तम्। इदं तस्य असृक् चन्दनेन

हुआ तू, जिसने राजकुमारों (भीम और अर्जुन) को मारा है, आज मेरे बाहुरूपी पञ्जर के मध्य में आकर एक पग से (दूसरा) पग जीवित न जा सकेगा ॥३८॥

भीमसेन—अरे कैसे ? आर्य दुर्योधन के भ्रम से क्रोध के कारण निर्दयता से मेरा आलिंगन कर रहे हैं।

कञ्चुकी—(ध्यान से देखकर हर्ष के साथ) महाराज, आप धोखा खा रहे हैं। यह तो आयुष्मान् भीमसेन हैं, जिनका सम्पूर्ण शरीर और वस्त्र सुयोधन के रुधिर से लाल हो गये हैं, (और इसलिये) जिनको पहचानना कठिन हो रहा है। (अब कोई) शङ्का नहीं करनी चाहिये।

चेटी—(द्रौपदी का आलिङ्गन करके) हे देवी, लौट आओ, लौट आओ। यह आपका स्वामी, जिसने प्रतिज्ञा के भार को पूरा कर लिया है, आपकी वेणी बाँधने के लिये आपको ही ढूंढ रहा है।

द्रौपदी—सखी, क्यों झूठे वचनों से मुझे आश्वासन दे रही हो ?

युधिष्ठिर—जयन्धर, क्या कह रहे हो कि यह मेरे छोटे भाइयों का शत्रु नीच दुर्योधन नहीं है।

भीमसेन—महाराज अजातशत्रु, भीम तथा अर्जुन के बड़े भाई, अब नीच दुर्योधन कहाँ से (आया) ? मैंने पाण्डु के कुल का अपमान करने वाले उस दुरात्मा के—

शरीर को पृथ्वी पर फेंक दिया है और अपने शरीर पर (उसका) यह चन्दन-सदृश रुधिर लगाया है। आर्य में पृथ्वी के साथ, चारों समुद्रों का जल जिसकी सीमायें हैं, लक्ष्मी स्थित हो गयी है; सेवक, मित्र और योद्धा—यह सम्पूर्ण कुरुकुल युद्धाग्नि में जल गया है। हे पृथ्वीपति, धृतराष्ट्र के पुत्र का वह एक नाम ही शेष रह गया है, जिसे आप कह रहे हैं ॥३९॥

सदृशं यथा तथा चन्दनाभं निजाङ्गे निहितम्। चतुर्णामुदधीनां पयांस्येव सीमानो यस्याः सा तथोक्तया। उर्व्या भूम्या सह श्रीः आर्ये त्वयि निषण्णा स्थिता। भृत्याः कुरूणामिति शेषः। [मित्राणि योधा अखिलं कुरुकुल च रणेऽतद्रणाग्नौ दग्धम्। हे क्षितिप यद् नाम ब्रवीषि तदेतदमुना धार्तराष्ट्रस्य दुर्योधनस्य। शेषमवशिष्टम्।] शेषशब्दोऽत्र धर्मवचनतो वाच्यलिङ्ग इत्य-वधेयम् ॥३९॥

युधिष्ठिरः—(स्वैरं मुक्त्वा भीममवलोक्याश्रूणि प्रमार्जयति)

भीमसेनः—(पादयोः पतित्वा) जयत्वार्यः।

युधिष्ठिरः—वत्स, बाष्पजलान्तरितनयनत्वान्न पश्यामि ते मुखचन्द्रम्। तत्कथय कच्चिज्जीवति भवान्समं किरीटिना।

भीमसेनः—निहतसकलरिपुपक्षे त्वयि नराधिपे जीवति भीमोऽर्जुनश्च।

युधिष्ठिरः—(पुनर्गाढमालिङ्ग्य)

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः
प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः।

भीमसेनः—आर्य, सोऽहम्।

युधिष्ठिरः—

जरासंधस्योरःसरसि रुधिरासारसलिले
तटाघातक्रीडाललितमकरः संयति भवान् ॥४०॥

भीमसेनः—आर्य, स एवाहम्। तन्मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम्।

युधिष्ठिरः—किमपरमवशिष्टम्।

भीमसेनः—आर्य सुमहदवशिष्टम्। संयच्छामि तावदनेन सुयोधनशोणि[illegible]क्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनाकृष्टं केशहस्तम्।

युधिष्ठिरः—सत्वरं गच्छतु भवान्। अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहारम्।

भीमसेनः—(द्रौपदीमुपगम्य) देवि पाञ्चालराजतनये, दिष्ट्या वर्ध[illegible] रिपुकुलक्षयेण। अलमलमेवंविधं मामालोक्य त्रासेन।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन

रिपोरिति। [illegible] ॥४०॥

कृष्टेति। [illegible] दुःशासनेन राज्ञां सदसि [illegible]

युधिष्ठिर—(धीरे से छोड़कर भीम को देखता हुआ आँसू पोंछता है)।

भीमसेन—(पैरों पर गिरकर) आर्य की जय हो।

युधिष्ठिर—वत्स, आँसुओं से नेत्रों के आच्छन्न होने के कारण मैं तुम्हारे रूपी चन्द्र को देख नहीं पा रहा हूँ। इसलिए बतलाओ, आप अर्जुन सहित वित तो हैं?

भीमसेन—आप राजा के सम्पूर्ण शत्रुपक्ष को नष्ट कर देने पर भीम और [न] जीवित हैं।

युधिष्ठिर—(फिर गाढ आलिङ्गन करके)।

शत्रु के नाश की बात रहने दो। मुझे सैकड़ों बार (=बार-बार) यह लाओ कि क्या तुम सचमुच ही मेरे वह प्रिय भाई हो, जो बक का शत्रु है?

भीमसेन—आर्य, मैं वही हूँ।

युधिष्ठिर—

(क्या) आप युद्ध में रुधिर-वर्षा रूपी जल वाले, जरासन्ध के वक्षःस्थल [रूप]ी तालाब में तटाघात की क्रीडा करने में सुन्दर (प्रतीत होने वाले) मकर ? ॥४०॥

भीमसेन—आर्य, मैं वही हूँ। इसलिये आर्य मुझे क्षण भर के लिये [छो]ड़ दें।

युधिष्ठिर—और क्या शेष रह गया है?

भीमसेन—आर्य, बहुत बड़ा (कार्य) शेष रह गया है। अब सुयोधन के [रु]धिर से भीगे हुए इस हाथ से पाञ्चाली के दुःशासन द्वारा खींचे गये उत्तम [के]शों को बाँधूंगा।

युधिष्ठिर—आप जल्दी से जायें। (वह) बेचारी वेणी बाँधने के आनन्द का [उप]योग करे।

भीमसेन—(द्रौपदी के समीप जाकर) हे पाञ्चाल की राजकुमारी देवी, [कु]रु-कुल के नाश के लिये आपको बधाई है। इस प्रकार के मुझे देखकर भय बस करो, बस करो।

राजाओं की सभा में जिस नर-रूप में पशु, दुःशासन ने मुझे घसीटा था,

---

[व]स मसीतिवेपाणि मम करयोः स्थितानि रक्तानि अगृह्णि स्पृश। हे भान्ते

स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि ।
कान्ते राज्ञः कुरूणामपि सरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
रङ्गे ऽङ्गे ऽसृङ्निषिक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥

बुद्धिमतिके, क सा संप्रति भानुमती योपहसति पाण्डवदारान्। भव यज्ञवेदिसंभवे याज्ञसेनि ।

द्रौपदी—आज्ञापयतु नाथः । [आणवेदु णाहो ।]

भीमसेनः—स्मरति भवती यन्मयोक्तम् । (चञ्चद्भुजेत्यादि १-२१ पूर्वो पठति) ।

द्रौपदी—नाथ, न केवलं स्मरामि । अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन ।
[णाह ण केवलं सुमरामि । अणुहवामि अ णाहस्स प्पसादेण ।]

भीमसेनः—(वेणीमवधूय) भवति, संयम्यतामिदानीं धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रि दुःशासनविलुलितेयं वेणी ।

द्रौपदी—नाथ, विस्मृताऽस्म्येतं व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये । [णाह विसुमरिदह्मि एदं वावारम् । णाहस्स प्पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सम् ।]

भीमः— (वेणीं बध्नाति)

(नेपथ्ये)

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय ।
क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि
प्रत्याशं मुक्तकेशान्यतुलभुजबलैः पार्थिवान्तःपुराणि ।

मद्गदया चूर्णितो ऊरू यस्य तस्य कुरूणां राज्ञोऽपि सरसं मम अङ्गे अङ्गे निषिक्तम् असृक् रक्तं तव परिभवजस्य अनलस्य उपशान्त्यै भवेत् ।] निर्वहणमिह श्लोके । यदुक्तं तत्रैव—पूर्वं प्रसारितानां तु बीजादीनां समापनम् । निर्व्यूढत्वेन क्रियते तन्निर्वहणमीरितम् ॥४१॥

नाथस्य प्रसादेन पुनरनुभवामि । [अवधूय आस्फाल्य । धार्तराष्ट्रकुलस्य ...नि- प्रलयकरी । विलुलिता अवकृष्टा व्यस्तता च । एतं व्यापारं वेण-

मेरे दोनों हाथों में पीने से बचे हुए इस गाढ़े रुधिर का स्पर्श करो। हे तेरी अपमान से उत्पन्न वह्नि की शान्ति के लिए मेरी गदा से चूर्ण हुई वाले, कुरुओं के राजा का भी यह ताजा रुधिर (मेरे) अङ्ग-अङ्ग पर हुआ है ॥४१॥

बुद्धिमतिका, अब वह भानुमती कहाँ है, जो पाण्डवों की पत्नी का करती थी। हे श्रीमती यज्ञवेदी से उत्पन्न याज्ञसेनी,

दी—स्वामी आज्ञा कीजिये।

मसेन—जो मैंने कहा था, वह आपको याद है। (चञ्चद्भुज...इत्यादि लोक १।२१ का पाठ करता है)।

ी—नाथ, केवल याद ही नहीं है, अपितु नाथ की कृपा से (उसका) ी कर रही हूँ।

सेन—(वेणी को हिलाकर) श्रीमती जी, अब धृतराष्ट्र के कुल के लिए स्वरूप, दु:शासन द्वारा खोली गई, इस वेणी को बाँध लीजिये।

—नाथ, मैं यह काम भूल गई हूँ। स्वामी की कृपा से फिर

—(वेणी बाँधता है)।

(नेपथ्य मे)

की अग्नि मे जलने से बचे हुए क्षत्रिय-कुल का कल्याण हो। खुलने के कारण क्रोध से अन्धे हुए, अतुल बाहुबल वाले, पाण्डु के ओं को नष्ट करके प्रत्येक दिशा मे राजाओं के अन्तःपुरों को खुले ा कर दिया है, क्रुद्ध हुए यमराज के सदृश और कुरुओं के लिये

य विस्मृतोऽयं व्यापारो मया। साम्प्रत नाथस्य।

रति। [यस्य केशपाशस्य मोक्षान्मोचनात् क्रोधेनान्धं क्रोधान्धः येस्तैः क्षतनरपतिभिः अतुलं भुजयो. बल येषा तै. अतुलभुजबलैः ाशायामाशायामिति प्रत्याशं प्रतिदिश पार्थिवान्तःपुराणि पृथिव्या ा नृपास्तेषामन्तःपुराणि लक्षणया तत्रस्थाः स्त्रियः। मुक्ताः मुक्तकेशानि कृतानि। भर्तृविनाशाद्वैधव्यप्रापणादिति भावः।

स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि।
कान्ते राज्ञः कुरूणामपि सरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
रङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निषिक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥४

बुद्धिमतिके, क्व सा संप्रति भानुमती योपहसति पाण्डवदारान्। भवति यज्ञवेदिसंभवे याज्ञसेनि।

द्रौपदी—आज्ञापयतु नाथः। [आणवेदु णाहो।]

भीमसेनः—स्मरति भवती यन्मयोक्तम्। (चञ्चद्भुजेत्यादि १-२१ पुनः पठति)।

द्रौपदी—नाथ, न केवलं स्मरामि। अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन।
[णाह ण केवलं सुमरामि। अणुहवामि अ णाहस्स पसादेण।]

भीमसेनः—(वेणीमवमृश्य) भवति, संयम्यतामिदानीं धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रि-र्दुःशासनविलुलितेयं वेणी।

द्रौपदी—नाथ, विस्मृतास्म्येतं व्यापारम्। नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये। [णाह विसुमरिदह्मि एदं वावारं। णाहस्स प्पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सं।]

भीमः—(वेणीं बध्नाति)

इसके मेरे दोनों हाथों में पीने से बचे हुए इस गाढ़े रुधिर का स्पर्श करो। हे प्रिया, तेरी अपमान से उत्पन्न वह्नि को शान्ति के लिए मेरी गदा से चूर्ण हुई जंघाओं वाले, कुरुओं के राजा का भी यह ताजा रुधिर (मेरे) अङ्ग-अङ्ग पर सींचा हुआ है ॥४१॥

हे बुद्धिमतिका, अब वह भानुमती कहाँ है, जो पाण्डवों की पत्नी का उपहास करती थी। हे श्रीमती यज्ञवेदी से उत्पन्न याज्ञसेनी, -

द्रौपदी—स्वामी आज्ञा दीजिये।

भीमसेन—जो मैंने कहा था, वह आपको याद है। (चञ्चद्भुज...इत्यादि श्लोक १।२१ का पाठ करता है)।

द्रौपदी—नाथ, केवल याद ही नहीं है, अपितु नाथ की कृपा से (उसका) अनुभव भी कर रही हूँ।

भीमसेन—(वेणी को हिलाकर) श्रीमती जी, अब धृतराष्ट्र के कुल के लिए कालरात्रि-स्वरूप, दुःशासन द्वारा खोली गई, इस वेणी को बाँध लीजिये।

द्रौपदी—नाथ, मैं यह काम भूल गई हूँ। स्वामी की कृपा से फिर सीखूँगी।

भीम—(वेणी बाँधता है)।

(नेपथ्य मे)

महायुद्ध की अग्नि मे जलने से बचे हुए क्षत्रिय-कुल का कल्याण हो। जिसके खुलने के कारण क्रोध से अन्धे हुए, अतुल बाहुबल वाले, पाण्डु के पुत्रों ने राजाओं को नष्ट करके प्रत्येक दिशा मे राजाओं के अन्तःपुरों को खुले केशों वाला कर दिया है, क्रुद्ध हुए यमराज के सदृश और कुरुओं के लिये

नम्।] नाथ विस्मृतोऽयं व्यापारो मया। साम्प्रत नाथस्य।

क्रोधान्धैरिति। [यस्य केशपाशस्य मोक्षान्मोचनात् क्रोधेनान्धैः क्रोधान्धैः नरपतयो यैस्तैः क्षतनरपतिभिः अतुल भुजयो बल येषा तैं अतुलभुजबलैः पुत्रैः। आशायामाशायामिति प्रत्याशं प्रतिदिश पार्थिवान्तःपुराणि पृथिव्या ईश्वराः पार्थिवा नृपास्तेषामन्तःपुराणि लक्षणया तत्रस्थाः स्त्रियः। मुक्ताः केशा येषां तानि मुक्तकेशानि कृतानि। भर्तृविनाशाद्वैधव्यप्रापणादिति भावः।

कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां
सोऽयं बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञांकुलेभ्यः ॥४

युधिष्ठिरः—देवि, एष ते वेणीसंहारोऽभिनन्द्यते नमस्तलसंचारिणा सिद्ध जनेन ।

(ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ)

कृष्णः—(युधिष्ठिरमुपगम्य) विजयतां निहतसकलारातिमण्डलः सानुज पाण्डवकुलचन्द्रमा महाराजो युधिष्ठिरः ।

अर्जुनः—जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—(विलोक्य) अये भगवान्पुण्डरीकाक्षो वत्सश्च किरीटी । भगवन्, अभिवादये (किरीटिनं प्रति) एह्येहि वत्स ।

(अर्जुनः प्रणमति)

युधिष्ठिरः—(वासुदेवं प्रति) देव, कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान्पुराण-पुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्ति
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।
अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥४३॥

सः अयं कुपितस्य यमस्य सखा कुपितयमसखः । राजाहःसखिभ्यष्टच् । कुरूणां धूमकेतुः नाशहेतुत्वात् । कृष्णायाः केशपाशः केशकलापः । बद्धः । प्रजानां निधनं संग्रामे इति शेषः । विरमतु । राज्ञां कुलेभ्यः स्वस्ति भूयात् । अ पूर्वार्धे काव्यलिङ्गमलंकारः । उत्तरार्धे उपमा रूपकं चैतयोः संसृष्टिः ।] ...र्यान्योऽत्र दुर्योधनः । तथा च दुर्योधने हते तदन्तःपुरनार्यः अनिबद्धकेशा ...इता इति भावः । [पाठान्तरे] विस्वुपेति आनन्दहेतुः ॥४२॥

...।] पुण्डरीकाक्षः कृष्णः । आशास्ते स्वीकरोति । ...देव जगति त्वां चिन्तयित्वाऽपि जनो दुःखी न भवति । किं ...। अपि तु न भवतीति भावः । कीदृशम् । कृता गुरो... ...दैः पर्वतादेर्वा क्षोभेन परिणामेन संभूता ...र्दृश्या येन तम् । यद्वा । कृतो गुरुः पर्वतादिर्येन ...

[-सूचक) धूमकेतु स्वरूप, कृष्णा का यह महत् केशपाश बँध गया है
का नाश बन्द हो जाये। राजाओं के कुलों का कल्याण हो ॥४२॥
ष्ठिर—हे देवो, आकाश-तल में विचरण करने वाले सिद्ध लोग तुम्हारे
-बन्धन का अभिनन्दन कर रहे हैं।

(तत्पश्चात् कृष्ण और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

—(युधिष्ठिर के समीप जाकर) सम्पूर्ण शत्रु-समूह को नष्ट कर देने
डव-कुल में चन्द्रतुल्य, महाराज युधिष्ठिर अनुजों सहित विजय पायें।
—आर्य की जय हो।
ष्ठिर—अरे! भगवान् विष्णु (कमल तुल्य नेत्रों वाला) और वत्स
गवन्, मैं प्रणाम करता हूँ, (अर्जुन को लक्ष्य करके) वत्स, आओ, आओ।

(अर्जुन प्रणाम करता है)

ष्ठिर—(वासुदेव को लक्ष्य करके) भगवन्, जिसके लिये स्वयं पुरातन-
न् नारायण मङ्गल की कामना करें, उसकी जय से अतिरिक्त अन्य
रती है?

किये गये महत्तत्त्व आदि के महान् क्षोभ से उत्पन्न मूर्ति वाले,
प्रजाओं की उत्पत्ति, विनाश और स्थिति के कारणभूत, सगुण, अजन्मा, अमर
और अचिन्त्य आप (देव) का चिन्तन करके भी संसार में (कोई प्राणी) दुःखी
नहीं रहता है, फिर देखकर तो क्या? ॥४३॥

तथा। महदादेराकाशादेः क्षोभेन मिलनेन महाभूतसमाधिना सम्भूता इन्नारमशारे-
र्तिः शरीरं येन स तथा। पञ्चाद्द्विपदगमभाम। यद्वा। इमं गुरुकार्यं द्रव्यं
न साहसेन महदादिना कालाकाशादिना सम्भूता मिलिता मूर्तिर्यस्य तम्।
मान्यकारणेन सह भगवान्वेदादिकर्तेति भाव। अत एव गुणेन वेदादिसृष्टि-
रियत्वप्रलयादिमन्तम्। यद्वा। गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपास्तद्योगेन लोकसृष्टिना-
स्थैर्यकारणं च। तथा च सत्त्वरजस्तमोरूप गुणत्रय सहकारि समागाय
रिहरहिरण्यगर्भस्वशरीरस्यं भगवान्कार्यत्रयकर्तेति भाव। [स्थानं स्थितिः]
समजन्यम्। अमरमनाशम्। [अजरमिति पाठे जरारहितमविकारमित्यर्थः।]
चिन्त्यं वाङ्मनसागोचरम्। तदुक्तम्—यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा
। अत्र च विरोधाभासः। यो हि सम्भूतमूर्तिः स कथमजः। यो ह्यचिन्त्य-
स कथं चिन्त्येति। अविरोधस्तु दर्शित एव ॥४३॥

(अर्जुनमालिङ्ग्य) वत्स, परिष्वजस्व माम् ।

कृष्णः—महाराज युधिष्ठिर,

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो
धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः ।
प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं
स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ॥४४

अहं पुनर्दुरात्मना चार्वाकेण विप्रकृतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सह त्वरित रमायातः ।

युधिष्ठिरः—कथं चार्वाकेण रक्षसा वयमेवं विप्रलब्धाः ।

भीमसेनः— (सरोषम्) क्वासौ धार्तराष्ट्रसखा पुण्यजनापसदो येनार्य महांश्चित्तविभ्रमः कृतः ।

कृष्णः—निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन । तत्कथ महाराज, किमस्मात समीहितं संपादयामि ।

युधिष्ठिरः— एवं पुण्डरीकाक्ष, न किंचिन्न ददाति भगवान्प्रसन्नः । अहं पुरुषसाधारण्या बुद्धया संतुष्यामि । न खल्वतः परमभ्यर्थयितुं क्षमः परयतु देव

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं
पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः ।
त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाषसे

व्यासोऽयमिति । [अय भगवान् व्यासः । अमी च वाल्मीकिरामादयः मुनयः । रामः परशुरामः । माद्रीसुताभ्यामधिष्ठिताः धृष्टद्युम्नमुखाः धृष्टद्युम्नो मुखमाद्यो येषां ते तथा । आज्ञाविधेयैः मागधमत्स्ययादवकुलैः समं सह । स्कन्धेन उत्तम्भिता उत्तोलिताः । तीर्थवारि जाह्नवीप्रभृतिजलं तस्य कलशा यैस्ते तथोक्ताः ते तत्र राज्याभिषेकाय प्राप्ता उपस्थिताः सन्तीति शेषः] [पाठान्तरे] जाबालिनामा मुनिः ॥४४॥

३ राक्षसेषु अधमश्रो नीचः ।] दृष्टोऽहनां [?]मन्यदिशपनेन कारण

(अर्जुन का आलिङ्गन करके) वत्स, मेरा आलिङ्गन करो।

कृष्ण—महाराज युधिष्ठिर,

यह भगवान् व्यास, ये वाल्मीकि तथा परशुराम आदि मुनि और माद्री के
से अधिष्ठित धृष्टद्युम्न आदि सेनापति आज्ञाकारी मागध, मत्स्य और यादव
के साथ तेरे राज्याभिषेक के लिये कन्धों पर तीर्थों के जलों से भरे कलश
हुए आ रहे हैं ॥४४॥

लेकिन मैं आपको दुष्ट चार्वाक द्वारा व्याकुलित किया हुआ जानकर अर्जुन
साथ जल्दी चला आया हूँ।

युधिष्ठिर—कैसे ? चार्वाक राक्षस ने हमें इस प्रकार धोखा दिया।

भीमसेन—(रोषपूर्वक) कहाँ है वह दुर्योधन का मित्र नीच राक्षस, जिसने
यं को महान् बुद्धि-व्यामोह उत्पन्न कर दिया था।

कृष्ण—उस दुष्ट को नकुल ने पकड़ लिया है। महाराज, इससे आगे
उसका) और क्या अभीष्ट करूँ ?

युधिष्ठिर—पुण्डरीकाक्ष, भगवान् प्रसन्न होकर क्या कुछ नहीं देते हैं ? मैं
सामान्य पुरुषों की बुद्धि से ही सन्तुष्ट हूँ। इससे अधिक माँगने का सामर्थ्य
में नहीं है। भगवान् देखिये

क्रोध से अन्धे हुए (हम पाण्डवों) ने सम्पूर्ण शत्रु-कुल को मार डाला,
कन वह हम पाचों अक्षत रहे। पाञ्चाल की राजपुत्री ने मेरी दुर्नीति से
त्र अपमान के सागर को पार कर लिया। आप भगवान् पुरुषोत्तम मुझ
गवातो से आदरयुक्त होकर बातें कर रहे हैं। इससे अधिक और क्या है,

---

ारहूपनिर्वहणसंधि.। यदाह—वरप्रदान-सम्प्राप्ति काव्यसंहार उच्यते।
ित्र न ददासि। किं तु ददास्येव। द्वौ निरर्थौ प्रश्ननमर्थ गमयत। [पुरुषेषु
ारणी पुरुषसाधारणी] तया।

क्रोधान्धैरिति। क्रोधान्धैरर्यात्प्रबलशत्रुवंशेन। [ते वय] पञ्च पाण्डवा
ा इत्यन्वयः। पाञ्चाल्या निकारसिन्धुः [परिभवसागर] मम दुर्नयेन
ारिपणनादिना] विहितस्तीर्णः। पुरुषोत्तम इति। पुरुषेभ्य उत्तम इति
ः। न तु पुरुषेपूत्तम इति। न निर्धारणे इति निषेधात्। न चानेन
समासनिषेधो न तु सप्तमीसमासनिषेध इति वाच्यम्। तथा सति षष्ठी-

किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम् ॥४५
तथापि प्रीततरश्चेद्भगवांस्तदिदमस्तु ।

अकृपणमरुक्श्रान्तं जीव्यज्जनः पुरुपायुषं
भवतु भगवन्भक्तिर्द्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।
दयितभुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवि-
त्सततसुकृती भूयाद् भूपः प्रसाधितमण्डलः ॥४६॥

अपि च

अवनिमवनिपालाः पान्तु वृष्टिं विधत्तां
जगति जलधराली शस्यपूर्णास्तु भूमिः ।
त्वयि मुरनरकारौ भक्तिरद्वैतयोगा-
द्भवतु मम सुदीर्घं हव्यमश्नन्तु देवाः ॥४७॥

कृष्णः—एवमस्तु ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

समाप्तमिदं वेणीसंहारं नाम नाटकम् ।

समासस्याप्राप्तेरेव निषेधात्सर्वत्र सप्तमीसमासेनैव प्रयोगसिद्धेः । तस्मात्षष्ठी
समास एवायमित्यदोषः । सुकृतिनं पुण्यवन्तम् ॥४५॥

अकृपणमिति अकृपणं कार्पण्यरहितमरुक्श्रान्तं न रोगेण परिश्रान्तं च यथा
तथैवं [जनः] लोकः पुरुपायुषं जीव्याज्जीवतु । पुरुपायुषमिति अचतुर-इत्यादी
न । हे भगवन् द्वैतं विनाऽद्वैतक्रमेण पुरुषोत्तमे भक्तिर्भवतु । मम

जिसे मैं प्रसन्न हुए भगवान् से माँगूं ॥४५॥

फिर भी, यदि भगवान् बहुत ही प्रसन्न हैं, तो यह हो जाये—

हे भगवन्, प्रजायें कार्पण्य रहित तथा नीरोग होकर पुरुष की आयु पर्यन्त जयें। पुरुषोत्तम में द्वैत रहित भक्ति होवे। राजा प्रजा का अनुरागी, विद्वानों का बन्धु, गुणों का विशेष ज्ञाता, सदा पुण्य कार्य करने वाला और अधीन राजाओं को वश में रखने वाला होवे ॥४६॥

और भी—

राजा लोग पृथ्वी का पालन करें; मेघपङ्क्ति भुवन में वृष्टि करे; पृथ्वी धान्य से पूर्ण हो, मेरी मुर और नरक के शत्रु आप में अद्वैत सम्बन्ध से भक्ति हो। और दीर्घकाल पर्यन्त देव लोग हवि का भोग करते रहें ॥४७॥

कृष्ण — ऐसा ही होगा।

(सब निकल जाते हैं)

* षष्ठ अङ्क समाप्त *

वेणीसंहार नाम का नाटक समाप्त हुआ।

नाना चेति शेषः। पण्डितगुणेषु पण्डितजनो विहितहृदयो दत्तचित्तः सानुरागो भवतु। भूपः [दयितं भुवनं यस्य तथा प्रियलोकः। विदुषां बन्धुः। विशेषविद्विशिष्टगुणानां] सदा पुण्यवान्प्रसाधितराजचक्रश्च भूयात् ॥४६॥

[जलधराली मेघपङ्क्तिः जगति वृष्टिं विधत्ताम्। भूमिः शस्यैः पूर्णा धान्यादिसमृद्धिमती अस्तु। मुरनरकयोस्तन्नामकदैत्ययोः शत्रौ। अद्वैतयोगादनन्यमनसा भक्तिः भवतु। देवाः हव्यं होमेषु हुतमाज्यादि सुदीर्घं बहुकालमश्नन्तु] ॥४७॥

* इति षष्ठोऽङ्कः *

टिप्पणकृतो जगद्धरस्य वंशादिकीर्तनम्

कतीह नाटकाम्बुधौ स्फुरन्ति नोज्ज्वला रसाः ।
मदीयबुद्धिरल्पिका क वेद तानशेषतः ॥१॥

नानादरं मम कृतौ नियतं तनुध्व-
मत्राधुनातनतया गुणदोषविज्ञाः ।
ग्राह्यं शिशोरपि सुभाषितमित्यमात्य
यूयं ततोऽपि मम टिप्पनमाद्रियध्वम् ॥२॥

लब्धं दुर्लभशासनं सुरगणग्रामोऽभिरामो गुणै-
र्विद्यावंशविभूषणे अपि शुभे छत्रे उभे धारिते ।
येनायं समभूद् द्विजातितिलकश्चण्डेश्वरः पण्डितो
मीमांसैकरहस्यवश्यहृदयो दातावदाताशयः ॥३॥

आमूलासावहितनगरीनागरीगीतकीर्ति
क्षिप्रं क्षिप्रं गुणदमधिकं वेदपूर्वं धरं तम् ।
कैवर्तानामलभत नृपाच्छासनं सोऽयमुच्चै-
रात्मसुतं गुणमयमनु रामपूर्वं धरात्मम् ॥४॥

सोऽस्य पुत्रोऽभवन्नगरे पदमाप शुद्धे
मीमांसको विमलकीर्तिपवित्रमूर्तिः ।
पुत्र । ... गुणैरगाध
सान्निध्यकं गुणिगणप्रथिताभिमानम् ॥५॥

अमूत विद्याधरमेव धीरं गुणैरनूनं गुरुनाधिवासम् ।
तं रत्नपूर्वं धरमाप पुत्र सोऽपि प्रसिद्ध गुणिना गुणेन ॥६॥

...रामय धीरो लेभे गुणमरिदमम् ।
श्रीजगद्धरनामानमनर्घ्यगुणशालिनम् ॥७॥

... चरितं येन धीमता ।
... सोऽयं नैर्गर्विकः कविः ॥८॥

…ाठि कठोरगौतममतं वैशेषिकं खण्डनं
येनाश्रावि सकोपकाव्यनिवहं तत्पाणिनीयं मतम् ।
…ऽलंकरणं च शुद्धभरतं येनाध्यगायि स्थिरं
तेनानेन जगद्धरेण कविना टीका कृतेयं मुदा ॥९॥
…कृतिसुन्दरो रसवती नानागुणाना निधि-
र्नानाभावविभावनैकचतुरा नानार्थसार्थाधिका ।
विमलाङ्गनेव रहिता दोषैरशेषैरत-
…स्नामेतामधिभूषयन्तु कृतिनस्तेभ्यो नमः सर्वदा ॥१०॥
…वति मदीयग्रन्थमध्ये प्रमादः
…क्वचिदपि स महिम्ना शोधनीयो महद्भिः ।
…गमनकारी प्रायशो नात्र चित्रं
…वति च गुरुहस्तालम्बनोऽपि प्रकारः ॥११॥
… रत्नधरो गुणीशो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि ।
…स्य कृतौ व्यरंसीत्षष्ठोऽयमङ्को वरटिप्पनेऽत्र ॥१२॥

… महामहोपाध्यायधर्माधिकारिकश्रीजगद्धरकृतौ
…वेणीसंहारटीकायां षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।
॥ शुभमस्तु ॥

वेणीसंहारस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमसूची

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क.
अकलितमहिमानं	५	४०
अङ्कपर्णमरक्ष्यान्तं	६	४६
अक्षतस्य गदापाणेः	४	४
अत्रैव किं न विसृसेयं	५	३२
अद्यप्रभृति वारीद	६	२९
अद्य मिथ्याप्रतिज्ञो-	३	४२
अद्यैवावां रणमुपगतौ	४	१५
अन्योऽनुभूतशत-	५	१३
अन्योन्यास्फालभिन्न-	१	२७
अपि नाम भवेन्मृत्युः	४	९
अप्रियाणि करोत्येप	५	३१
अयि कर्ण कर्णसुखदा	५	१४
अयं पापो यावन्न	३	४५
अवनिमवनिपालाः	६	४७
अवसानेऽङ्गराजस्य	५	३९
अश्वत्थामा हत इति	३	११
असमाप्तप्रतिज्ञेऽस्तं	६	३३
अस्त्रग्रामविधौ कृती	४	१२
अस्त्रज्वालावलीढ-	३	७
आचार्यस्य त्रिभुवन	३	२०
आजन्मनो न वितथं	३	१५
आत्मारामा विहित	१	२३
आशस्त्रग्रहणादकुण्ठ-	२	२
[illegible]	६	३८

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो
इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं	१	
इयमस्मदुपाश्रयैक-	२	
उद्घातक्वणितविलोल-	२	
उपेक्षितानां मन्दानां	३	
ऊरू करेण परिघट्टयतः	६	
एकस्य तावत्पाकोऽयं	३	
एकेनापि विनानुजेन	५	
एतज्जलं जलजनील	६	
एतेऽपि तस्य कुपितस्य	३	
एह्यस्मदर्थहततात	३	
कथमपि न निषिद्धः	३	
कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयी	५	
कर्णदुःशासनवधात्	६	
कर्णाननेन्दुस्मरणात्	५	
कर्णालिङ्गनदायी वा	५	
कर्णेन कर्णसुभग	५	
कर्ता द्यूतच्छलानां	५	
कलितभुवना भुक्तै-	५	
कालिन्द्याः पुलिनेषु	१	
किं कण्ठे शिथिली	२	
किं नो व्याप्तदिशां	२	
किं भीमाद्गुरुदक्षिणां	३	
कुरु घनोरु पदानि	२	
कुन्त्या सह युवामद्य	५	

श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क.	श्लोकारम्भः	अङ्कः	श्लो.क.
दुर्वन्त्वासा हताना	५	३६	तथाभूता दृष्ट्वा	१	११
कुसुमाञ्जलिरपर इव	१	५	तद्भीरुत्वं तव मम पुरः	२	१०
कृतगुरुमहदादि-	६	४३	तस्मिन्कौरवभीमयोः	६	१६
कृतमनुमत दृष्ट वा	३	२४	तस्मै देहि जल कृष्णे	६	३२
कृष्टा केशेषु कृष्णा	५	२९	तस्यैव देहरुधिरोक्षित	६	२१
कृष्टा केशेषु भार्या	५	३०	तस्यैव पाण्डवपशोः	६	८
कोदण्डज्याकिणाङ्कै	२	२६	तातस्तव प्रणयवान्	३	३०
कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्	१	१९	तात शस्त्रग्रहणविमुख	३	२३
क्रोधात्तरसकल हत	६	४५	ता वत्सलामनभिवाद्य	६	३४
क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्	६	४२	तीर्णे भीष्ममहोदधौ	६	१
क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति	६	१३	तेजस्वी रिपुहतबन्धु-	३	२७
गते भीष्मे हते द्रोणे	५	२३	त्यक्तप्राजनरश्मि-	५	१०
गतो येनाद्य त्व	३	१६	त्यक्त्वोत्थित सरभस	६	९
गुप्त्या साक्षान्महानलः	२	३	त्रस्त विनापि विषयात्	६	४
गुरूणां बन्धूना	६	५	दग्धु विश्व दहन-	३	८
गृहीतं येनासीः	२	१९	दत्त्वा द्रोणेन पार्थाद-	४	२
हाणा चरित स्वप्नो	२	१४	दत्त्वाभय सोऽतिरथो	३	२८
भरभुजभ्रामितचण्ड-	१	२१	दत्त्वा मे करदीकृता	६	१९
त्वारो वयमृत्विज	१	२५	दायादा न ययोर्बलेन	५	५
जिताशेषकौरव्य-	५	२८	दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्ग	२	१८
मिन्दोरमले कुले	६	७	दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भ-	२	१२
त्या काममवध्यो-	३	४१	दुःशासनस्य रुधिरे	३	४९
वत्सु पाण्डुपुत्रेषु	१	१८	दुःशासनस्य हृदय-	१	२७
भारम्भप्रवितत-	२	७	दृष्टः सप्रेम देव्या	१	३
तिप्रीतिर्मनसि न	६	२०	देशः सोऽयमराति-	३	३३
र रहः शङ्कितं	६	३	द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं	५	३४
नः शोकजन्मा	५	२०	धर्मात्मजं प्रति यमौ	२	२५

१ अकुशलदर्शनाः स्वप्ना दैवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति।
२ अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम्।
३ अनुल्लङ्घनीयः समुदाचारः।
४ अप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते।
५ वान्द्याः खलु गुरवः।
६ अहो मुग्धत्वमबलानां।
७ आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।
८ उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन।
९ उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना॥
१० कालानुरूपं प्रतिविधातव्यम्।
११ कुतस्तस्य विजयादन्यद् यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते।
१२ को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति।
१३ गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम्॥
१४ ग्रहाणां चरितं स्वप्नो निमित्तान्युपयाचितम्।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति॥
१५ तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम्।
१६ भ्रान्तं विनापि विषयादुपशिक्षितस्य चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति।
१७ दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।
१८ न किंचिन्न ददाति भगवान् प्रसन्नः।
१९ न परस्य कृपाणे स्वगुरुरपि तत्र प्रतीक्ष्या।
२० न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्।
